



( सर्वाधिकार सुरक्षित )

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

## आत्मपरिचयन

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्त-पायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ  
पूज्य श्री गुह्यव्यय मनोहर जी वर्णी  
‘श्रीमत्सहजानन्द महाराज’

प्रकाशक:

खेमचन्द जैन सराफ,  
मनी, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला  
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बंधु, मीन्दर एव लाइब्रेरियोको  
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी धोरसे अधमूल्यमे ।

## श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

- (१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकस, संरक्षक, अध्यक्ष एव प्रधान दृस्टी, सदर मेरठ  
 (२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकस, सदर मेरठ  
 (३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जन सर्राफ, सहारनपुर

### श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावो की नामावली—

१ श्रीमान् मेठ भवरीनाल जैन पाण्ड्या,	भूमरीतिलैया
२ ,, वर्णानिध ज्ञानप्रभावना ममिति, कार्यालय,	कानपुर
३ ,, कृष्णचन्द जी जैन रईम,	देहरादून
४ ,, मेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	भूमरीतिलैया
५ श्रीमती सोवती देवी जी जैन	गिरिडीह
६ श्रीमान् मिश्रमैन नाहरसिंहजी जैन,	मुजफ्फरनगर
७ ,, प्रेमचन्द श्रीमप्रसाध, प्रेमपुरी,	मेरठ
८ ,, मलेरचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९ ,, दीपचन्द जी जैन रईम,	देहरादून
१० ,, चारुमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११ ,, चावूराम मुगरीलाल जी जन,	ज्वालापुर
१२ ,, केवलराम उग्रमैन जी जन,	जगाधरी
१३ ,, मेठ गेदामन दगडूशाह जी जन,	सनावद
१४ ,, मुकुन्दलाल गुनशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५ श्रीमती धर्मपत्नी बा० यलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६ श्रीमान् जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७ ,, मणो, जैन समाज,	खण्डवा
१८ ,, चारुराम अन्नकप्रसाद जी जैन,	तिम्सा
१९ ,, निगानचन्द जी जैन रईम,	सहागनपुर
२० ,, बा० हर्गोचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, श्रीवरमिथर,	इटावा
२१ श्रीमती सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनमयी,	जयपुर
२२ ,, मन्नाणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३ श्रीमान् रोठ समन जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
" बा० गिरनारीलाल चिरजीलाल जी जैन,	
" बा० यदेलाल चालूराम जी मोदी,	"

२६ श्रीमान् सठ फूलचन्द बजनाथ जी जन, नई मण्डी,	भुजपफरनगर
२७ " मुखवीरसिंह हंमचन्द जी सर्राफ,	बटौत
२८ " गानुलचन्द हंमचन्द जी शोधा,	नागगोला
२९ " दीपचन्द जी जैन रिटायड मुफ्रिट-डेट इजीरियर,	वानपुर
३० " मन्त्री, दि० जैनममाज, नार्ई वी मटी,	आगरा
३१ श्रीमती मचालिना, दि० जैन महिनामडल नमवकी मडो	"
३२ श्रीमान् नेमिचन्द जी जन, रुडरी प्रेम,	रडवी
३३ " भन्वनलाल शिवप्रसाद जी जैन, जिलवाना वावे,	महारनपुर
३४ " राशनलाल के० सी० जन,	"
३५ " मोन्टडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	,
३६ " बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला
३७ " मेठ शीतलप्रसाद जी जन,	सदर मेरठ
३८ दिगम्बर जैनममाज	गोटे गांव
३९ श्रीमती माना जी घनवती देवी जैन, राजागज,	इटावा
४० श्रीमान् ब० मुख्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रडवी
४१ " नाला महेन्द्रकुमार जी जन,	चिलराना
४२ " नाला आदोश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	,
४३ " हृत्तमचन्द मोनीचन्द जैन,	मुलतानपुर
४४ " ला० मुनालाल यादवराय जी जन,	सदर मेरठ
४५ " इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	वानपुर
४६ श्रीमती वंशाशवती जैन, घ० प० चौ० जयप्रसाद जी,	मुलतानपुर
४७ श्रीमान् * गजानन्द गुलाबचन्द जी जन, बजाज,	गया
४८ " * बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावडा,	भूमरीतिलैया
४९ " * मेठ मोहनलाल तागाचन्द जी जैन वज्रात्या,	जयपुर
५० " * बा० दयाराम जी जैन आर. एम डी ओ	सदर मेरठ
५१ " X जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	महारनपुर
५२ " X जिनेश्वरनाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट — जिन नामोंके पहले \* ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिन नामोंके पहले X ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रकमा अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बानी है।

# ❁ आत्म-कीर्तन ❁

ब्रह्मात्मयोगी न्यायतीथ सिद्धातन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी  
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा भातमराम ॥१६॥

अंतर यही ऊपरो जान, वे विराग यह रागवितान ।  
मैं वह हूँ जो हूँ भगवान, जो मैं हूँ वह हूँ भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।  
किंतु आशयश खोया ज्ञान, बना मिखारी निपट अज्ञान ॥२॥

सुख दुःख वाता कोइ न भान, मोह राग दुःख की खान ।  
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नाहूँ लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।  
राग त्यागि पहुंचूँ निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।  
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥५॥

०००

[धमप्रेमी बधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोताओं द्वारा सामूहिक रूपमें ।

२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।

३—पाठशाला, शिक्षानदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।

४—पूर्वोदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।

५—किसी भी आपत्तिके समय या अथ समय शान्तिके अर्थ स्वस्तिके अनुसार किसी अथ, चौपई या पूण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बधुओ द्वारा ।



## आत्मपरिचयन

प्रवक्ता—ब्रह्मात्मयोगी यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्यो  
“सहजानन्द” महाराज

हम स्वयं ही आनन्दमग्न हैं, किन्तु अपने उस स्वभावका विषयाम न रखकर बाह्य पदार्थोंमें आनन्द हो या आनन्दमें बाधा होती है—ऐसी एक दृष्टि हा गई है। इस दृष्टिमें वह अपने आनन्दको रोक्ता है। वह स्वयं आनन्दमयस्वभावकी निधि है। आनन्द वही वाह्यसे नहीं आता है। स्वयं यह आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान किमीसे लेना नहीं है। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दमय है। अभी भी दूधमें जगहसे इसमें आनन्द लाया नहीं जाता है। यह खुद आनन्दस्वरूप है और इसी कारण किमीने ज्ञानका स्वरूप कहा है अर्थात् ब्रह्माका स्वरूप है आनन्दमय और इसीको किमीने ज्ञानका स्वरूप कहा है और किमीने इसे मत्वा स्वरूप कहा है। इस तरहसे पृथक् पृथक् कहा है, किन्तु स्याद्वाददृष्टिने इसे सत्त्विदानन्द बतलाया है। यह आत्मा अपने स्वभावमें वेदित स्वभाव वाला है। अतः इसे कोई ब्रह्मा कहते हैं और कोई आनन्दको प्राप्ति कहते हैं, किन्तु वह तो सत्स्वरूप भी है, चित्स्वरूप भी है, आनन्दमय भी है, अतः उसे सत्त्विदानन्दमय कहा है। जहाँ आनन्दका स्वरूप, चित्का स्वरूप पूर्ण विकसित है उसीका नाम परमात्मा है। प्रत्यक्ष जीवना स्वरूपसे देखो कि ऐसे हैं कि नहीं। वह ऐसे ही है। इन जीवाम चतय भी है, क्योंकि अगर चतय नहीं होता तो पान और समझ इन जीवाम कहाँमें आती? और आनन्द है कि नहीं? आनन्द भी है। यदि आनन्द न होता तो जीवोंमें आनन्द आता कहाँमें? इस तरह यह सत्त्विदानन्दमय आत्मा है। मतलब यह है कि जेमा यह स्वयं है अद्वैत वसा ही अनुभव करना चाहिये। परपदाय भी अद्वैत है। किसीमें कोई दूसरा मिला नहीं है। दूध और पानी मिला हो फिर भी दूधम दूध ही है और पानीमें पानी ही है। दूधम पानी नहीं गया और पानीम दूध नहीं गया। और यहाँ तक कि दूधके जितने परमाणु हैं वे सब पृथक् पृथक् उसी दूधमें हैं और पानीके परमाणु पानीम पृथक् है, वे स्वयं मत् हैं। यही बात है कि एधसे दूसरमें परमाणु नहा आत। प्रत्येक पदाय अपने अपना रुत्ता लिए हुए है, प्रत्येक पदाय अद्वैत है।

अद्वैत कहते उसे है जा दूरसे १ लग्न हो । जो दो चीजों में मिलता है उसे द्वैत कहते हैं और जो दूसरे में नहीं मिला है, शुद्ध-सुद्ध अपने आप एक ही है उसे अद्वैत कहते हैं । जगतके सब पदार्थ शुद्ध व सुद्ध अपने आपमें अपनी मत्ता लिए हुए हैं । इस तरह सभी अद्वैत हैं । सब पदार्थोंकी अर्थात् निर्गमना है । प्रत्येक पदार्थ अपना एक ही है इसमें दूसरका प्रवेश नहीं है । इसलिए स्वयंको अद्वैत निर्गमना और इसी प्रकार अपने आपमें भी अद्वैतका अनुभव करना वस इसीके मायने सिद्धि है । और इसका अनुभव करना कि यह मेरा भया है यह तो मेरा अच्छा है, यह तो मेरा धरदार है यह मेरा उभर है, यह मेरा शरीर है मैं कुछ हूँ इस प्रकार द्वैतता अनुभव करना रहा तो -मीको अस्मिद्धि कहते हैं । उमीके मायने समार है । पदार्थ जन्म है वसना न अनुभव करना वसना न मानना वसना वसीका नाम है ज।जातका रहना । जो अपनेको जाना वेशोरूप ही अनुभवता है उस ज्ञानि नहीं मिलती है, क्योंकि नानारूप इसके बन गए, सो एक तो न सब पराय और फिर है नाना, अतः उनकी समाल कमे है ? मुक्तिता रस्ता और कोई दूसरा नहीं है । यही अपने आपको जैसा शुद्ध, अकेला स्वरूप है वैसे मान जाना, वस यही मायका रास्ता है मुक्तिता पथ यही है । अभी धमपावनके लिए बहुत बहुत काम किए जाते हैं, वर ला, किन्तु अपने आपके इस अद्वैत स्वरूपका अनुभवा नहीं है तो धमपावन नहीं हुआ, ज्ञानिता माय नहीं मिला, मोक्षका मार्ग नहीं पाया । धम एक ही होता है, धम पचासा नहीं हान । दुनियाय य जो मजहूय है वे तो मत है धम नो है । आज जा दुनियाय प्रसिद्ध है, यह अमुा सम्प्रदाय है, यह अमुा मजहूय है वे सब मत बहलाते हैं धम नहीं होते हैं । मत अनेक होत है, पर धम आव नहीं होते ।

धम अनन हो ही नहीं मत है । अतः हम धमपावन करना है मा गत पालन करना है । अगर मत पालन करना है तो मतपालन किया जाय और यदि धम पावन करना है तो धम पालन किया जाय । धम है वस्तुका स्वरूप, वस्तुका अनुभव । यह मैं आत्मा वीना हूँ, क्या हूँ, वस स्वभाव वाला हूँ ? जमा है तैसा ही मानना इसीके मायने धमका पालन । जैसे जातिया अनेक हैं—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि । सब सबके रहन सहन प्रकार अनन हो गए, बुद्धि अनेक हो गई । एकसा ही उन मनुष्याका जन्म हुआ । एवमा ही उनका भरण हाता है । उसी तरह इन सब लोगान अपने अपने मतको बदल दिया है, पर व है सब एक किस्मके आत्मतत्त्व । जन्म उन सबन अपने अपने मत बदल दिए हैं पर स्वरूप को तो नहीं बदल पाया है । उ हाते अपना आकार तो नहीं बदल दिया है ।

ऊपरकी चीजाका फल बना लिया है कि कोई छोटी रखाता है, कोई नहीं रखाता है । यह सब कुछ ही जाता है, पर उनका स्वरूप नहीं बदल जाता है । जैसे मनुष्यका स्वरूप

नहीं बदलता है, इसी तरह चाट जितनी ही रत्पनाएँ आ जायें चाट जितनी ही मत बन जावें उनकी आत्माका स्वरूप नहीं बदलेगा। उतनी आत्माका एक ही स्वरूप है, एक ही स्वभाव है। कोई ऐसे भी जीव है जिनका यह मन है कि आत्मा फान्मा कुछ नहीं है आत्माका अस्तित्व कुछ नहीं है। ये आत्माको मना कर रहे हैं, आत्माका विरोध कर रहे हैं। आत्मा ही आत्माका निपेय कर रहे हैं सो निपेय करनेम रत् तो नहीं मिट गया। कम आत्माका अस्वरूपमे कल्पनाएँ कर लें तो कल्पनाएँ कर लनम आत्मामे वह कुछ नहीं हो जायगा। आत्मा वही है। जैसे रम्मीकी डोरम भ्रम हो जाय कि यह सप है ता भ्रम हो जानम वही रम्मीकी डोर सप नहीं बन जायगी। वह तो रस्सी ही रहगी। हम जितनी ही चोटाक बार मे जिनकी ही रत्पनाएँ कर डालत हैं परंतु इतनी कल्पनाएँ कर जेनस ही वह चीज वैसी नहीं हो जाती। वह तो मत्तास स्वत मिद जैसी है वैसी ही है, हम इस आत्माके बारम जिनकी ही कल्पनाएँ कर लें, तो कल्पनाके अनुमाग हम नाना नहीं बन जावेंगे। हमारा तो एक स्वरूप है जो अनादिमे है व अनन काल तक रहेगा। यह निगोद कीडा जैसी पर्यायोमे भी पहुँचा है, इस आत्माका प्रकाश आकार भी बदल बदल गया है, फिर भी निगोद जैसी निम्न अवस्थाओमे भी इस आत्माका स्वरूप वही एक रहा है, यह नहीं बदल गया। उमका जो स्वरूप है सोई है, वह नहीं बदला। एसी आत्माका वह अद्वैत स्वरूप जिनके ज्ञानमे आया है, जिसने द्वैतका अनुभव विशा है उनको असिद्धि होनी है।

इस एवका जिनमे चाहा है उमकी मवम्प मिला है और उस एवको छोडकर जिसने नाना पदार्थोमे त्रिज नगाया है उनको कुछ नहीं मिला है। एक ऐसा कथानक है कि एक बार एक राजा किसी दूसर राजामे लडाई करने गया। दो एक माह तक युद्ध हाता रहा उसमे उम राजाकी विजय हो गई। इसके बाद वहाँपर राजाने बडा उत्सव मनाया और गुणोमे दशकी मत्र रानियोकी पत्र लिखा कि जिसको जो कुछ चाहिए हमारेको पत्र लिखें। तब किसी रानीने माडी लिखा, किसीने जेवर लिखा, किसीने अमृक खिलानेको लिखा, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ लिखा। जो सबमे छोटी रानी थी उमने अपन पत्रम लिख दिया केवल १ एवका अक और कुछ नहीं लिखा। पत्रका लिफाफेमे भरकर भेज दिया। जब राजान पत्रका खाला तो किसीमे कुछ लिखा था, किसीमे कुछ। मगर छोटी रानीके पत्रमे केवल १ वा अक लिखा था। राजा इस केवल १ वा अक न समझ मका। उमकी समझमे उस कवत १ का मतलब न आया। उम राजाने मत्रीसे पूछा कि इस छोटी रानीने क्या मगाया है ? मत्री पत्रको देखकर कहता है कि छोटी रानीने केवल एक आपको ही चाहा है और कुछ नहीं चाहा है। राजा सभी रानियोको किसीको साडी, किसीको गहना, किसीको खिलौने लेकर अपने दश जाना है। जब वह वहाँ पहुँचता है तो जहाँ जो कुछ मना था उनमे



घर पहुँचा दिया और छोटी रागीके महलमें स्वयं पहुँच गए। टमने बेबल एफको चाहा था पर अब यह बतलाया कि गानाकी सारी चीजें, मारा बंदूक, हाथी, सेना, ग्रामन, इज्जत इत्यादि सब कुछ उसके महलमें पहुँच गए या नहीं। इस जगनम जितनी भी व्यवस्थाएँ चल रही हैं वह सब चतन्य ज्योतिका ही तो प्रसार है। एक चैतन्य ज्योतिको जितने चाह लिया, एक अद्वैत स्वभावको जिसने चाह लिया उसको मरमिद्धि है।

प्रियतम आत्मन् ! इस आत्मानुभवकी ओर आधो, बाहरकी ओर दृष्टि कम करके अपनी प्रकृति, रहन सहाको सात्त्विक बनाओ और मुख्य प्रयोजन जो आत्मसिद्धिका है उसे कर। बनावट, दिखावट, सजावट न करके मममें दृष्टि दो तो बम यही धमका पालन है। शांति भी इसी उपायसे प्राप्त होगी, भोज्यभाग भी इसी उपायसे मिलेगा। दर २४ पदार्थोंमें भटकना, नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करके उपयोगको बाहर फसाना, यह सब अशांतिके साधन है, अधमका पालन है, धमकी उपेक्षा है। अपने डा २४ घटोंमें जब कि प्रायः सारा समय दुष्प्रयोगमें जाना है, मोह, राग, द्वेषमें जाता है, नाना कल्पनाओंके विकल्पमें जाना है। भाई ! १५ मिनटका मकरप करके, सत्यका आग्रह करके, असत्यका अमहयोग करके अपने आपकी भी व्यवस्था बना लो। एक आध मिनट लगानेमें कुछ बिगड़ नहीं जायगा। एक अमृत तत्त्वकी प्राप्ति होगी। अद्वैतका ही अनुभव हो, उसे ही सिद्धि कहते हैं। जगतके जो अहंकार भरे हुए हैं। मैं परिवार वाला हूँ, धन वाला हूँ, इज्जत वाला हूँ, यह मैं अमुक हूँ, उत्तम हूँ, शुद्ध हूँ। नाना प्रकारकी कल्पनाएँ किए हुए यह प्राणी विचर रहे हैं। अरु तू तो वह स्वरूप है जिसका स्वरूप मवत्र एक है। यदि मैंने अपने ही स्वरूपको माना तो धमका पालन किया और यदि अपने अद्वैत स्वरूपको छोड़कर यदि नाना रूपोंमें माना तो अभी धममें बाहर है। अपने धमम अथात् अपने आत्मस्वभावसे स्नेह करे। जगतमें कहीं भटक रहे हैं ? शरण कही नहीं मिलेगी, हर एकमें धोखा मिलेगा, हर एकमें वहकावा मिलेगा शरण कही नहीं मिलेगी। शरण तुम्हें अपने आपमें बसे हुए उम सहज परमात्मतत्त्वकी शरण लेना है। यही मुक्तिका माग है। दूसरा कोई मुक्तिका माग नहीं है। जैसे कहते हैं—'सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारिणाणि मोक्षमागः।' सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्रिकी एकका ही मोक्षका माग है। जहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्रिक विरूप भी नहीं उठन इसका एतरम उपयोग हो जाता यही एक मोक्षका माग है जो कि सर्वसिद्धि है। जो इस आत्माके महज चतन्यस्वरूपकी श्रद्धा पा लेगा, वह ही अपने स्वरूपमें रम जायगा। एमी आत्मीन शाश्वत सत्यकी श्रद्धा जिना मोक्षका माग नहीं मिलेगा, निमो वहकावा व किसी ताल बच्चोंकी उलझनमें पडकर शांति नहीं मिलेगी और आगका रागना भी व द ह जायगा। बाहरी बीजोंमें पडकर इस अज्ञानकी हित कुछ नहीं है। तू तो यह स्वरूप है य तो धमकी मायात् मूर्ति है।

यह चतन्यस्वरूप ही आत्मा धर्मकी मूर्ति है वह भगवान् स्वरूप है, वही कर्माण हं । मैं इस एकको छोड़ दू तो ममारम भक्तन हए कुछ पता भी नहीं लगगा । कितनी योनियाँ है, कितने शरीरके कुरा हैं, कितन जगनम नोरके म्यान है, किस स्थानम, कितनी बार कहाँ जन्म लूगा ? कितने कितने शरीरोम कितने बार जन्म लेते रह्ये—कुछ पता तब भी न रहगा । अभी मनुष्य है पात साफ है, स्वाधीन है हम दूमरोकी बात ममझ तत ह, दूमरानो शपती वान ममभा लेते हैं । पशु पशियाको दखो ऐसा जन्म हा तो क्या पल्ले पडगा / इनके अशर्मम भाषा नहीं है । मररोकी वान वह दूमरोमे क्या कह्य ? उनमे धमकी चचा क्या होगी । कीडे मनीडे बटुनसे जीव है, पर वे क्या कर सकते हैं ? उन जीवने मुकाबलम दखें ता हमारी अब कितनी उच्च अवस्था ह ? हम और आप सम्यकदशके पात्र हैं, सम्यक पानने पात्र है और सम्यकचारिकके पात्र है । अपनेमे पुरुपाथ करनेकी योग्यता है हम कुछ अपना हिन बाहर नही नहीं निरखना चाहिए । घर-द्वार, धन वैभव इत्यादिमे ज्यादा धृष्टि नहीं रखनी चाहिए । दर्यापि इस गृहस्थावस्थामे सबका प्राय यह निराय रहता है कि हमक बिना गुजर जन ही नहीं सकता है । परन्तु जब यह घर द्वार धन वैभव छूट जावेंगे तो क्या इसके बिना गुजारा चलागा नहीं ? चलगा । धन वैभवके बिना, घर द्वारके बिना आत्माका गुजारा चन जायगा, पर सम्यकज्ञान बिना आत्माका गुजारा नहीं चलेगा । इस अपने मम्यक पानको छोडकर यदि परपदार्थोका महत्त दगा तो अशानि, कर्मोपासना तथा कम बचन ही रहेगी और यदि अपने इस गृह स्वरूपको महत्त देगा वही रहेगा वही पहचानेगा वही फुल्लेगा तो उसमें बचन बट्टेगे, शांतिका माग मिलेगा और भविष्यमे इसका जब तक ससार है उत्तम उत्तम भव समागम मिलेगा और निम्न समयमे मुक्ति प्राप्त होगी । इसलिए अपने आपका मम्यकज्ञान बरा, प्रमादी मत हो । इस अपने स्वरूपको देखकर प्रसन्न रहो । यह मरा शाश्वत आनन्दमय चतन्यस्वरूप है सदा सबस अलग है यह सब अहकारोसे दूर है मैं अपने स्वरूपम हू । एक अपने आपम मही स्वरूपका पता लग जाय तो इससे बडकर कुछ जगतम नहीं है । उस तरह अपने अद्वैतका अनुभव करा । यही मोक्षका माग है और एसा ही अद्वैत सब पदार्थोम हं । उन सबम भी उनके अद्वैत स्वरूपका बोध करें । इनीका नाम ही सिद्धि हं । आत्माने ध्यानम, चिन्तनम, मननम, अध्ययनमे, अनुभवम अधिवम अधिक पुरुषार्थो बनकर अपने जीवनको सफल बनावें ।

आत्माक गृह स्वरूपको आत्माना स्वत्व कहत है अर्थात् जो आत्माका अपने आप अपनी सत्ताके कारण जो कुछ सबस्व है वह आत्माका एकत्व है । इस एकत्वमे दृष्टि जाना मही मगत है, इस एकत्वमे दृष्टि जाना यही सवात्मम है और इस एकत्वमे दृष्टि जाना यही शरण ह । आत्मके केवल स्वरूपकी निगाह होना यही गुरुता सबसे बडा हट किता है । जसे

उठ गज्जूत किलेके भीतर राजा लोग अपनेको मुरखित अनुभव करत है, इसी प्रकार इस निज सहज स्वरूपमें ही यह मैं हूँ ऐसा अनुभव करने वाला ज्ञानी अपनेको मुरखित अनुभव करना है। जब इस दृष्टिमें जावेगा तब तब जाना विकल्प हाग और उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा। उसको मुख्य शक्ति और आगम मिलनेका भावना व माग नहीं मिलेगा। दरयो हम एतन्वका शरणा गत बिना ही इतना बरा जगज्जाल विछाया, इससे मैंकडो आपदाए त्रिभू गहू। परंतु जो आत्मा अपने इस स्वरूपक किलम प्रवर्ण करने बठना है उसकी सारी विपदाएँ खत्म हो जाती है। एक भी सचटमें प्राय वह नहीं रहता है। यदि इस जीवके आज तक ऐसा काय नहीं किया है तो इसीका फल है कि उनका समागम जन्ममरण चक्र बना रहा आया। यहाँका परिवार यदि अच्छा लगता है बन्चोका, धनका यदि मोह लगा हुआ है तो खूब एकदम पुले दिलमें डटकर मोहको बर लो, खूब मोह रग लो, शोक वीषमें मोह कर लो, अधकचडे क्यो रहते हो ? अच्छा आजमा लो मोह करके फिर प्रताओ कि क्या अपने में लाभकी व्यवस्था हो जायगी ? यदि इसमें गार नजर आना है तो इसमें ही लग जावो। फिर अपने आपमें हो पता पड जायगा कि मुझे इसमें हानि मिनी है कि लाभ मिना है। इससे कुछ नहीं मिलेगा क्लेश ही मिलेगा, आश्रय ही घरेगा जाना शतय बढग। बाहर दृष्टि एकदम फील जायगी, फिर आनन्दका उपाय बनना बठिन हो जायगा। अनक खोटी परिस्थितियाँ आ जायेंगी, यदि बाह्यम मोह बर लिया तो। बाह्यम ताई भगल नहीं है, कोई मुक्त सुख देने वाला नहीं है। भगल वह होना है जो भगन है। मग अर्थात् मुखको जो लाय वह भगल कहलाता है। आनन्दको, मुखका जो लाय उम भगल कहते है।

आप लोग एमोकार मत्र पढरग फिर बनाविदडक पढत है। उमम यही तो बोला जाता है—'चत्वारि भगल—भरहना भगल, सिद्धा भगल, साह भगल, केवलि पण्यतो वम्मो नगल' अर्थात् चार भगल है—भरहत भगल है, सिद्ध भगल है, साधु भगल है और केवली भगवानके द्वारा प्रणीत धम भगल है। भगलका अर्थ है जो मग लावे व म गलावे। म का अर्थ है पाप। जो पापको गलावे वही परिणाम मुक्त सक्तता है। पापाको बढान वाला जो परिणाम है वह मोह और प्रज्ञानस भरा अर्थात् विषयमें लगा हुआ रचिबक लो होता है, परन्तु उसका परिणाम खोटा ही निकलता है। यहाँ किमीका कुछ करने जाना कोई नहीं है। आत्मा और वम इन दोनोकर परम्पर निमित्तत्रपित्तिका भाव बन रहत है। जैसे परिणाम ही उल्ले ही वम उमम रेंवें। जमा बुद्ध बभौवा उदय आवगा वस आत्मानम भाव होंगे। ज्यो ही आत्मानो खाटा भाव किया तथा ही आत्मानमें वमके ब वन हुए और वह बरा हुआ वम जब अपना समय पायगा, अपने उपकारम आयगा उस समय ही आत्मानमें दुख और खोटा परिणाम उदयप्र ल जायगा। न इस आत्मानो कोई भमझने व न है कि क्या खाटा उदय आ

रहा है तो योग बंध जायो अगर न बंधव। गमभाता है योई कि आत्मामे खोटा भाव आ रहा है तो तुम रेंज जाओ। परन्तु एसा शार्त्रिक गुयोग है कि जहाँ आत्मामे खाटा भाव आया कि कम बँध गर। ता-त्यकी बात यह। यह समझनी चाहिय कि यहाँ करने हर। वाले कोई नहीं है जिनकी भक्ति करें जिनकी निरुक्ति करें तो बुद्ध अपने गुजाइश निकाल लें। यहाँ ता श्रोतामेष्टिक सब हो रहा है तो पाठ भावना। अब लो, दुगति प्राप्त कर लो, अच्छे भाव कर लो, ना गदगति पा लो, यह तो तिम समय दिया उस ही समयपर निभर है। इस कारण मदा अपने परिणामकी स्वच्छ व सपन बनोका यत्न होना चाहिए। परिणामकी निमलताके लिये ध्या करना है जना यह भी है तमा समझ लेना है। यह मैं आत्मा सबसे निराता है ना। है तो मरमे यारा, सबसे निराता मान लो, वस यह मौलिक यत्न आवश्यक है। अच्छा न्खो यह पीछे चौकीमे यारी है कि नहीं, पुनःकमे न्यारी है कि नहीं। है ना न्यारी, फिर न्याय मानामे नीतमा हज होता है ? है नहीं यह शरीर सबसे न्यारा ? जो बँठे हैं इन सबसे यह शरीर जुटा है कि नहीं। है जुटा तो जुदा मान लो, इसमे कौनसी कठिनाई पडती है ? अगर जरा भीतर ना बात परख लो कि यह मैं आत्मा जो दुःखी होता, सुखी होता, विकल्प करता है, गमभनेकी रशाँ करता है। यह आत्मा है ना सरसे यारा। यदि न समझमे आए यह बात तो फिर धमके लिये और काम छोड ना पहिले यह निणय कर लो—यह बनाओ कि मैं सबम यारा हू कि नहीं ? भया। इस निणय बिना ता धमना पालन ही नहीं होगा। अपने आपकी ठीक गमभ बना ना। यह काम सबसे बडा है और यह बात स्वाधीन है। जरा विकल्प छोड करके गच्छा विधाम लकर एसा कि तुरन्त समझमे आ जाता है। यदि कोई ज्ञान पानका नियम भी कर तो भी ज्ञान ही तो यह है, जो नियम करेगा। हम ज्ञानमे हम पानका हम पानक गदर ले जाएँ और देखें कि इस पानना स्वप्न है व ? जिस ज्ञानके द्वारा हम गारी दुःखाको जाता करने है वह ज्ञान खुद क्या है ? मैं ज्ञानके स्वरूपको देखनेमे तम जाऊँ तो सब औरके विकल्प हट जावेंगे, क्योंकि हम ज्ञानमे-प ही ज्ञानके स्वरूपका स्वनमे वन उठ और बुद्ध निणय यत्नमे प्रवण करके देखें ता शरीरकी सुरत भी भूल जायगी। शरीर है या नहीं है। यह भी भाग न रहगा वहाँ केवल ज्ञानज्योति, पानस्वरूप, ज्ञानतत्त्व ही अनुभवमे आवगा। वह पानघन पदार्थ देखो जुदा है सबस या नहीं। इसका ठीक निणय कर लें। समझमे आव कि जुटा है तो वस एसा मान लो। यही धमका पालन है और समझमे आव कि जुदा है ता अच्छी तरहसे पहिले इनोके निणयमे लग जावो। अगर जुदा नहीं है तो एसा ही मानत रजो। जमा है, तमा मान लो। यद्यपि आत्मा जुदा है एसा पान होतपर भी गृहस्थीमे जुनी-मुदी व्यवस्थाकोम भी यह ज्ञानी लग जाता है तो भी आत्मा जुदा है। यह उसका आत्मार्थ प्ररणा अंतरमे रहा करता है। यह तो लो।

के लिए है। तबना उद जुदा परिवार है और यह उठकर उमी परिवारमें जायगा, वान भी करेगा, उमी दूनाने जयगा। यह सब व्यवस्था है। जैसा सपना राम ठीक चले तो मय जागोने मिलकर ययस्था बना ली है य उतन जागोनी व्यवस्था कर के, य उतने लोगोनी। यह त्रात परिवारके रूपमें ही हुई। सो मय जुदा जुदा कर रह है मय काममें व्यस्त (मित्री) हो रह है, केवल लोकव्यवहारमें उच्छृंखलता न आ जाये, हमके लिए व्यवस्था बना रखी, इस व्यवस्थामें ज्ञानी भी पड रहे ह। लकिन प्रतीतिमें यह रहता है कि मैं तो अपनेमें पा रहा हू अपनेको सबसे निराशा, चैतयमात्र एक पदाथ, जिमका कुछ नाम नहीं है, जिसका कुछ आकार प्रकार नहीं ह। यह मैं एक चतन्य वस्तु हू, डमन विनाय अथ किमी पयाथमें इसका रच भी सम्बन्ध नहीं है। एम देखना बस यही मगन है। पापके नामसे पाप नहीं बट और पापके काममें सुख नहीं मिलेगा। बरोडोका धन पा जाय तो उमसे सुख नहीं मिलेगा। कितना ही वैभव उमा तो शांति नहीं मिलेगी। अगर बाह्य पदार्थानें शांति होनी तो तथहर चक्रर्ती जमे महापुरुषोंको लोकवैभवमें शांति क्या न मिल जानी? उन्हे ज्ञान जगा तत्र वे लोक व्यामाह छोडकर अपने एतत्त्वस्वरूपमें उपयुक्त हो गय।

देखो मगल पाठ पढ़ते हैं तत्र अरहन मित्र माधुको मगन बहकर फिर अपने एकत्व को मगल बहकर विश्राम पात ह। "अरहन मगल, निद्र मगल, साहू मगल, केवल पण्यतो धम्मो मगल" चार मगल है ना। अरहन भगवान मगल है। चार धानिया बर्मासे रहिन, माहमें अ-रत पर परमपतिन उषानि आतना अरहन भगवान हैं घट जिमके स्वरूपके स्मरण में भय भवके पाप उट जाने है वह अरहन मगल है। त्रिमक स्वरूपके स्मरण करने व अपने स्वरूपका ज्ञान करनेमें प्राग् वतमानम जो कुमनि हा गरी है उमकी मद्दे नजर रखनेसे जो मान-दने मिला हुआ पड़नाया हाता है उममें जा आंमू बहता है उममें मानो भक्तके वितने ही पापकम धुन जाते है। वह मगल है। इहुन शुद्ध चित्त होकर ध्यान तो बनाओ कि आममानम यामे ५ हजार धनुष ऊपर, माने २० हजार हाथ ऊपर एक प्रभु विराजमान है। निनी पूण महिमाके कारण स्वर्गके देवता लोगोंने आकर एक उडा मडप बनाया है जिसके आग ज्ञानम कोई जानोका वैभव नहीं हो सक्ता। १० १२ नाममें २४ काममें एक मडप बना हुआ है जिसमें कई गोलोमें कितने ही मुदर कोट, म्वातिरा, वाटिका, चतशालय आदि रचे हैं, बोबम प्रभुका दरबार है, स्फटिक भित्तिकाग्राम घिरी १२ मभायें ह। इसे समवशरण कहने हैं। समवशरणका अर्थ ह जहा जीवाको अच्छा पूरा शरण मिल। इसक नीचे कितने ही सोपान लगे हुए ह। बहुतसे पवत जहाँ नीचे आ गए हैं। उम मण्डपनी और जिसमें कि कहते हैं समवशरण, अच्छी तरहसे पूरा जहाँ शरण मिलता है। ऐमें समवशरणकी और देवता तथा मनुष्य लोग मनमें पुलकित होकर धममाधनामें उनके उपदेशोनी सुनत जा रह ह। देखो ना,

आनन्दमे नाना प्रकारके गुणानुवाद करत हुए नृत्य पत्राके साथ चर आ रहे है, हर्षित हो रहे है ये दवाङ्गना व श्वेता लाग । य लोग प्रभुने गुणानुवादाके पीछे अपने परिवारकी भूल गए है । देखो भया यहाँ ही जब आप किसी त्यागीका आदर करत हैं तो पहले अपने त्यगी को ही अपना मानते हैं, पहिले त्यागीको गिनात ह, चाहे वच्चे भूजे पडे रह । फिर तो यहाँ तीन लोकके नाथकी बात वही जा रही है । उन अपने प्रभुने पीछे अपने परिवारको त्यागकर चले जा रहे हैं । उदरि अपने परिवारको भूतकर उन प्रभुको तितना अधिक माना होगा ? उनका विश्वास है कि मेरा जगण मेरा प्रभु है, मर ममस्त सबटोको टालने वाला मेरा प्रभु है । जिनने ही प्रकारके गीन वादित्रने दिव्य णद्व होने चले आ रहे हैं । धम है उन परम आमावाको भिक्त विकामके कारण दुनियाके लोग एक चित्त होकर, आवर्षित होकर जिवा चरणगमन प्राप्त कर रहे है । यही अरहत भगवान मगत हैं । जो इस शरीरक कर्मदण्ड मदा के लिए मुक्त होकर ज्ञानानन्दस्वरूपमे विराज रहे ह ।

मेमा सिद्धप्रभु वही मेरा सब नृत्य है । ममताके साधनभूत परिवारके वच्चे भी बुद्ध कहते आवें तो भी भक्तिके समय तो विरोधतया ही जानीके भाव रहता है कि मेरको किसी कार्यसे प्रयोजन नहीं है । जगत्के व वडे बाह्य पदार्थों वया मरने उल्टट तो यह प्रभु हमारे हैं जो समस्त गण, देव, सोह भायोंमे रहित शरीर दम शरीरमे रहित, नानानन्दस्वरूप विराजमान है वह प्रभु हमारे लिए मगल है । वह साधु जिनको केवल अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवका ही काम है, केवल अपने शुद्ध स्वरूपमे ही जिनकी रुचि है, उन वस्त्राका रुचि है, न सामागिक कार्योंकी रुचि है इसी कारणमे जिनने शरीरके एक धारा भी नहीं है जिनके वरग्यमुद्राक शशा करत मात्रमे उनने आमरसका भी अनुमान हा जाता है तथा जिनका भाजनमे भी रुचि नहीं है, शरीरका साधन समझकर यदि शरीरक लिये आवश्यक समझा विनयेन तो यह विनय दिनमे एक बार सिधि मिली तो आहार करा दता है, जो अपने स्वरूपके अनुभवके यत्नमे रहन, अय बुद्ध कर्मट नहीं रखत ह, ऐसे वे नानानन्दधन साधु परमणी ह । मेमे साधुवोत दशनसे भवने पाप बट जात ह । अरहत सिद्ध, इस आमाका मगत बनानर अपने केवल स्वरूपमे परिणामता रह । केवल भगवान स्वरूपकी आर दृष्टि होना यह धम है, सो धम ही मगत है । इस आत्माका महत्त शुद्ध जो स्वरूप है उसका ही लक्ष्यमे जाना, यह धम प्रतनाना है । आत्म, देखो यह धम ही मगल कहा है । देखो जिनकी दृष्टि, जिनका विचार, जिनका उपयोग अपने काममे अधिक रहता है उसको बडे बडे पुस्त भी आदरना देखत ह । इस ही धम मगलने प्रसादमे साधु पूज्य है, इस ही धम मगलक प्रसादसे साधु अरहत सिद्ध भगवान बने ह । यह निजधम, यह आत्मधम हमारा मगत है ।

इसका हम केवल भावका विचार करेंगे—हमने मिलता है या इसका काम बन सकता है—वह भी मालूम होता है। दूसरी बार हम गुद्विके उपकरणों में अपने आपके धर्मों में जानना बनता, फिर आनन्द में उगने नमान किमीसा उपयोग में, अपने द्वारा कुछ नहीं हो सकता है। ऐतन भगवानकी ओर हुए धर्म मगन है। इसी प्रकार ये चार उत्तम हैं और ये चार शरण हैं।

देखो दो चारोंमें पहिले हितकारी अरहतका व्याप किया है तिनके कारण मित्रता भी जान हुआ, बादमें मुगम प्राप्त उपकारी माधुका भी ध्यान किया है। अतमें पूरा सार शरण कहा है। केवली भगवानके द्वारा कहा गया धर्म ही शरण है। केवल भगवानको तो कहा है। क्या कहा है? इनकी बात जो हम भूल गए थे इसका ही प्रभुने बोध कराया है। ऐसा केवल अपने स्वरूपसत्तामान चैतन्यमय अपने स्वरूपको अपनी दृष्टि में अनुभवो तो यह भी एक ऐसा दृढ़ किला है कि कैसा भी उपद्रव आ जाय कि जिम्में तो लोकके जीव अपना अपना रास्ता छोड़कर वही भी दृढ़कर धर्मों तगों, विद्युडो तगों, डरन लगों किन्तु यह ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप रक्षाने किलेमें आराम कर रहा है। जैसे पानीके जीव पानीमें ऊपर मुह उठाकर चरते रहने हैं और जलमा भी उपद्रव उसके सामने आये तो वह पानीमें डूब जाता है। मारे उपद्रव लो ज्ञान हो गये। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अभी अपने ज्ञानके बाहर अपने ज्ञानसे ऊपर जाहरी पदार्थोंकी ओर जब मुह करता है तदा आनुनता होतो हो है। सो तत्र भट ही बाहरी पदार्थमें मुख माडकर अपने उपयोगकी अपने ही ज्ञानमें डुबो दे तो मारे उपद्रव स्वत्म हो जाते हैं पर ममा कर करने वाले त्रिगुने ही जानी जाने है। जगनके ये जाहरी पदार्थ जहाँ मजाती आनन्द करता है उनका जानीको पता भी नहीं। इसी कारण जानियोंमें रहने वाले, जानियोंके मगमें ही उसने वाल शीघ्र आत्मानुभव करनेके योग्य हो जाते हैं। बस जिहोंने अपने आपको अन्तरके मगमा पना रागाया ये पुरुष उपास्य है, हम उनके गुणानुवादमें अधिक अनुरागी रहें। हमें जीव मित्रो है तो इस जिह्वाका अग्नि उपयोग कर लें। जिह्वाके द्वारा, गुणो पुरुषोक् गुणानुवादमें अपनेका गुणलाभ मिलता है। हमें विनाशोक जिह्वा मिली है, तो हम कल्याणके लिए इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर न मान मित्रा है तो इस मनसे गुणो पुरुषोक् गुणोका स्मरण कर लें। यह मन मित्रा है ना गुणो पुरुषोका वयावृत्त्य कर लें।

मवध्यवहारमका प्रयोजन आत्ममका पानन है। आत्मस्वभाव व वस्तुस्वभावका दशन करना ही धर्मका पालन है। वस्तुस्वभावके जाननेका मुदर उपाय म्यादादकी विधि है कि भाई अपने आपकी परिचिता। मव वस्तुमको यथास्वरूपमें पहिचानो। देखो जितनी वस्तुमें हुआ करती हैं अपने अपने उदात्तपयत्रोध्यमें ही रहती हैं। वे सब केवल अपने आपकी मता लिए हुए हैं, वे सब अनान्मि ह और अनन्त बाल तव है और वे अपने आप ही

अपने स्वस्वमे अपन न्यायव्ययस अपनो परिणामने रहत है, अपन ही परिणामस अपन लिय उत्पाद करतें हैं गार अनेमे अपन तिर अपने आप अपनी पूजपर्यायका व्यय करत हैं। प्रथम पदार्थ अपन अपन तिर अपन आप विवर्तित व विचित्र हात ह, फिर भी व पत्यव पत्यव अपन आप अपने तिर अपनमे मन्ता मत्व जनाए रहत हैं, यही पदार्थका स्वस्व है।

ह आत्मन् ! हम सब भी तय पत्यव है, अपन आप जान हैं। उन पदार्थोंका अय विमी पदार्थोंमे तय भी सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध नहीं है तब अज्ञान पूर तीरमे सबन न्यारा अनेको समझो। तय अज्ञान तयी पाडी तो समझमे मन्ता पयेगा। त आत्मन् ! तू पवित्र है अती प्रभुताको स्व। हम ही प्रभु प्रभुत्वकी भक्तिमे तू पाप काटगा तो मुय पापगत, यही मगत है दृष्टा उत्तम ह यी ज्ञान है यही मगत ह यही महान् वता है। यह है अपने आप श्रीर स्वय ही ज्ञानमय अपने आपकी मंगारने सबकलेशोमे मुक्त करनेका उपाय।

जीवका शरीरस घनिष्ट सम्बन्ध है और शरीरमे ज्व ज्व रोग होने है तब तब हम जीवको दुखी भी होना पता है। पर हम रोगका मूल कारण क्या है और इस रागक मिटने का मूल उपाय क्या है? हम जानमे गोही जीवको दृष्टि नहीं जाती। यह शरीर मिना है तो जमे जमे गति नामकमका उदय हुआ, शरीर तापम मन्ता आदि नामकमका उदय हुआ, उम जमे मनुष्य जीवको शरीर मिला जाता है और वह तमबन्ध कम मिलना है? जैसे-जम जीवक परिणाम हात है तम रीमे कर्मोके बधन होत है शरीरमे रोग हात है याधियाँ हाती हैं मृत्यु होनी ह, शरीर मन्ता मन्ता ह, माटा शरीर भिजता है। इन सबका कारण आ मा का परिणाम है। इन सब विपदायाँ मूल कारण क्या है? हमके शरीरमे कारण योजा ता मोटा आत्मपरिणाम उनका कारण मिलेगा। जा जो कुछ हम आत्मपण गुजरता है, घनी होना, निधन होना, मरण, अपयश रोग, विरोगना, जा-जा गुप्तते व हत सबका कारण आत्म का परिणाम है। जगा परिणाम किया रीमा कमबन्धन हुआ। जमा तमबन्धन तमी मामने स्त्रिनि आ गट। इस शरीरमे विपदाएँ विविधियाँ कम मिटें, इनका कारण सोचेंगे वह भी आत्माका परिणाम है अर्थात् जो उपवाग नित्र आत्माका मद्दज शुद्ध चतन्यनस्वको पत्यनता है, वहाँ ही रमता ह, उमको ही आत्मा शरीरकार करता है। यह परिणाम तो सबवनेका या प्रियाने न,अ करने लिय सब परिणाम हैं। मय वनेशाको नष्ट करेगा शुद्ध परिणाम ही उपाय है। जो अपन आपके यथायस्वस्वका छाडकर अय विमी जगहमे लगत ह, विपत्तियाँ आती हैं, सङ्घ होग, त्रिभुज हाग, त्रय हाग।

जगत्के कोई पदार्थ मेरे नहीं ह, मय न्यार न्यार है। एकरा दृग्मे प्रियातम कुछ मन्ता नहीं हाता। चाहे जितना बभन हो, चाहे जितना पुण्यवान हो, उह अपना स्वस्व



उनका मिथेया, इसके प्रतिरिक्त परमाणुमात्र भी नहीं है। जो अपना नहीं है उसको अपना मान लेना उसको आत्मात्मलोकमें चोर कहते हैं। कब चोर कहते हैं? दबो यहाँ भी जो दूसरोकी चीजोको उठा लें, अपने घरमें रखें और मनमें यह धारणा बना कि यह चीज मेरी हो गई। यह धारणा जो बना लिया तो वही चोर है। उसी प्रकार जगत्के ये सब पदार्थ अपनी-अपनी सत्ताके जगत्के हैं। एक दूसर सब परस्पर गत्यत भिन्न हैं। जो भिन्न चीजें हैं, जिनसे त्रिकालमें हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, जो अपनेमें ही अपना उत्पाद करता है, अपनेमें ही अपनेको विगाडता है और अपने स्वस्वमें बना रहता है त्रिकालमें उनका अपना यही काम है। त्रिकाल किसीसे रख सम्बन्ध नहीं। फिर भी जैसे यह धारणा करना कि यह मेरा है। यही तो परमात्मको चोरी है। यह भगवान् आत्मा तो शुद्ध स्वस्व है। यह भगवान् स्वस्व आत्मा अपने स्वस्वको भूतकर बाहरी पदार्थोंमें आपा अङ्गीकार करता है। यह मेरा है, यह उसका है आदि। यही चोरी हाती है। हमारा है नहीं पर मानते हैं कि हमारा है। जैसे लावमें चोर चोरी करते हैं? हमारी चीज नहीं है, पर मानते हैं कि हमारी चीज है। जो चोरी करते हैं वह गिरफ्तार किए जाते हैं। उनको सजा होती है। यह हमारी सजा है। हम परमात्मको चोरी करते हैं, वर हमें गिरफ्तार कर लेते हैं। यह हमारी सजा उस सजामें अधिक है। नाना प्रकारके शरीर धारणा करना जन्म मरण करना, जन्ममरणके चक्रमें घाना आदि। यह भी जो विपदाएँ हैं—घर, स्त्री बच्चे जगत् इस आत्माका वह सब नश्वर आरत है। उनमें मोह उठाए हुए हैं, ज्ञानको दबा रहे हैं। मन्वाइको तही सोच करने है एनी विपदाएँ दबो पर आपा मानेसे ही पैदा कर लेते हैं। जैसे यह मेरा है, वह मेरा आदि प्रकारमें माना तो तभी उन्हें आकुनना ही जाती है वयो एमा ताता व गपनी दृष्टि बाहर लगात है, जो जसा है उस जसा नहीं मानते। जो जसा है वसा माननाही आकुनताप्रोको दूर करनेमें समर्थ है। अपने शुद्ध स्वस्वका परिज्ञान कर लेना, यह सब वेदाग्रोको तट करनेमें समर्थ तही है। दूसरा और कोई इन विपदाग्रोको तट करनेमें समर्थ नहीं है। कहीं बाहर दृष्टि न चले। धर्मके प्रसंग भी वेगभूयामें, मन्वह्वीन, क्रियापद्धतियोन उन सबमें दृष्टि न चला। केवल अपने आराम दृष्टि चालो। अपनेको केवल ज्योतिमान समझो। अपने आत्माके प्रसंग रूपमें दर्शन करो। इसीमें अपने प्रभुका दर्शन प्राप्त होता। दूसरा उपाय नहीं है कि विपदाएँ दूर हो सकें। एक यही अनुभवका उपाय है जो मत्र आपदापो विपदाग्रोको समाप्त कर देता है। जैसे पुनः प्राण एक कथानर कहा करत है कि त्रिकाल जगलमें स्यार, स्यारनी है। स्यारनाका मन था प्रसवका समय था। स्यारने स्यारतीसे शरीरके विगत प्रसव वेदनाको समाप्त करनेके लिए कहा। बच्चे हो गये। स्यार तो त्रिकाल समझा दी। स्यार ऊपर चट्टान पर बैठ गया। स्यारतीने अपने बच्चेको समझा दिया कि जब कोई आये तो रोने लगता।

एक शेर आया। बच्चे रोने लग। स्यारने स्यारनीम पूछा—बच्चे क्यों रहने हैं? स्यारनीन कहा कि बच्चे भूखे हैं शेरको खाना चाहत है। शेर डरकर वहाम भाग गया। इम तरहस १० २० शेर आए तो वह सब भी डरकर भाग गए। सब शेरानि मिलकर एक मीटिंग की। सबने मोचा कि ऊपर चट्टानमे जो बैठा है उसनी सब करतून है। सब शेराने हिम्मत की और उम स्यारके पास पहुचे। अब सब यह सोचते है कि इसके पास कमे पहुचा जाय। मोचा कि एकके ऊपर एक खडे हो जाव। उन सबमे से एक लगडा शेर था। सनाह हुई कि यह ऊपर चढ नहीं सकगा सो दमका नीचे ही खडा कगे। लगडा शेर नीचे खडा होता ह और एकके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा गढा होता चना जाता है। इतनेमे ही स्यारनीके बच्चे रोने लगते हैं। स्यार, स्यारनीमे पूछता है कि बच्चे क्या रो रह है? स्यारनीन कहा कि बच्चे लगडे शेरका मास खाना चाहते हैं। लगडा शेर इनना भुनकर घबडा गया। वह एकदममे भागा। दूसरे शेर जो ऊपर चढ पाए थे वे शेर भदभद गिरने लग और सब भाग गए। इमी प्रकार हम सबपर अनेक विपत्तिया छाइ है। जिन जगतके कनेश हैं वे परमे आपा बांधे हैं इस धुनियादपर अने है।

ये सारे क्लेश, विपदाएँ या ही खम हो जाएँ। यदि परम ममत्व बुद्धि है वह खिमक जाय। अच्छा परोक्षा ही करके दख लो जसे जो कहते हो कि यह मेरा घर है। बतावो—आपके पास क्या नियय है कि आपका ही घर है। आपका शरीर भी नहीं है। विषय कपाय विकल्पोना परिणाम तक भी आपका नहीं है। यह जो कुछ होता ह यह भी आपका नहीं ह। ये विषय कपायोके परिणाम आपके स्वभावमं नहीं ह। अ य कपायोक् करने वाली भी यह आत्मा नहीं है। केवल मै अपने स्वरूपकी भून गया ह, इनलिण मारे भ्रमट लग गए हैं। अब इम आत्माकी दृष्टि करा, शुद्ध स्वरूपकी पहचान करो। समस्त क्लेश इस आत्मस्वरूपकी दृष्टिमे नष्ट हो जाते है। सब क्लेशोके नष्ट करने की सामथ्य इम आत्मदृष्टिमें ही है। देखो अ तरङ्ग तपस्या करके जो निमन परिणाम होते है जिनसे घातिया कम नष्ट हो जात है तो अरहत अवस्था आती है। अरहत अवस्था आने ही उनका शरीर औदारिक शरीर परमोदारिक शरीर हो जाता है। घातिया कमके क्षयस पहिले कोई साधु रोगी हो कोई उपद्रुत गया ह, वृद्ध हो, कैसा ही हा, अरहत होनेपर शरीर निराग, पूण देदीप्यमान हा जाता ह। इम शरीरमे कितने ही परिणामन आते हैं, परतु बीतराग सबज अयस्थामे जब आत्मा हो जाना है वो फिर वह शरीर औदारिक न होकर परमोदारिक हा जाता है। अब भी दखो जब कोई रोग हो तब यदि भगवानकी भक्तिमे लीन हो जाते ह उनके गुणोमे अनुराग होता है, शुद्ध, निमन परिणाम होना है तब दखो रोग भी दूर हो जाते हैं। इमी कारण जो रोगा बुद्धिमान होना है पढ रड निरनर एनोकार मथरा जात किया करना है वद रोगमुक्त हा

जाता है। इन मन्त्रों में इनकी विधात गहिमा है कि ससाग्के बलेश दूर हो जाना तो सरल वान है भव भवके बन्धन भी नष्ट हो जाने है वनेश भी और भ्रमट भी समाप्त हो जाने है। ऐसी आत्माएँ शुद्ध होती हैं।

इनमें दो प्रकारके पवित्र आत्मा हैं, एक तो जो आत्मा शुद्ध हैं वे हैं और दूसरे वे हैं जो शुद्ध होनेके प्रयत्नमें सफल हो गये हैं। जो शुद्ध है वे हैं अरहन्सिद्ध, जो शुद्ध होनेके प्रयत्न में सफलता पा रहे हैं वे हैं आचार्य, उपाध्याय और साधु। साधु कहते हैं कि वह हैं जिनको अपने यथाय स्वरूपका विश्वास हो गया है, अपने आत्माके केवलज्ञानस्वरूपको शुद्ध देखते हैं। ये आत्मा किन्हीं रागोंमें सम्बधित नहीं हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। ऐसा जो आत्मचिन्तनमें दृढ़ हो जाता है, ऐसा जो अपनेको देखनेके लिए बड़ा उत्कृष्ट लालायित हो जाता है, उन्हें दूसरी चीज जगतमें नहीं रचती। उनका परिवार छूट जाता है आसार परिग्रह छूट जाते हैं। यह शरीर नहीं छूट पाना है। यदि शरीर भी छोड़ा जा सकता होता तो वह शरीरको छोड़कर बाहर ही रहकर आत्माकी उपासना करेगा। व तो आहार भी नहीं करते, किन्तु विवेक आहार करवा लेता है। यह शरीर धमसाधनके लिये है। शरीरकी स्थितिके लिये आहार आवश्यक है। सो दिनमें एक बार ही वे आहारकी एषणा करने हैं। एक बारसे ही यह शरीर टिका रहता है। एक बार जो आहार कर ले और बाकी समय तपस्यामें व्यतीत करे, निरंतर आत्मसाधनामें लगा रहे, ऐसी आत्माको साधु पुरुष कहते हैं। उनमें जो ज्ञानी साधु हैं औरोंको पढ़ाने हैं जिनको आचार्य, उपाध्याय घोषित कर देते हैं वे ज्ञानी साधु उपाध्याय कहलाते हैं, जो उड़े जायक हैं साधुवेष प्रमुख है, जिनकी आराधनामें साधु रहते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। देखो यह आत्मा ही परमेष्ठीका स्वरूप है, आत्मा ही मोक्षदा माता है। इस निज आत्मतत्त्वको, परमेष्ठीको निरन्तर अपनी दृढ़ आत्मसाधना द्वारा अपना आत्मवर्षण कर लेना महान् विवेक व पुरुषार्थ है। वह आत्मा जिनके ज्ञान दशन, चरित्र, श्रद्धा पूर्ण विश्वास को प्राप्त हो गए हैं जिनके ज्ञानमें सब विश्वके सब तत्व ज्ञान सब विश्वके सब तत्व ज्ञान पवित्रान होने हैं (ज्ञान हो रहा है) व है सिद्धा मा। य प्रभु सबज होकर भी अपने आनन्दसमयी हो रहे हैं, ऐसा परमानन्दका जो पिंड है उसीको परमात्मा कहते हैं। भगवानके दशन करना है तो अपने स्वरूपमें दृष्टि ले। बाहरी चीजमें न अपने का पता चलेगा और न भगवानका पता चलेगा। ये इन्द्रिया जिनको आत्माका घात करने वाला कहा गया है जो यह जीव इन इन्द्रियोंके कहनेमें लगा रहता है तो यह उरगद हो जाता है। मुझे केवल ज्ञानदृष्टिमें न जानना है। मैं ज्ञानमात्र हूँ, जानना ही काय करता हूँ और मैं इसके अति रिक्त कुछ नहीं करता। मैं अपने आपकी दृष्टिमें रहूँ, ऐसे उपयोगमें जो आनन्द होगा। उस आनन्दमें वह शक्ति है जिसके कारण भव भयके सचिन कम भी ध्वस्त हो जाते हैं। बाकी

तपस्याएँ जा की जाती है वह इन्द्रियोको कट्टेलमे लानेके लिए की जाती है। उन बाहरी चीजोंमे कम नहीं बटते, पर आत्मप्राप्तिमे जो मनोप होता है उसमे कम बट जाने है।

हम इस मसारमे अनन्तबालसे भटकते चले आए। उन अनन्त पर्यायोमे कितनी इच्छायें की हागी धमके प्रसङ्गमे, किन्तु उन चेष्टाओसे कुछ नहीं हुआ। जब धमका मयोग होता है तब ऐसमे भी यदि हमारी दृष्टि बाहर रमी बाहर ही हम उलझे रह, हम केवल अपने आपको न पहचान सके तो यह सब बाहरी ज्ञान है, मिट जावेंगी, हम कोगेके कोरे रह जावेंग।

एक सेठ था। उसकी राजामे बड़ी मित्रता थी। कुछ दिन बाद वह गरीब हो गया उसके पाम बूड नहीं रहा। एक दिन वह राजासे बोला—राजन् कुछ निविका सयोग हो तो पुन न्यापार करूँ। वहा २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हू, रत्नोके खजानेमे मे जाकर जितना तुमसे हो सके रत्न ले आवो। वह सेठ रत्नोके खजानेमे चला गया। ज्यो ही वह खजानेके अन्दर पहुँचा, एक बडा महन था, हाँन था। वहाँ देखता है कि यहाँ बहुत सुन्दर-सुन्दर खिलौने भी हैं बडे-बड कलायुक्त खिलौने देखना शुरू किये। खिलौनोंमे ही उसका मन रम गया। इतनेमे ही चार बज गए। चपरासीने निकाल दिया। वह फिर राजाके पाम आया, बोना—महाराज मैं तो खिलौनोंमे ही रह गया। मैं कुछ नहीं कर सका। राजाने कहा—कल २ बजेसे चार बजे तककी इजाजत मैं तुम्हें स्वणके खजानेमे जानेकी देता हू। वह मेठ उस स्वणके खजानेके अन्दर गया। वहाँपर भागी मदान था। वहाँ उसने सुन्दर सुन्दर घोडे देखे। वह घोडोका बडा शौकीन था। यह घोडा देखा, वह घोडा देखा। एक घोडार बैठ गया। जान देखने लगा, इतनेमे चार बज गए। चपरासीने निकाल दिया। वह मेठ राजा के पाम गया, बोना—महाराज यह भी समय मेरा या ही गया। मैं घोडोंमे ही पडा रहा। राजाने कहा कि कल २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हू। एक चाँदीके खजानेमे जाओ। जित तो चाओ ला सका, ले आवो। वह मेठ चाँदीके खजानेमे गया। वहाँपर उसने सुन्दर-सुन्दर चित्र देखे। नाना रूपोके भिन्न भिन्न प्रकारके चित्र देखे। उन बाह्य चित्रोका देखनेमे हा उसका मन रम गया। उस तरहेमे ४ बज गए। चपरासीने निकाल दिया। राजाके पास गया बोना—राजन् आजका भी दिन व्यथ ही गया। राजा बोले कि ३ दिन हो गए तुम नहीं चेन अचछा तुम्हें एक दिनका समय और दिया जाता है। एक ताँबेके खजानेमे कल जाना। जितना ताबा ला सको, ले आना। चौथे दिन जब सेठ खजानेमे गया तो वहाँपर एक बहुत ही अचछा स्प्रिगदार पलग देखा। पलगकी परीक्षाके लिय पलगपर वह लेन गया। नीद आ गई। इस तरहेमे चार बज गए। तब चपरासीने निकाल दिया। इसी तरह भाई इस मनुष्यपर्यायके चारपन हात है। बच्चा हुआ, फिर बानक हुआ, फिर युवा हुआ, फिर वृद्धा-दम्प्या हुई। कुमांगवस्थामे भी धमपालन करना आवश्यक है। आठ तकका बानक भी अरहत

हा मक्ता है। बालिग जनसिद्धा तमे ८ उपका माना गया है। आठ बपकी आयुमें तो सम्पत्ति, सम्यक्त्व व मयय करता है, परमात्मा हो जाता है। कुमार अवस्थामे भी धर्मसाधना नहीं किया, खेलोम ही समय बीन गया। युवावस्थाका समय स्त्रीप्रेमम व्यनीत हो गया, वृद्धावस्थामे पडे-पडे अघमरेमे हो गये। वनाबो किम पनकी इमने मार्थक किया ? ऐरो छहडाला एक बहुत मु दर पुस्तक है। वह तो प्रत्येक गृहस्थको कण्ठस्थ भी होनी चाहिय। उसमे पहिली डालमे चारो गतियोके दु ख बताते हुए मनुष्यगतिवा बणन किया है कि "बालपनमे पान न लह्यो। तरुण समय तरुणोरत रह्यो। अघमृतकसम वृद्धापनो ईमे रूप लखे आपनो।

बचपनमे तो ज्ञान नहीं किया, जवानीमे स्त्रोरत रहा, बुढापा अघमृतकसम है, बतावो अपना रूप कसे लख सकता है ? भाई कुछ लोग ऐमा सोच सकते है कि बुढापा तो आना ही है। सब कुछ कर लें, बुढापा तो आयगा ही। और बुढापेमे सब खराबो होगी तो किसलिये धम पुरुषार्थ करें ? इसका समाधान यह है कि जिम जीवन बचपनमे पान नहीं किया व उमो जीवने मयम न कर विषयरति की, ज्ञान नहीं किया तो युवावस्थाके बादम यह जीव वृद्धा हो जाता है, अघमरा हो जाता है तत्र वह कुछ नहीं कर पाता है। जहाँ धमकी ओर दृष्टि रहे, ऐसा पुरुष वृद्धा है तो क्या हानि है ? आत्मस्वरूपकी ओर दृष्टि तो ज्ञानी ही डाल सकता है। बडी अवस्थामे तो उन ज्ञानियोका पान ही मज जाता है, उनको हानि नहीं होनी है। ज्ञानी तो वह है जिमकी आत्माके स्वरूपकी ओर दृष्टि रह वही ज्ञान वास्तविक है। बडे-बडे रेडियो का आविष्कार, वैज्ञानिक कलाएँ आ जावें ना यह वास्तविक ज्ञान नहीं है। मैं आत्मा ज्ञान-स्वरूप हू यदि ऐसा अनुभव नहीं है तो जगतमे रच भी ज्ञानि नहीं हो सकती है। यदि मैं बाहरी पदार्थोमे दृष्टि करूँ, उनका ही अपना मानूँ तो क्या बाहरी पदार्थोमे कुछ अधिकार पाना अपने बमकी बान है ? अरे इन बाहरी पदार्थोका प्रवेश भी इस आत्मामे नहीं है। पर त्रि-होने विरल्प बनाया है उन विरत्पोसे या ही भ्रमसे परको अपना मान लिया है, इसका फल यह होना है कि य ऊमवयनोमे फम जाने है। ऐसा सब निगुण करा कि मैं आत्मा आन दधन हू मेरेमे ही मेरा काम पूरा गड।। यहाँके चकाचौध चार दिनके है, मिट जावेग। यहाँ कुछ नहीं रहगा।

मैं एर मत् मारभूत वस्तु हू म रहूँगा। अनादिस हू, अनतकाल तक रहूँगा, किमी न किमी रूपम रहूँगा। अब हमे क्या करना चाहिए कि हम केश न हो मैं अमुक जातिवा हू, वमके उदय ह, मैं अमुक कुल अमुक मजहबवा हू अमुक धन वाला हू उनना भमभ्रदार तथा धमा मा हू—य सब विरल्प ही विरत्पोसे है। य बाधाएँ वह अपनापनामे डाल रहूँ है। इन सब बातोसे दूर रहना चाहिए। अरे तू तो निर्विकल्प है, तेरेमे विषयकपाय ही नहीं है, तू तो ज्ञानसे रचा है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही दृष्टि धर्मना पानन है यही व-पागका

उपाय है। यह अगर कर लिया तो सत्र कर लिया और अगर नहीं कर पाया तो कुछ नहीं कर पाया। यदि ऐसा न कर पाया तो उद्धार नहीं होगा। दिखाकर नहीं, बनाकर नहीं, गुप्त ही रहकर तू अपना कल्याण कर सकता है। दिखावट, बनावट, सजावटसे आत्मा का कल्याण नहीं होगा। तू अपने अंतरको अपने उपयोगमें लगाने। तू बनावट, सजावट, दिखावट इत्यादि करता है। गुप्त होकर आत्मस्वरूपको देखनेकी कोशिश नहीं करता है। वननेसे धमकी बात कैसे होती है? दिखावेसे धम हमारा खतम होता है, सजानम धम हमारा नहीं रहता है। मो अपने आत्मस्वरूपको अपना लो और मनन कर लो, इस ही में मननमें तुम्हारा कल्याण हो सकता है अथवा कल्याण कोशो दूर है। जो अपनेमें है उस देखो और अगर न देखो तो अहंकारसे घुल मिल जावोगे, वही कीड़े मकोड़े हाँ गए तो सारी इज्जत धुल जायगी। यह क्यों धुल गई? अहंकारका परिणाम आया, सारी इज्जत धुल गई। एक जगह एक छोटी कहानी लिखी है कि एक साधु था और एक शिष्य था। दोनों एक राजा के बगीचेमें पहुँच गए। वहाँ दो पत्तन पड़े हुए थे, एकपर मयासी जाकर बैठ गया और दूसरेपर शिष्य जाकर बैठ गया। मयासीने शिष्यसे कहा कि तुम बनना नहीं। थोड़ी देर बाद राजा घूमने आया। उह देखकर राजाने सिपाहीसे पूछा कि बगलेमें ये कौन बैठे हैं? सिपाहीने कहा— महाराज दो अपरिचित व्यक्ति बैठे हैं, पता नहीं है कि कौन हैं? सिपाही शिष्यके पास जाकर कहना है कि तुम कौन हो? शिष्यने कहा कि देखते नहीं हो, हम साधु हैं। उस शिष्यको सिपाहीने कान पकड़कर बाहर निकाल दिया। सिपाही मयासीके पास जाकर पूछता है कि तुम कौन हो? साधु कुछ नहीं बोलता है। सिपाही राजाके पास गया और बोला कि राजा एक मनुष्य है, मान है वह कुछ बोलता ही नहीं है। और दूसरे से पूछा कि तुम हो? उसने जवाब दिया कि देखते नहीं हो कि मैं एक साधु हूँ। मो मैंने उसे कान पकड़कर बाहर निकाल दिया है। राजाने कहा कि जो मौन है कुछ बोलता नहीं उसे छेड़ा तो नहीं था। अरे वह रोई मयासी होगा। राजा के जानेपर शिष्य गुरते कहता कि मैं पीटा गया। गुरते रहा कि तुम बने तो नहीं थे। अरे तू तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। तू अपने आप भ्रमवश मानता है कि मैं गृहस्थी हूँ, साधु हूँ। इस बाह्य वेश भूषाकी दृष्टि छोड़कर अपने परमात्मस्वरूपको देखो। है तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा और बनता है और कुछ। अन्तर्दृष्टि करनेपर यह अनुभव करेगा कि मैं सबमाधारण एक चतयमात्र वस्तु हूँ। जो अपने आप चतयमात्र ही अनुभव कर वह न करेगा, निश्चय समयमें ही उसकी मुक्ति हो जायगी। हमें न देखना है कि मैं क्या हूँ अथवा न देखना है कि तपस्वी हूँ। मुझे अपने ज्ञानस्वरूपका सिंचन करना है। यह सिंचन ज्ञानसे होता है। ज्ञानकी उपासना की लीं भो— यह ज्ञान होना है कि मैं जानघा हूँ। यह दिखानेमें, बनावटमें, सजावटमें, मोचनेमें न

उसका बीज बनत रहना होगा। अपने आप ही रमनका प्रयाम करो। इसीमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य है। इस रत्नत्रयके एकत्रमें आत्माके एतत्त्वका विकास है। यह एकत्रदर्शन चिनामणिदर्शन है। इसके दर्शन बिना ही शरीरके क्लेशोका सम्बन्ध हो जाता है। यही ज्ञानमात्र स्वरूप हमारे और आपके उपयोगमें रहे। यही आत्माका रूप है। जिसने बाहरी पदार्थमें दृष्टि नहीं डाली, उसका ही जीवनमें कल्याण है।

इस आत्माका राग आदि विकार व्यक्त हो रहे हैं। उन रागादिकोंके होते हुए भी आत्माका स्वरूप जो ज्ञायकत्व है उस ज्ञायकत्वमें विकार नहीं है। भेद बल्बम जैसे हरा रंग नक्का देनेसे वह प्रकाश हरा मालूम होता है, खूब हरा मालूम देता है। पर क्या वह हरा होता है? नहीं। उसपर हरा रंग चढ़ा दिया गया है। जैसे जल है, जलमें हरा रंग मिला दिया जाय तो क्या जलमें हरा आदि रंग आ जायगा? नहीं, जल जत्र हो रहेगा। जैसे बिजलीके तारका प्रकाश हर, नीले, पीले रंगके प्रकट होते हैं, पर क्या भीतर जो बिजलीके तारका प्रकाश है वह प्रकाश क्या हरा, नीला, पीला होता है? नहीं। कभी कोई तार भी हरा, नीला, पीला आ जाय और उससे फिर हरा, नीला, प्रकाश भी झलके तब भी बिजलीका जो काम है, बिजलीका जो निजी प्रकाश है, ज्योति है, क्या उस ज्योतिमें विकार आ जायगा? नहीं आ जायगा। इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञायकस्वरूप भगवान् आत्मा इस शरीर देवालयेमें विराजमान है। इस शरीरमें कई प्रकारके रूप, रंग इत्यादि नजर आ रहे हैं। क्या इन पौद्गलिक पदार्थोंमें जीवोंमें विकार आ गया, ज्ञायकस्वरूपमें क्या विकार आ गया? नहीं। अंतरङ्गमें क्रोध, मान, माया, लोभ, असयम योग तथा नाना प्रकारके विकार होते रहते हैं। विकार हैं, पर इस आत्माका जो स्वभाव है वह चानमय है। क्या उस ज्ञानमय स्वभावमें विकार आ गया। अरे विकार होते हैं, फिर भी यहाँ विकार नहीं होने, ऐसा मम जब आपकी समझमें आता है तब आत्माका ममका पता चलता है। ५ में पानीमें लाल, गुलाबी, हरा कोई रंग डाल दो तो वह सारा पानी बिल्कुल हरा, लाल या गुलाबी या अन्य कोई रंगका ही नजर आता है। यह पानीका रंग हरा, नीला गुलाबी इत्यादि जो प्रतीत होता है तो वह पानीका स्वरूप है क्या? उस पानीके स्वरूपमें हरा पीला नीला अथवा गुलाबी रंग आ गया। वह केवल रंग डालनेसे ही रंगीत नजर आता है, पर पानीका स्वरूप रंगीत नहीं। पानी अब भी अपने स्वरूपमें स्वच्छ ही है पर उस पानीकी स्वच्छता रंगमें टक गई है। यह ज्ञायकस्वरूप भगवान् अपने स्वरूपमें स्वच्छ है अपने स्वभावमें अविद्युत है किंतु इन विषयोंके सम्बन्धमें, इन कर्पायके परिणामोंमें इस भगवान् आत्माका यह शुद्ध स्वच्छ स्वरूप ढक गया है। ढक गया है तो भी स्वरूपमें विकार नहीं आया। स्वरूपमें विकार आ गया होता तो निकालना भी यह विकार न भिंट सकता था। पानीमें रंग आ जानेपर भी कुछ

समय बाद रंग बरत जाता है और ऊपर पानीमें पतला रंग मालूम होता है। सभी पानी त्रिगुल ऊपर स्वच्छ ही है। रंगमें रंग है और पानीमें पानी है। रंगको धान में तो मांग रंग दिखना है और वहीका वही पानीमें सारा पानी दिखना है।

अब घरकी बात देख लो। घरमें पिताजी अपनी घोती और माफा पीने रंगमें रंगते है तो बोलते हैं कि माफा पीला कर दिया। साफा पीला हो गया, नीला हो गया नाल हो गया, क्या घोती पीली हो गई, लाल हो गई, नीली हा गई क्या ? चाह इनको बार बार फीचें, फिर भी रंग नही निकले। तो भी रंगम रंग ही है, घोतीमें घोती है, वस्तुमें वस्तु है। वह तो धोत्रे अपने स्वरूपको निए हुए ह। इतनी ऊपरी भेदकी बातें भी मोही जीव कैसे पा सकते ? भीनमें क्लई पाती गयी तो भीत नगती है कि फेद है अथवा यदि भीतमें हरा रंग पोना गया तो लगता है कि भीत हरी है। भीन हरी नहीं होगी भीत भीन ही है, जैसी धी बंसी ही है। यह हरा रंग हरा हो गया है भीत हरी नहीं हुई। इतनी बाहरकी भेदकी बातें समझमें जल्दी नहीं आती ह, पर कुछ तो समझमें आ ही रहा है। यह हरा रंग है, वह रंग ही है। भीत इसमें वहीकी वही है। लेकिन लोग इसको भूल गए हैं। वह समझते हैं कि भीत ही हरी है। भीतका आश्रय पाकर वह आधी बग इधका रंगका डेला १ हजार बग गजमें फल गया। पर देखने वाले लोग यह समझन है कि भीत हरी है। पर ऐसा नहीं है। भीत हरी नहीं है रंग ही हरा है। भीत तो भीत ही है।

मेमें अनेक उदाहरण ले लो। अब भाई धीरेसे अपनी आत्माकी ओर आवा। शरीर में यह जीव बद्ध है। पर जीव इस प्रकार नहीं होगा जैसा कि यह शरीर है। बुद्धिमत्ता है तो अपने ज्ञानस्वरूपमें ही दृष्टि देकर परल लो कि हम हम ही म ह। गायको जेवरीमें बांध दिया। लोग देखते हैं कि गायको इस जेवरीमें बाधा ह। गायका-गला रस्मीमें बांध दिया गया है, पर गायका गला पूरा ज्याका त्यो है। वह रस्सीसे नहीं बंधी है। उस गलेके चारो ओर रस्सी नटकी है, उसके घागे और रस्सी है। उसका ही एक छोरा दूसर जोरमें बंधा है, पर एकदममें ऐसा लगता है कि गला रस्मीमें बंधा है। अर गलेम गला है, रस्मीमें रस्मी है। रस्सीका यह बंधन है गलेका बंधन नहीं। देहमें देह है। शरीरमें आत्माका बंधन नहीं है। मैं आत्मा स्वरूपको देखू तब तो जान पडे कि आत्मामें कुछ बंधन नहीं है। जरा बाहर देख तो लो फिर वही रिकल्प आता है कि मैं देहमें बंधा ह। अरे बाहर न देखो। अपने आनन्दघन स्वरूपको देखो तो अपना स्वरूप अपनेम मिलेगा। बहुत विकल्प, अपायें होते हैं यह काम मेरा रह गया है इसमें टोटा पड गया है, इसमें यह कर्ना है, पुत्र स्त्री तथा परिवारको नहीं छोडते हैं उनको ही अपना सर्वस्व देखते है विपत्तियां उठाऊ है-  
 ~ अर तू केवल शुद्ध, जायकस्वरूप, सबमें निराला, जानघन अपनेकी निरख। तू एक गदाय है



जिसमें वही वही है यह तो एक पदार्थ है और तानस्वरूप परिणाम रहता है, जहाँ विवल्ग एक नहीं है। ऐसा यह स्वयं स्वरूप है। नमड़ेरी आँखें खोलकर यदि अपनेमें बाहरको देखागे तो उतरी ही विपदाएँ आयेंगी। मन्मथदेव तो कहते हैं कि उन प्राणियोंके रागादिक भाव जब होते हैं उस समय भी आत्माका जो स्वरूप है स्वभाव है, जायकत्व है -समे विचार नहीं होते हैं। मैं शुद्धस्वरूप हूँ—यह दृष्टि जो हो तो आन हूँ विचार भी खत्म हो जायँगे और यदि शुद्ध स्वभावमें दृष्टि नहीं है तो समझो कि विचार बुलाए जा रहे हैं। ग्याल में स्थान रखो तो रूपाल होता चला जायगा और अगर उस औरमें मुड़कर किसी आरामके स्थानपर उपयोग नगया तो वह बम ग्याल होने हुए भी भूल जाय। तात्पर्य यह है कि आत्माके स्वभावमें रागादि दोष नहीं हैं। जैसे कीयलेकी भाग जन रही है और उमीमें गंधक लोभान भी डाल रहे हैं। गमन योगान डाल देनेमें हरे, पीले रंगकी लो निकलती है। उस हरे नीली लो के होनेसे क्या अग्नि हरी पीली हो गई? अग्नि तो इस उष्ण पृथ्वीमय मग्न एक स्वरूप है। चाहे उसमें लो हो या न हो या किसी रंग या आकारका हो, इससे क्या? अन्येक परिस्थितियोंमें अग्नि एक सामान ही है। इसी प्रकार कर्मके विचित्र मन्त्रन्ध में इस आत्मामें जोध आता है, मोह आता है, माया आती है, नाना प्रकारके विचार, नाना प्रकारके विचार छाये रहते हैं। इतनेपर भी हम भगवान आत्माके स्वरूपको देखो तो वह गदा एक ही स्वरूप है।

यह बात सुननेमें समझनम घाड़ी प्राती भी हो तो भी इस बात का पता लगाए बिना उत्थानका माग नहीं मिलेगा। और और प्रकारमें तो हमके मागपर चलकर ही जहाँ का तहाँ प्रय उपायोसे तो मात्र कल्पित मतोप प्राप्त किना जा सकता है। जैसे गर्मीके दिनमें रातके समयमें समुद्रके पाम एक नदीके किनार खड़े हुए जहाज या बड़ी नावमें कुछ मनुष्य बैठ गये। जहाज या नाव रस्सीसे खूटम बँधी हुई थी। उसका खूटेमें खोला नहीं और उस पर बैठ गए। नावको वे खे रह हैं, तावन नग रही है, परिश्रम लग रहा है। दो तीन-चार घट तक नाव चली, ६ घट तक चली मवेरा हो गया। मोच रहा था मन ही मनमें कि अब चार मीन पट्टच गए हैं, अब ६ मीन पट्टच गए हैं अब मैं अपने गाँवके किनार लिए जा रहा हूँ खुश हो रहे हैं। जब मवेरा हुआ तो सबों कि नाव अपनी ही जगहपर स्थिर है। बोलने पर भूल हो गई। बहुत परिश्रम किया, नावन नगया पर नाव वहीकी वही रहा। क्या किया कि खूटम रस्सी खोली ही न थी।

इसी प्रकारमें हमको बात सोचकर बहुत बहुत बातें कर डाली। ४०-५० ६० यग बहुत बहुत बान कर ली। हम तरहस बहुत श्रम करनेपर भी जब हम अपनेको पात है तो हममें अज्ञानि ही नजर आती है। उस २४ घंटेके समयमें कोई लक्षण ऐसा नहीं नजर आता

कि वह कम करना हो। यदि ऐसा समय आ जाय तो उसे पाणि मिलती है। अपना स्वरूप तो देखो—यहां मत्र कुछ है वृथाथ हूँ स्वरूपवतनके अतिरिक्त मरेको कुछ करनेका नहीं है। लेकिन मोहके खूटम उपयोगकी रस्मी बंधी हुई है उस खोना नहीं है। हमारे १० लक्ष हैं, हमारा महल है हमारे यही परिवारक लोग सब कुछ हैं, परिवारमे दो चार लोग हैं वही गमन बढ़कर हैं। भगवानकी उतनी बदर नहीं है जिनकी कि बच्चाको है। उनका तो कुछ सबस्त्र है वही तो चार लोग है। परमपवित्र जान जिमके दशनम मिलता है उस स्वरूपका दशन ही नहीं हुआ। वह अपना आया कपे ? अनेक काम कर टाल, बड़े बड़े प्रयत्न कर डाले और बड़े प्रयत्न करके भी जगतमे जहाने तहाँ रह जाते हैं किन्तु आत्मशान्ति, आत्मीय आनन्दके लिए जो यत्न करना चाहिए उस यत्नके लिए तयार नहीं होते। करने हैं पर तैयार नहीं होते। जैसे उपयोगमे कोई जमा ने जाना है कि हमका तो यह दूकान करनी ही है। इस तरह जम करके यह बात नहीं आई कि हमको तो आत्मशान्ति लेनी ही है। मुझे तो आत्मक्याग करना ही है। इस तयारीके साथ भाग उतरा हुआ हो तो यह सब अपने स्वरूपकी बात यही बहुत जल्दी सुगमतरा अन्तरमे बठ जाय। देखो यह आत्मा या स्वरूप जो केवल ज्ञानरसमय है, जानन जानन ही जिमकी पूरी ढोड़ी है। त्रिविध जगतके सब पदार्थका सार यह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा है। इस आत्माम न विचार है, न विपदाए ह। स्वरूपकी बात यह है पर मत्के इस पिण्डकी बात यही सब सामने है। जीव है, माया है, लोभ है, शरीर तो केवल चल रहा है, ये सब मत्पिण्डम है, पर स्वरूपमे नहीं चल रहा है। हाँ केवल स्वरूपको पूरा पिण्ड मान लिया तो एक ब्रह्मवाद निकल आया है। मैं निर्विकार हूँ। ठीक है, स्वरूपसे निर्विकार हूँ, किन्तु इस पिण्डमे परिणमन तो निरंतर चल ही रहा है। पानी गम हो गया है, पानीमे बहुत गर्मी आ गई है पर पानीके स्वभावमे गर्मी है क्या ? पानीके स्वभावमे गमा नहीं है।

इतनी डूबान सुनकर कि पानीके सत्वमे गर्मी नहीं है वही उस खोनात पानीका पी लिया जाय तो पता चल जायगा कि पानीके स्वभावमे गर्मी नहीं है, पर इस पिण्डमे तो है। अभी कोई गम पानीको पी न तो बोलता है कि हाथ जीभ जल गई। कहता ह कि यदि पानी स्वभावसे गम नहीं हाता तो मैं त्रन बने जाता ? इसका पता लगातेके लिए पानी से मालूम कर। पानीके पिण्डमे गर्मी है पानीके स्वभावमे नहीं। उस इतने ही अरसे बेदात के ब म्यादादके स्वरूपमे अन्तर है। इस तयारस्वरूपमे विकार कटा है ? जिस स्वरूपमे विकार नहीं है ऐसा ही ज्ञायकमात्र म हूँ। मैं आत्मा अनन्त ज्ञानादस्वरूप हूँ।

हूँ आत्मन् । तू परमे दृष्टि न लगा, पर मिट जाते वाले है। तू मितने वाली, खी गटा। त्रिष्वाम करता है। परम दृष्टि उगानेसे दुख होगा। अभी घरमे दादाके गुजरनेसे, बापके

गुजरनेस, बच्चोवे गुजरना दुःख होता है। क्यों दुःख हो ? यो दुःख होता है कि उनमें बाबा, बच्चे वगैरके बारेमें यह निगाह किया था कि ये सब अमिट है। जब तक उनके मनमें यह नहीं आया था कि जो ममागम होता है वह मिटेगा ही। सो अगर कोई कह देता है कि क्या बाप जो मर जावेंगे तो कहेंगे कि वमें तूने मोक्ष लिया अपशकुनकी बात। अरे यहाँ पर जो दुःख है वह सब मिटेगा। शिकारी आदमीको कोई अगर माधु मिल जाय तो उसे बड़ा गुस्ता आयागा। शिकारके लिए साधुका दशन अपशकुन हा गया। मोहियोकें लिए ज्ञानी और वैरागी तो अपशकुन है। यदि सत्यस्वरूपको देखा जाय तो समझमें आता है कि शकुन तो जान और वैराग्य ही है। मोह सम्बन्ध तो अपशकुन ही है। यदि तूने अपना समय अपशकुनमें ही व्यतीत किया तो कष्ट तो लगेगा ही। यदि अपने स्वभावशकुनमें उपयोग दिया तो तेरेमें है तू है ही, तुम्हें कष्ट नहीं होंगे। जहाँ पर ज्ञानदृष्टि होगी वहाँ पर दुःख नहीं होंगे। अनित्यमें अनित्य की दृष्टि होनेपर वह पदाय मिट जाय तो वह ज्ञाना रह सकता है। वह तो यही कह उठेगा कि देखो वही बान हो गई ना जो हम पहले समझते थे।

अर वही तो होगा जो हम समझते थे। किसी मौदेके खरीदनमें यदि तुरन्त अनुभव हो जाय कि इसमें नो ठग गए। १० हजारका खरीदा हुआ बेचनेसे ६ हजारका पडता है नो इतनेकी हानि हो रही है। वह इस मौदेको वर्ष भर रखकर बेधता है और उतना टोटा पडता है तो पडो, परन्तु इससे उसे दुःख नहीं होगा, क्योंकि वह समझता है कि इसे एक वर्ष पहले खरीदा था, तब भी यह टोटा था। दखन मुननेका ही आनन्दके भीतर कितना कमान हो गया ?

यह प्राणी अनित्यको नित्य समझते तो जब हम मरते है तब हम रोते हैं। इस असार शरीरको जब हमने सार ही समझ लिया तब रोते है। असार चीजको हमने मार समझा, तब रोते हैं। दूसरेकी चीजको हमने अपनी समझ ली या तब रोते हैं। असत्यको सत्य समझ लिया उससे हम रोते है। वहाँ पवित्रता नहीं है, जहाँ मोह है। लेकिन कहते यदा है कि नाली गदी है, यह पानी गदा है, सडा हुआ है, उममें बदल आती है अर्थात् इस में बदलनेमें गन् पदाय पहुच गए हैं अत गदगी है। मडे गने मासनी तथा अय बाह्यपदार्थोंकी वट गदगी बसे हो गई ? साचो तो मही पहले ता इम गदगीमें मिष्टानके टुकडे थे, बर्फी थी, बूँदी थी, लड्डू थे, परन्तु अब वह नो विप हा गया अब वह गदगी बन गयी। अब जो गदगीकी शयन है वह भी पहले एक माफ पिड थी और उसमें पहिले देखो तो वे अणुस्वन्ध थ, आहारवगणार्थ थी। उनमें भी पहले परमाणु परमाणु थे उन स्क्न्धोपर जब इस आ मा ने बड्जा कर लिया उह ग्रहण कर लिया तो ये शरीरकी शकल बन गये वे बनकर इस शकलमें आ गये है। इन सब वानोका मूल कारण क्या है ? इनका मूलमें कारण यह ह्रा

कि इन परमाणुबोम आत्माका कब्जा हुआ, जीवका मन्वद हुआ, तब उन्हें ये विचित्र शक्तें मिलीं। जब तक हम पिण्डक साथ आत्माका मन्वद हुआ तब तक सब पवित्र था। आत्मा से सम्बन्ध होना, मोही आत्मासे सम्बन्ध होनेपर इन वगणावोकी ऐसी प्रगति हान गयी। अब देखो हमका मूल अशुद्धिकारक कौन हुआ ? ये सब गदगिया अशुद्ध है किमके प्रसादस ? जायोक मपके प्रसादसे जीवोके नहीं, मोही जीवोके। तब मोह ही तो मूल हुआ। देखा लोहमे जो लडका अशुद्ध हो जाता है उसको छून ता नहीं है। बाहर रहा, बाहर रही कभी छू न लो। यदि उस लडकेने छू लिया तो अशुद्ध हो गए, दिलम अशांति हो गई। दूसरने तीसर को, तीसरने चौथेको छू लिया, जहा तक नजर चलनी है वह सब अशुद्ध ही होत चल जात हैं। यह क्यों अशुद्ध हो गए ? उसने हम छू लिया। उन मन्वमे मूल खराब है कवल एक लडका। अरे यह लडका तो शुद्ध है किन्तु हो गया जठराग्निसे सम्बन्धे। यह जठराग्नि कसे बनी ? मोही जीवके सम्बन्धमे। लो, जठराग्नि भी हो गई जीवका सम्बन्ध होनेमे। अब सब गदी शक्न बनने लगी। अब मूल कारणका विचार कर ता मूलमे क्या अशुद्ध है ? किस वजहसे सारी चीजें अशुद्ध हो गयीं। अरे रागी जीवने कब्जा किया तो यह अशुद्ध हो गया। जीवके सम्बन्धसे यह अशुद्ध नहीं हुआ, किन्तु रागके सम्बन्धसे यह अशुद्ध हो गया। फिर यह राग हुआ क्यों ? यह अशुद्ध राग बना क्यों ? अरे मिथ्यात्वकी वजहसे यह अशुद्ध राग बन गया। दुनियामे सबमे गदा होता है मोह। क्या माससे गदा है ? हा मांसमे भी गदा है, खादसे गदा है तथा अन्न अशुचि पदार्थसे भी गदा है। हा, हा सब पदार्थसे गदा है। गदगी जो है उसका करन वाला भी यह मोह ही है। मोह है, मोहका सम्बन्ध जीसे है तो राग पैदा हुआ। तो राग तो मोह-परिणामसे हुआ। शरीर बन बैठा तो यह मोह। दुनिया म जो गनी चीज है तो केवल एक मह है और कोई दूसरी चीज इस दुनियामे गदी नहीं है। जिस मोहने हम ममत्न जगतको गदा कर दिया उसका महत्व इतना है कि भगवान भी छूट जाय, धर्म भी छूट जाय, सबसे मुँह मुड जाय, पर मोहसे मुक्त नहीं मोडत। यही वजह है कि हमारे धर्मके प्रयत्न तो होते हैं, धर्मकी बात बोलते तो हैं किन्तु उपयोगकी रम्मी मोह की छूटोसे गड़ी हुई है। ४० वष तक धर्म किया, पूजा किया, सेवा किया—)० वष तक, परंतु आज हम उसी गद पर ह। कर्पायम फल नहीं पडा।

वह महज उजला नहीं मिल सका। यह चीज समझने की है कि इस आत्माके जायकम्बन्धमे क्या विकार है ? मैं तो मैं ही ज्ञानमय ह, ज्ञानमय होना ही भगवान् स्वभाव है। ऐसा ही मैं शाश्वत निश्चल हू। यही साक्षात् भगवान् हू। भगवान् होनेके लिए बाहरसे कुछ नहीं आता। मैं तो बना बनाया भगवान् हू, मेरेमे विषय कर्पाय नहीं है। विषय कर्पाय का ज्ञानदृष्टिकी डेनीमे काटकर बाहर कर देना है और फिर है या बनाया प्रभु। जैसे पत्थर

की मूर्ति बनाई जाती है तो पत्थरसे जो कारीगरोंने मूर्ति तैयारकी । उसमें केवल बाहरी ढक्कन वाले पत्थर काट दिये, मूर्ति तैयार हो गई । कुछ बाहरसे मूर्ति तो नहीं रची । इसी प्रकारसे मूर्तिको तयार कर लेन ह, अय काम नहीं करने पडने ह । यह मूर्ति वही तैयार कर सकता है जो कुशन कारीगर है । जो मूर्ति पहले थी वह अब भी है । जरासा ढक्कन वाले पत्थरको काटकर हटा दिया, मूर्ति तैयार हो गई । इसी प्रकार इस आत्मामे भगवान बानेके लिए कुछ नहीं बाहरसे लाना है । केवलज्ञान स्वरूपको ढक्कन वाले जो विषय कपायोः परिणाम हैं उन विषय कपायोको ज्ञान-छेनीसे बाहर करना है । यह स्वरूप कृतकृत्य है । दुबान करने को पडी है, यह नहीं चनेगा तो इसके बिना गुजारा नहीं है । ऐसा कुछ नहीं है । विषय कपायोकी गदगीको हटाकर इस ज्ञानस्वरूपसे भगवानके स्वच्छ व सही दशन नो कर लें, इसको कर लें और अगर न कर सका तो जहाके तहाँ मौजूद मिलेंगे । हे ससारी प्राणी, हे ज्ञान व दशन आत्मन, तू दुखी क्यों हो रहा है, विवश क्यों हो रहा है ? अपने स्वरूपको तो देखो । तेरा तू ही है, एक जानघनरम, आन दपुञ्ज है । तुम्हारा आनन्दस्वरूप ही है । दुख तो तूने कल्पनाएँ करके बनाये है । स्वभावमे तो आनन्द ही बना हुआ है । तेरा स्वरूप चतुष्टय तुम्हमे ही है, तेरा उत्पाद ध्यय ध्रौव्य तुम्हमे ही होता है । पदार्थोका अपना अपना स्वरूप उन ही, उन ही मे है । अय पदार्थोका दूसरे पदार्थोसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । किंतु जब यह चैतन्यमय ज्ञानमात्र वरतु बाह्य पदार्थोमे कल्पनाए करता 'यह मैं हूँ' यह मेरा है' वस इन कल्पनाओसे दुख उत्पन्न होने लगता ह । दुखका मूल दृढ नहीं है । एक केवल भ्रममे बाह्यमें आ जानसे, अद्रुवका आश्रय मान लेनेमे, अमत्यको सत्य मान लेनेमे क्लेश उत्पन्न होने ह । क्लेशोका मूल दृढ नहीं, परंतु हिम्मत बरना नहीं तथा अपने आपके स्वरूपमें ही आपा युद्धि रखना नहीं । और क्लेश यो ही मौज करते करते स्वतम हो जायें मो कमे हो ? सबसे न्यारा विज्ञानघन एक निजो आत्मतत्त्व मैं समझू तो सारे क्लेश समाप्त हो जावेग, तेरा 'याय तू ही है । तेरा 'याय करने वाला कोई दूसरा नहीं है, तेरी पुकारका सुनने वाला कोई दूसरा नहीं है । तेरी प्रभुता तेरेमें ही है, तू ही अपनी पुकारको सुन सकता है, तेरी आवाज तेरा प्रभुत्व ही सदा सुनता रहता ह अयात् जैसे परिणाम उत्पन्न होते है वैसे ही इस प्रभु आत्मामें परिणतियाँ होनी चली जाती है । तेरा निराय तुम्हमें है । तू अन्यत्र दृष्टि मत कर । तूने अयत्र दृष्टि बहुत की, इसीकी वजहसे दुख होते आ रहे, यह मेरा स्वभाव नहीं है । परकी तो महिमान जान । महिमान कहन ह उमे जिसकी कोई महिमा न हो, आते हो तो आओ, न आन हा तो चले जाओ । ऐसे ही महिमान होते हैं, जिनके प्रति लोग कहते हैं कि इसकी जाहे यह बडा भी हो मेरे यहा महिमा नहीं है । तू अपने ज्ञानस्वरूपको, देख । और कर्मोके स्वभावसे उत्पन्न हुए भाव, राग द्वेष, क्रीध, मान, माया, लोभ, मोह आदि यह-

तेर स्वभावमे नही है। तू तो निश्चय, एक ज्ञानस्वभावमात्र है। तू अपनेको ज्ञानस्वरूप ही अनुभव कर। जैसे कोई पुत्र है इसके मित्र है, मैं उसका मित्र हूँ, कम तरहसे जो अनुभव करता है, जिनको मित्र माना है, जिनको वैभव माना है उन्हींमें उसे क्लेश होने हैं और उन क्लेशसि उमे रज हाना है, दुःख होता है। इसी प्रकार यह किन्हीं पदार्थोंको अपना मान लेते हैं तो हम बिगाडमे ही उभ दुःख उत्पन्न होता है। इस रागात्मक भावोंको तू अपना मान लेता है तो दुःख उत्पन्न होता है। भेदविज्ञानकी चरमसीमा यह है कि तू अपने औपाधिक भावोंको अपने आपमें 'याग' समझ। यह धन वैभव तो प्रकट न्यारे दीखते हैं। मरान है दखो यह तो प्रकट ही न्यारा दीखते है। यह मित्र तो प्रकट न्यारा दीखते हैं। परिवारके लोग भी जुदा जुदा हैं। और इसी आत्मभूमिक म जो अष्ट प्रकारके कम बचन वधे हुए है वे भी इस आत्मामे जुदे है। पुद्गल बहलालि हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श वाते हैं, वह सब भी न्यारा है। इस आत्मामे जो रागादि विकार उत्पन्न होत है उन्हींमे भुख व दुःख उत्पन्न होती हैं। अच्छा जरा परीक्षा तो करो कि विकार न्यारा है कि नहीं। एग टुपिमे देखने हैं तो वह न्यारा नहीं जचता है। मेरा द्रव्य ही तो इस समय यो परिणामता है। जब इसके कारण देखते हैं तो यह जुदा समझमे आ जाता है। यह विकार मेरा नहीं, यह मेरे स्वभावके कारण नहीं हुआ। रागादिक भाव मेरे स्वभावमे उठकर नहीं हान, किन्तु कमके उदयका निमित्त पाकर भाँके हुमे। जिन महात्माओंने, जिन श्रीभाग्यशाली पुत्रोंने इस निराले तथा चतय चमत्कारवान् स्वरूपको पहिचाना है वे आनन्दमय है और जि होंने अपने स्वरूपको नहीं पहिचाना है वे प्राणी मसाग्म मन्ते है, गीते ह। ऐ रोने वाले प्राणियो ! व्यथमे दुखी हो रहे हो, व्यथमे विचित्र हो रहे हो। तरो सहायता करन जाना ससारमे कोई है क्या ? नेरको दड देने वाला नाई दूमरा इम जगतमे है क्या ? तरा अहित करने वाला, तेर पहिचानने वाला, तुम्हे मुक्तिमे ले जान वाला, तेरको इम ससारमे मटकान वाला कोई दूमरा इस जगतमे है क्या ? कोई नहीं है। आप तो परिणाम करते ह और य क्लेश अपने म ही आटोमटिक बनते चले जात है। इन दुःखोंमें बचना है तो अपने स्वरूपका दखो। दूसरा कोई उपाय नहीं है। धम का पालन इसीको बहते ह। धम बाहर नहीं, वेश-भूषाम नहीं, नाना स्थानामे नहीं, नाग पद्धतियामे नहीं। केवल निज महज स्वभावमे यह ही मैं हूँ ऐसा मान लेनेसे, ऐसा अगीकार कर लेनेसे, ऐसी दृष्टि बना लेनेमे धमका पालन है। इस ही बातके लिए यह व्यवहार धम है। सत्संग करने हूँ तिम प्रयोजनके लिए कि हमारी दृष्टि ऐसी बनी रह कि हम धमके पालन के योग्य बने रह। इमके लिए सत्संग किया जाना है। उपकार सत्संग जा किए जाते है इम-लिए किए जाते है कि मरी बुद्धि तमी व्यवस्थित रहे कि मैं अपने स्वभावके दखन करनेके लायक बना रह। अपने स्वभावके दखन करना सोई धमका पालन है। दुःख तो कल्पनाधोमे

बनाया गया है। कोई भी दुःख हो रहा हो, यही निराश्रय कर लो कि और कुछ नहीं है, केवल कल्पनाएँ बनी रहीं। वम इमीसे दुःख होता रहा है। इन कल्पनाओंका बना लेना, इसीका नाम दुःख है। जैसे त तो टोटा पड़ा है, न विपत्तियाँ आती हैं, न हमारे लिए कोई अनर्थकी योजना कर रहा है। केवल कल्पनाएँ बना बँटा होऊँ कि हमारे आश्रयके लिए कोई योजनाएँ कर रहा है। वहा कुछ नहीं हो रहा है, वहा अपने हितकी ही बात बन रही है और मनमें कल्पनाएँ कर ली कि मेरी हानिके लिए योजनाएँ ये बना रहे हैं तो इसीसे दुःख होता है। बाह्य पदार्थ है, हैं, वे अपने आपमें परिणामते हैं। हम ऐसे हैं, वह वैसे हैं, इस प्रकारसे वस्तुस्वरूपके अनुकूल विचार चले इससे उन्हें आनन्द है। मुख और दुःख वही बाहरसे नहीं आते हैं। जैसी भावना है वसे ही दुःख तथा सुख है। वस्तु है किसी दूसरे प्रकारकी और मान लेना उसे निम्न प्रकारकी तो दुःख होगा ही और वस्तु जैसी है तैसी मान ले तो सुख होगा। वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसी बुद्धि बने तो सुख है। चाहे बाहरकी नरकगतिके दुःख भी भोगे जा रहे हों, किन्तु यदि आत्मामें मिथ्यात्व नहीं है तो आत्मामें सुख है, कोई क्लेश नहीं है। और अन्तरमें सम्यक्त्व नहीं है तो उसकी आवृत्तता बराबर लगी चली जाती है। सम्यक्त्व बराबर सुख को पैदा करता है और मिथ्यात्व मदा आकुलताप्राप्ति को पैदा करता है। जैसा है तैसा जान हो जाना, जसा है तैसी समझ हो जाना, यही ज्ञान है। ज्ञानी गृहस्थ यद्यपि असपत्नके काम करता है, चरित्रके प्रतिबल भी चरित्त है पर जैसे पतंग उड़ाई गई, पतंग कितने ही ऊपर पहुँच गई है तो उतर तो अपने हाथमें है, वह पतंग वही बाहर नहीं जा सकती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व ह तो चाहें उपयोग थोड़ा भ्रमकी ओर हो जाय, विचलित हो जाय, यहा वह पहुँच जाय तो वह सब सम्यक्त्वके आश्रयकी बात है। वह अपने उपयोगको शीघ्र अपनी ओर बना सकता है। होता भी ऐसा ही कि श्रद्धा तो मही है, फिर भी मागपर नहीं चल पाता। कौन नहीं जानता कि हिंसा, भूठ, चोरी कुशील परिग्रह ससारमें भटकाने वाले हैं। इनकी निवृत्ति होनेपर भलाई है फिर भी लोगो को कुछ समय तक करना पता है। पर यदि श्रद्धा है तो पाप बम हो जाते हैं।

जम सामान्य अग्नि पड़ी है। एन पुष्पना जबरदस्ती टकेलकर कहा जा रहा है नि आगपर चलो तो वह पगकी आगमें ऊपर ऊपर रगकर निम्न जायगा। पर एक ऐसा आदमी जिसके पीछे अग्नि पड़ी हुई है आर कहनेमें नहीं, किन्तु किसी कारण पीछे पैर रख नेता है। इन दोनों पुष्पोंमें जरा बनलाइए कि अधिक कौन जलेगा ? जिसने पीछे बिना प्रेरणाके पैर रख दिया है, उसको पता नहीं था ता वही अधिक जलेगा। उसको आगका पता न होनेमें जल्दी उठेका परिणाम भी नहीं है, सो अधिक जा गया और जो सामने देख रहा है वह जल्दी जल्दी पैर खींचकर निकल जायगा। इसी प्रकार जिसका ज्ञान है, श्रद्धा है,

वैराग्य है, फिर भी कोई परिस्थिति आती है जिसे कुछ प्रतिकूल चलना पड़ता है। पर प्रतिकूल चलने पर भी उसके विपरीत खिंचा हुआ रहता है। जिसमें नानम्बन्ध नहीं, विषयोमे आसक्ति है, उसके वम बन्धन विशेष है। ज्ञानीको विषयामे आसक्ति नहीं होनी, इससे वह मोक्षमागस्य है। एक कुत्ता जानवर होना है, वह बड़ा स्वामिभक्त होता है, आज्ञाकारी होना है। २ रोटीके दुग्धोमे ही २४ घट पहरा देता है। अपनी पूँछ हिलाकर बड़े प्रेमसे अन्न मालिकको बड़ा प्रेम दिवाना है। देखो कुत्ता कितने काम आता है ? चोरीसे बचानेके लिए रखवाली करता है, कोई उपद्रव मालिकपर आ जाय तो शीघ्र कुत्ता अपने मालिकका उपकार करनेके लिए तैयार हो जाना है। एक मिहको देखते हैं तो दिल दहल जाता है। किसी किसीका तो हार्ट फेल हो जाना है। कोई कोई तो शेरसे डरकर मर जाता है। कितना अहित करने वाला यह शेर है ? क्या जी जो उपकारी है, जो भला है उसकी उपमा दना चाहिए या नहीं। अच्छे पुत्र किसी सभामे खड़े हो जाएँ और कहें कि फलाने भाई तो बहुत उपकारी हैं, इनका कहना क्या है ? यह बहुत ही उपकारी एव धर्मात्मा है। यह तो एक कुत्तेके सम न है। इनकी बड़ी भय आत्मा है। यह बड़े उपकारी हैं। और उसी को या अथ किसीको यह कह दिया जाय कि यह शेरके समान है (यानी दूसरोकी जान लेता है)। ऐसा नाम मुन करके वह खुश हो जायगा। पर इसका बुरा अर्थ होता है। यदि किसी व्यक्तिको यह कह दिया जाय कि यह व्यक्ति कुत्ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह व्यक्ति कुत्तेके समान स्वामिभक्त यथा आज्ञाकारी है। पर अंतर किम बानका आ गया ? यह आत्मात्मिक ममको बताने वाला अंतर है। और कोई कुत्तको लाठी मारता, है तो उस लाठीको कुत्ता बचाने लगता है। वह ममभक्ता है कि मेरा दुश्मन यह लाठी है। मेरा अहित करने वाली यह लाठी है। यह हुई निमित्तदृष्टि अर्थात् निमित्त ही मेरा सप बृद्ध करने वाला है। ऐसी दृष्टि हुई बुनेकी जैसी दृष्टि। उसको यह पता नहीं चल पाया कि मेरा दुश्मन लाठी नहीं है बल्कि यह पुरुष है जब कि शेरको कोई लाठी, तनवारम मारे तो शेर यह नहीं मम भक्ता है कि मेरा दुश्मन लाठी और नखवार है बल्कि वह यह ममभक्ता है कि यह व्यक्ति ही मेरा दुश्मन है, इसलिये वह शेर उस पुरुषपर ही हमला करता है। एककी दृष्टि है कि मेरा दुश्मन लाठी है और दूसरका दृष्टि है कि मेरा दुश्मन पुरुष है। यही ज्ञानी और अज्ञानीमे अंतर है। ज्ञानी देखता है कि धन, वैभव, परिवार किसीमे मेरा सुख नहीं है। मेरा सुख मेरे अंतरसे उठता, पर नु अनानी यह देखता है कि धन वैभव, वृद्धि, परिवार आदिमे ही सुख है। ज्ञानी यह सोचता है कि बाह्य पदार्थोंस मुख नहीं होता, पर अज्ञानी यही सोचता है कि बाह्य पदार्थोंपर ही मुख मुख निभर है। अज्ञानी जब अपनी प्रभुताको बर्णना करता है। वह सोचता है कि यदि धन, परिवार, सदस्य तथा अनुकूल



नुकसान है। परन्तु नुकसान है—इसी बाह्य दृष्टिमें यह आत्मा पूरा स्वच्छ हो तो दुःख नहीं होगा। एक पुरानी घटना है कि बज्रदत्त चन्द्रवर्ती जब फूलमें मरे हुए भँवरेको देखते हैं तो देखकर विचार करते हैं कि यह भँवरा फूलकी मुगधमें आसक्त होकर इस फूलमें ही छिपा मर गया। कोई फूल ऐसे भी होना है कि दिनमें तो खुले रहते हैं और शाम होते ही बंद हो जाते हैं। भवरा मकरदरस चूसनेके लिए बैठ गया शामको और उसी फूलमें बंद हो गया। जिस भवरेमें इतनी तावत है कि काठमें छेद कर सकता है। एक ओरसे छेद करके दूसरी ओरसे निकल जाता है। फूलकी उन कोमल कोमल पलुडियोंमें आसक्त होकर भवरा मकरदरसका पान करता है और वही मर जाता है। इसी तरह आत्मामें तो अतन्त शक्ति है, आनन्द शक्ति है, केवलज्ञानकी शक्ति है। परन्तु विषयोंमें आसक्त होकर अपने ज्ञान प्राणको बरबाद कर रहा है। आत्मामें क्लेश या आनन्द केवल ज्ञानने की बलापर निर्भर है। लो, शरीरको देखो, आनन्द खत्म हो गया और लो शरीरस्वरूप दमनमें उपयोग बन गया, तो आनन्द प्रकट हो गया। ऐसी महान् समत्वारीकी कलाय युक्त यह भगवान् आत्मा है।

यह प्राणी बाह्य दृष्टि करके कि मुझे तो बाहरी चीजोंसे आनन्द मिलता है, बाहरमें ही आसक्त होकर बाहर बाहर ही घूमता है। इस प्रकारका प्राणी बाहरी पदार्थोंको नहीं छोड़ सकता है। यह भूला हुआ प्राणी भ्रममें ही रह रहकर अपना आत्मजल खो देता है और बरबाद हो जाता है। ऐ प्राणी! क्या दुखी हो गये हो? तेरा तो स्वरूप भगवानका है। तेरेमें भी तो वही द्रव्य वही गुण है, ६ चीजें हैं। भगवानकी आत्माका तत्त्व शुद्ध ज्ञानके द्वारा आनन्दमय है, जानघन है। मेरे आत्माका उपयोग अशुद्धकी ओर है, यही तो हो गया अन्तर। चीज तो एक है जिन्म टुविधापन नहीं है। ता जैसा मुग्धका भण्डार प्रभु है वैसा तू है। परन्तु अपने आपको नहीं जानता है। इति वारण बाहरी फलामें फस रहा है। २४ घण्टेके समयमें २ क्षणको सबकी कल्पनाएँ छोड़कर अन्तर्मग्नता देखो। तू अशुद्ध ज्ञानानन्दका पिंड है। कहते हैं कि जीव हवा है। फल माग उड़ गया। यह जीव हवामें भी अत्यन्त सूक्ष्म है शरीरमें अत्यन्त जुदा स्वरूप वाला है। शरीरके अन्दर है, इसमें निमित्तनमित्तिक भावाका होना वारण है। नदी तो शरीरमें इनना संयोग होनेकी भी गुञ्जाइश नहीं, तेरे परिवारके लोग तेरे नदी हैं जिनसे तू इज्जत आहता है, यह तेरे नहीं है। तू तो चैतन्य स्वरूप एक बन्तु है। ऐसा मुग्धका भण्डार तू है। अन्तर भीतरमें देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप देखने रहो।

भावयद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारणम्। तावद्यावत् पराचक्षुन्वाज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितम्।

एक समयसार यह अध्यात्मका एक ही ग्रन्थ है, जिसमें अध्यात्म पद्धतिसे आत्मज्ञान स्वरूप बनाया है। उसमें आत्माका स्वरूप बतते बताने उसका उपाय, भेद, ज्ञान कहते हैं।

श्रीर शिक्षा दत्त है कि ह आत्मन ! तब तक भेदविज्ञानकी भावना करो जब तक यह ज्ञान ज्ञान मे प्रतिष्ठित नहीं हो जाये । मैं ज्ञानमात्र हूँ, मृद्ध चेतन्यस्वरूप हूँ । इस प्रकार सत्रम निगता अपने अपने चेतन्यस्वरूपको रखा । यही काम अभी पडा हुआ है । यही काम कठिन है, पूजा सरल है । भरे नहीं भैया अपना यह काम सरल है पूजा कठिन है । पूजाम १० माघन जुटाने है । यहाँ क्या है ? जैम ही वसा अपनेको दख टानो, यह क्या कठिन है ? जमका पानन यही है । वादगी चीजें तो महारा मात्र ह, उनम दृष्टि न दा । जम नानेमे ऊपर आत्म जो सीढ़ियाँ ह व तो सहाय मात्र हैं ऊपर अपने त्रिम । सीढियाम प्रम नहीं कर तो । सीढियाँ बहुत अच्छी है वयो मुखद ह मैं नहा छोड़ूंगा । अर तू न छाया तो वहाँ पडा रहेगा, बाह्य ता तर सहायक है । पत्नी सीढीपर बरम रखकर उमरा छाड दें, दूसरीको छोड दे, तीसरीको छोड दे । ग्रहण किया है छाड़ने लिए । ऐसा न खलो कि हम ता पहनेने हा छोडे हैं, पहलेमे ही छाडे पडे है । नहा ग्रहण करके छोड़नी बान है । यहाँ कुछ छाडना नहीं । यथाथ ज्ञान जो हममे ही ज्ञान है, हममे ही आरण्य है, एमा स्वरूप बाता यह म निश्चल रूपसे अपने आपम रहूँ और अपने आप मुग्धी होऊ । म क्या हूँ, हम बातको समझने के लिए इस शोकमे पाव बातें बनाई गई है । पहली बातमे कहा है कि यह आत्मा ज्ञान पिंड है । दूसरी बानम श्रय समस्त पदार्थोंम भिन्न बताया है । तीसरी बानम स्वभावसे निर्विचार कहा है । चौथी बानम स्वतंत्र कहा है और पाँचवी बातम गहज आनन्दमय दिवाया है । इही पाँच बानाके विवरणसे मता करीपर आत्मामे यथाथ बल बुद्धि हा जायगी । मैं ज्ञानविष्णु हूँ, ज्ञान ही मरा स्वरूप है । जमे गर्मी हा अग्निका स्वरूप है वस ज्ञान ही मरा स्वरूप है । जस बोयना निकोना, जो टूटा है, जनना है तो वह अग्निका स्वरूप नहीं है । अग्निका स्वरूप तो कबल गर्मी ह । और बान तो निमित्त पावर होनी ह । यह मैं आत्मा ज्ञानका पिंड हूँ ज्ञान हा इसका स्वरूप है । ज्ञान रसमय है । यह आत्मा मच्छके शरीरम इतना नम्बा चौडा हा गया और चोटोप शरीरमे इतना छोटा हो गया । ऐसा छोटा बडा हो जाना, फील जाना, यह आत्माका स्वरूप नहीं है । यह तो निमित्त पावर होता है । आत्माका स्वरूप तो ज्ञान है । ज्ञानपिंड यह आत्मा है और श्रयसे भि न ह । मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उा मयमे मैं जुदा ह । यह अस्ति और नास्तिका जिक्र किया है । मैं मैं हूँ, कुछ और नहीं हूँ । हूँ तो जानपिंड और मरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ है व सब मैं नहीं हूँ । इसीका बहन ह एवत्व विभक्त व । तू एक व विभक्त, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वस्तु की पहचान म्यादवादमे जानी है । म्यादवादका आश्रय लिए बिना वस्तुमोस परिचय नहीं होता ।

यह पीछी है, ता यह पीछी ह और और नहीं है । पीछी चारों ओर, पीछी ही

दरी हा जाय तो यह सत् नहीं हो सकता है। पदाथ सत् कहलात है तब जब अपने स्वरूपसे हो और परके स्वरूपसे न हो। यदि वह परके स्वरूपसे न हो व निजस्वरूपसे हो तब तो वह पदार्थ रह सकता है अथवा नहीं। पदाथ तभी कह सकते हैं जब अपने स्वरूपसे तो हो और परके स्वरूपसे न हो। यह चौकी है, है, स्पष्ट दीखती है। यह चौकी अपने आपमें तो है, पर इससे अतिरिक्त जितने पदाथ है उन सब रूप नहीं है तभी तो यह पदाथ है। इसी तरह अपने आत्माकी बात लगाइए। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे हूँ और परके स्वरूपसे नहीं हूँ। अपने आपमें हूँ, मैं अन्य जीव नहीं हूँ, कोई पुद्गल नहीं हूँ अथ किसी द्रव्यरूप नहीं हूँ। वह मैं क्या हूँ? इसके बारेमें बताया है कि मैं जानपिंड हूँ। आत्मामें ज्ञान ही का तो सारा वैभव है, ज्ञानका ही सारा कमाल है। ज्ञान ज्ञान ही तो आत्मा है, अमृत है, ज्ञान भावात्मक है, ऐसा ज्ञानरस इस आत्माके साथ अथ अथ भी गुण मालूम होते हैं। जैसे आनन्द है, श्रद्धा है, चारित्र्य है, परन्तु यह सब कुछ भी लगा रहता है। मानो ज्ञानधर्मके अस्तित्वकी सेवाके लिए सब गुण हैं। सबसे प्रधान एक ज्ञानगुण ही है। जब हम आत्माको पहिचानने चलें तो और-और बातोंको देखकर हम आत्माको न अनुभवमें ला सकेंगे। जैसे सोचा कि यह मैं आत्मा कितना लम्बा छोटा हूँ? तीन चार हाथका लम्बा एक हाथका चौड़ा, इतना ऊँचा, सोचते रह, पर ऐसा सोचनेमें आत्माका परिचय न मिल सकेगा। आत्माका अनुभव न हो सका, आत्माकी पकड़ न आ सकेगी। यह मैं आत्मा क्या हूँ? अरे जो गुस्सा आ रहा है यह है आत्मा, ददका अनुभव है यह है आत्मा, त्याग है यह है आत्मा। सुखका, दुःखका, हर्षका, मोजका अनुभव है तो यह है आत्मा। ऐसा मोचनेमें आत्माका अनुभव नहीं हो सकता।

तो है क्या आत्मा? अरे आत्मामें अनन्त शक्ति है और उम शक्तिके प्रतिममय परिणामन चलते रहते हैं। अनादिमें परिणामन चला गया और अनन्तकाल तब परिणामन चलेगा। परिणामन तो होगा पर परिणामन या शक्तिभेदकी दृष्टिमें परिचय नहीं हो सकता, आत्माका अनुभव नहीं हो सकता। ऐसा पक्कमें नहीं आ सकता कि जिसमें स्पष्ट पहिचानमें आवे। अरे यह है आत्मा। जैसे हाथों रग्या म्त्राका देला है पहिचानमें आ जाता है कि यह है। एक ज्ञानदृष्टिमें आत्माको मोचो कि यह नान्स्वरूप आत्मा है जो जाननका ही काम करता है वह ही आत्मा है। इतना ही नहीं जाननेकी जो शक्ति है, नैवालिक जो ज्ञानस्वभाव है वह आत्मा है। इस तरह केवल जानस्वरूपको ही अथय रखो तो नानस्वरूप ही लक्ष्यमें रहने रहते यह लक्ष्य भी झूठकर ज्ञानमात्र आत्माकी और अनुभव हो जाता है। यह चीज प्रयोग की है। जितने शब्द कह गए उनमें शब्दोंके सुनोसे आत्माका अनुभव नहीं। इतना बयान करनेमें भी आत्माका अनुभव नहीं। इसका तो भीतरमें उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हूँ और जाननका जो स्वरूप है वह ही लक्ष्यमें लेवें, अतः मात्र मैं हूँ, ऐसा मनन करनेसे आत्माका परिचय

मित्रता है, आत्माको पकड़ होती है। तो यह इस नास्ति वाले दूसरे न्यायमे अलग जान नहीं है। म अ य सब पदार्थोंमे जुदा हू। इसको भी साथमे विचारना चाहिए। अरे नहा यह नो पहलेकी बात है। जब जानानुभवका अवसर आ रहा हो वहा विभक्तपनेकी वान तोचना विघ्न है। आनन्द तो आ रहा था। मैं जानमात्र हू, केवल जानस्वरूप हू—ऐसा उपयोग करनेसे जानमे ही नामे पहचानका आनन्द आनेका हो और वहाँ नास्तिका विचार करो तो वह विघ्न है। यह तो वस्तुस्वरूपके पहचाननेकी जड़ है।

अरे दूसरी बातमे तो निणय कर लो कि मैं जगतमे सब पदार्थोंमे न्यार, ह। अनुभव के मागमे सोचनेकी आवश्यकता नहीं, यह तो निणयकी वान थी। मैं तो स्वचतुष्टयसे हू, पर-पदार्थके चतुष्टयसे नहा हू। यह बात निणय कर लेनेके लिए थी। पर जब ज्ञानके अनुभवके आनेका टाटम चल रहा हो उस समय स्याद्वादका आश्रय लेनी जरूरत न्ही। स्याद्वाद निणय के लिए है। निणय होकर फिर हमें उसके मममे ही चले जाना चाहिए। फिर स्याद्वादने विक्ल्पोको ग लिए फिरें। मैं जानपिंड हू और अ य सब पदार्थोंसे भिन्न हू स्वभावमे निर्विकार हू। यहाँ क्रोध, मान, मया, लोभ इत्यादि विकार मुझमे आते तो हू, परन्तु यह मेरा भाव नहीं बन गया। स्वभाव होना तो सदाकात ही यहाँ रहा करता। जैसे अगुली टडी कर दे तो टडी तो हो गई, मगर टडी हो जाना अगुलीका स्वभाव नहीं है। अग्निकी गर्मीका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया। गर्म तो हो गया, पर गम हा जाना पानीका स्वभाव नहीं है। विकार तो आ गए पर, विकारोका आना आत्मामे स्वभाव नहीं है। मैं स्वभावसे निर्विकार हू। अपने आप महत्स्वरूप का मेरी मत्ता है नावमान ही हू। भवैसा सत् हू इस बात जब देखो तो मैं एक चैत यमात्र वस्तु हू, ज्ञानमात्र हू मैं निर्विकार हू ऐसा अपनेकी दयना चाहिए। और मैं धनी हू मैं गरीब हू मैं लडके बच्चे वाला हू, कुटुम्ब वाला हू, परिवार वाला हू यह सब क्या है? यह सब विकारोम फँसना है। विकार रूप ही अपनेकी माननेपर आत्मा विकाररूप नहीं हुआ, विकार रूप माननेमे आत्मा वही विकारमय नहीं हो गया, किन्तु अपना उपयोग विकाररूप बनाना ही विकारोम आना हुआ।

मोही तथा अनानी पुण्य ही अपना उपयोग अपनेकी नाना विचित्र रूपोम मान-कर विकाररूपमे बताते ह, परन्तु जानी पुण्य मैं पुण्य नहीं हू, मैं स्त्री नहीं हू मैं बालक नहीं हू, मैं बालिका नहीं हू, मैं धनी नहीं हू, मैं गरीब नहीं हू—इस पकारसे सब विचित्रताका को बना कर अपना उपयोग यथाथ रूपमे बनाते ह। मैं केवल एक चैत यमात्र वस्तु हू, इग मुझ चतन्यमात्र वस्तुता अन्य वस्तुके साथ रख भी सम्भव नहीं है। वे सब पदार्थ है वे अपने मे हैं, मैं एक पदार्थ हू, अपने आपमे हू। सब पूण्य मतत्र हू आजाद हू, अपने अपने स्वत्व मे मौजूद हू। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ सम्भव नहीं है। स्पष्ट देखो यह

वस्तुका रक्त्वं है । यह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्त्वं है, अपने स्वतन्त्र स्वरूपमें है, पर ऐसा न मानकर किसी दूसरेके साथ सम्बन्ध हो, ऐसी भूठी बातें बनावें, ऐसा झूठा विश्वास बनावें, बस यही ससारके दुःखोकी जड़ है । धन है वह उपयोग, अन्य है वह ज्ञान धन है वह आत्मा जो ससारके पदार्थोंको स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र, यथार्थ ममभूते रहते हैं । ज्ञानी गृहस्थी जहां पर रहते है वह अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री इत्यादिको भिन्न ही समझते है, धोखा देने वाले समझते है । उहे यह प्रतीत है कि मेरा कुछ नहीं है, रच भी इनसे सम्बन्ध नहीं है, ये चीजें मेरी हो ही नहीं सकती हैं । और जो कुटुम्ब, परिवार स्त्री, बच्चो इत्यादिको ही अपना सब कुछ ममभूते हैं तो उनके हाथ केवल पापना क्लक रहता है ।

ये तो त्रिकालमें उसक नई हो गाने है । अगर कुटुम्ब परिवार, स्त्री, बच्चोको अपना माना तो प्राफिटमें पापका क्लक आ जायगा और ससारमें रहनेकी बात आ जाये, अन्य वस्तु तो आ नहीं सकती । अर इस समारमें तेरा कुछ नहीं है । जगतके बाह्य पदार्थोको अपना माननेमें किनना प्रोफिट है ? अपना मान लेनेमें क्या वह अपने हो गए ? वह अपने तो हुए नहीं । वे अपनी मत्तामें ही है । त्रिकालमें भी वे अपने नहीं हो सकते है । मिथ्या समझकर अनेक विकार बन गए अनेक कष्ट बन गए, ससारमें बहुत समय तक दुःख रहा । नेकी रजिस्ट्री करा ली । यह सब मुसीबतें आजीवन रही । अय वस्तुना तो कुछ अण भी मुनाफा न हुआ । जो दुनियामें कुछ चाहता है उसकी ऐसी ही हालत होती है ।

एक सेठ थे, हजामत बनवा रहे थे । वह सेठ बहमी था । वह नाई बनाना रहा था । अब मेठने जब देखा कि नाई तो बात बना रहा है, इसमें तो मेरी जिन्दगी नाईके हाथ है । सेठ डरता है । वह सोचता है कि कही बाल बनातेमें गला न कट जाय । इस डरसे वह नाईसे कहता है कि बहुत बड़िया समझकर बनाना । तुमको हम कुछ देंगे । जब नाई बाल बना चुका तो सेठ जी ने एक चबती निरानकर नाईको दी । नाईने कहा कि हम चबती नहीं लेंगे, हम तो कुछ लेंगे । सेठ ने एक अशर्की, २ अशर्की, १० अशर्की दन हैं, पर नाई कहता है कि हम यह नहीं लेंगे हम तो कुछ लेंगे । मेठने कुछ भूख प्यास लगी थी । नाईस कहा कि आरामे जो गिलाम बनवा है वह ते आरामे, दूध पी ल । हम भी पी लें और तुम भी पी लो । नाईने गिलाममें जो देखा तो उसमें कुछ काला काला था । नाईने कहा कि सेठ जी इसमें तो कुछ पडा हुआ है । सेठ वाला कि कुछ है तो वह कुछ तू ही ल ले । तू कुछको अडा भी था । उठाया तो क्या निथ ना, कोयला । जो कुछकी जिदमें पडा उसको क्या मिनना, कोयला ।

इसी तरह यहांके प्राणी कुछमें ही पडे हुए है । उनको मुनाफेमें मिला क्या है, मिथ्यात्व, भ्रम, सम्कार हो जाना, और कुछ नहीं मिनना । मान लिया एक करोड है पर

इस आत्मामे आना क्या है ? उसमे नए पसेवा हजारवा हिस्सा भी नहीं आता । सब अपने स्वरूपमे है, किन्तु मुनाफा यह मिला कि मिथ्यात्व बढ़ गया, अनानता बढ़ गई, खोट सस्कार हो गए । यही एक मुनाफा हो गया । चीजें तो कुछ मिलती ही नहीं । क्योंकि जगतका प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है । किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है ।

यह आत्मामे स्वरूपकी बात चल रही है । इस शरीरमे पाँच विशेषताओंमे आत्मा का स्वरूप खोला गया है । जिसमे चौथा विशेषण चल रहा है कि मैं स्वतंत्र हूँ । मैं स्वतंत्र क्या है मतता हूँ ? जब मैं सबको स्वतंत्र निरस्तू तब स्वतंत्र हो सकता हूँ । अर्थात् मैं अपने आप स्वतंत्र श्रद्धामे रहूँ । जब हम प्रत्येक पदार्थोंकी भी स्वतंत्र स्वरूप दें कि वे स्वतंत्र हूँ तो मैं भी स्वतंत्र हूँ । मर घरके बच्चे तो मेरे हैं, वे तो मेरे आधीन हैं एसा उन्हें पराधीन माने तो छुट भी पराधीन है । अरे वे तो एन सत् हैं । जय वे पर पराधीन बन गए तो तुम भी पराधीन बन गए । यह मरे हैं, मेरे आधीन है, गोचनेसे बच्चे पराधीन नहीं बने, मर तुम पराधीन बन गए । तो अपने अनुभवसे पराधीन हो गए । जो मरा नहीं है उसे मैंने अपना मान लिया तो पराधीन बन गए । मैं तो स्वतंत्र रहूँ और जगतके पदार्थोंकी पराधीन देखू । उन्हें मैं अपने आधीन देखू तो मैं स्वतंत्र नहीं बन सकूंगा । अपने स्वरूपका अनुभव न कर सकूँ । जिन कारणके मोहयो लिए हुए हैं कि ये सारे प्राणी राम हो जाएँ । अरे तो तू भी राम नहीं बना । कहते हैं कि स्त्री सीता हो जाए और पुरुष राम न बने क्या ? पुरुष राम नहीं बने और स्त्री सीता बन जाय यह कैसे हो सकता है ? सय राम बन जावो तो स्त्रियाँ भी सीता बने । तुम सय द्रव्योंको स्वतंत्र अर्थात् उन उनके खुदमे आधीन था तो तुम भी स्वाधीन बन सकोगे ।

यह सब मर आधीन रहे, ऐसी उत्पत्ता जहाँ आई तहाँ पराधीन बन गए । यह स्त्री मेरी है, गेगी बल्पना आनेके मायने हूँ स्त्रीके आधीन बन जाना । यह पुत्र मेरे हैं, यह पदार्थ मरे हूँ के मायने हैं कि पुत्रो तथा पदार्थोंने आधीन बन जाना । मैं स्वतंत्र हूँ । जगतके सभी पदार्थ अपनी अपनी मत्तामे हैं । कोई दूसरेके आधीन नहीं । मैं पूरा स्वतंत्र हूँ । अय पाँचवाँ विशेषण रहत है कि मैं सहज आनन्दस्वरूप हूँ सहज स्वाभाविक आनन्द स्वरूप हूँ । आनन्द मुझमे लाया नहीं जाता । जैसे जानी जीवका स्वरूप है तैसे आनन्द भी जीवका स्वरूप है । जीवोका सबप्रयोजन इसी बातमे है और इसी बातमे प्रयत्न रहता है । एव तो जाननका और एक आनन्दका, यही दो प्रयोजन है हम जीवके । इन दोनों ही चीजोंको प्राणी चाहता है कि जानन भी खूब हो और आनन्द भी खूब हो । सो भाई ज्ञान और आनन्द यह आत्मामे ही हैं । आत्मामे स्वभाव है और आत्मामे स्वरूप है, ज्ञान और आनन्द बाहर आना है, किन्तु जैसे हो वसा अपनेको मान लेना वस यही ज्ञान और आनन्द ही

है। इस प्रलोकमें पढ़ते विगेषणमें जान है और आखिरीमें आनन्द है। मेरा भी तो प्रयोजन ज्ञान और आनन्दसे है। वे सब मर ठोक बननेके लिए और आनन्दके विकासके लिए हैं। ज्ञान और आनन्द ही जीवका वैभव है। यदि अन्य बभयके दशन करेगा तो तू अपने अमूल्य-वैभवको गवा देगा। केवल यह मैं जानानन्दमय आत्मा हूँ। ऐसा ही अपनेको अनुभव करो तो अपनेमें आपने आप अपने आनन्दका अनुभव कर सकते हो। देखो—जैसा नहीं हूँ वैसे भी भावना वहाँ तो वैसे उपयोगमें बन जाता हूँ, तब मैं जैसा हूँ तैसा अनुभव करके वैसे ही उपयोग बनाऊँ तो वैसे बन जानेमें कोई सदेह है? क्या मैं भँसा नहीं हूँ किन्तु अकेले बैठे बैठे समझ लिया कि मैं भँसा हूँ तो ऐसी यदि धुन बन जायगी तो वह अपने शरीरको भूल जायगा। यही सोचेंगे कि मैं भँसा हूँ। मेरा बड़ा पेट है। दो बड़ी सीमें हैं, एक पूँछ है, चार पैर हैं। ऐसा अगर एक चित्तमें वह अपनेको भँसा समझ लेवे तो भँसा ही भँसा नजर आयगा। मैं अपने उपयोगमें भँसा ही बनूँगा और अगर दिलमें ऐसा अनुभव आ जाय कि मंदिरका दरवाजा छोटा है तो रज करेगा कि मैं कैसे निकलूँगा? मैं वैसे मंदिरसे बाहर निकल पाऊँगा? हमारा शरीर इतना मोटा है, दो सांग ह, एक पूँछ है, अच्छा काला काला बड़ा मोटा सा हूँ। मैं कैसे बाहर निकल पाऊँगा? सारी बातें सोचने सोचनेमें ही अपने आप अनुभव कर डालता है जैसा नि है नहीं। फिर जैसा यह है, ज्ञानरस, आनन्दधन, आनन्द स्वरूप, ज्ञानमय, सबसे निराला, तैसा ही अपनेको माने तब तो यह स्थाई रूपसे ऐसा ही हो जाता है। वह नसेकी कल्पना बनाए बठा था तो क्या भँसा बन गया? भँसा वह नहीं बन जायगा, परन्तु यह तो जानानन्दमय है और ऐसा ही मान लेये तो स्थाई रूपसे ज्ञानमय यह आत्मा बन जायगा। तो यह मैं आत्मा सहज जानानन्दरूप हूँ। तो यह मैं अपने में अपने लिए रमकर अपने आप आनन्दमग्न होऊँ।

थोड़ेसे शब्दोंमें यदि कहा जाय कि ससार क्या है? सारी भ्रमों क्या है? तो कहा जा सकता है कि अपनी चेष्टाका फल अयमें होता है इसको मानना है, इस ही को समार कहते हैं। हम जो कुछ करते हैं उसका असर दूसरोंमें होता है, उसका फल दूसरोंमें होता है। इस प्रकारकी बुद्धि होनेका नाम ही समार है। सारी विपदाएँ हैं, ऐसी दृष्टिका ही नाम ससार है। ससार शब्दका अर्थ देखा जाय तो निकलता है कि ससरण ससार—परिभ्रमण करनेका नाम ससार है। बाहरी दृष्टिसे ३४३ धन राजू प्रमाण लोकमें परिभ्रमण करना ससार है और अध्यात्मदृष्टिसे अपने आपके विभावामें आकृति होकर फिर फिर कर विकल्पो में बने रहनेका नाम ससार है, परिभ्रमण है।

यह सम्करण क्या लग गया? इसका मूल कारण क्या है तो अपनी चेष्टाका फल दूसरोंमें माननेकी दृष्टि ही इसका मूल कारण है। हम एक स्वतंत्र पदार्थ हैं। जगतके ये

अभी स्वयं स्वतंत्र पदार्थ हैं। किसीका किसीसे रच भी सम्बन्ध नहीं है। अपने ही तो उत्पादक यय ध्रौव्यमे रह करके अपने ही स्वभावसे ये परिणामते रहते हैं। अपने स्वरूपकी सीमाया अल्लघन कोई नहीं करता है। फिर कोई बजह ही नहीं कि किसीके करनेसे किसीको कुछ हाया करता हो। परन्तु यह मोही प्राणी कुछ भी करता है तो यह समझता है कि मैं अमुक यह परिणामन कर दूंगा। बस इसी दृष्टिके कारण ममारके सारे क्लेश लग गए। इसीका फल है कर्तृत्व पतृत्व बुद्धि अर्थात् परको कुछ कर लेनेका ख्यान। मैं दूसरोको कुछ करता हूँ, दूसरे मुझे कुछ कर देने हैं—इस प्रकारका जो विकल्प चलता है खोटा अभिप्राय रहता है इस ही का नाम मसार है और इन विकल्पोसे छुड़ी लेनेका नाम ही माय है। घरमे, समाजमे, ममूहमे जहाँ भी जो विवाद खड़े होते हैं उन विवादाका मूल कारण क्या हो अहंकार निकलेगा। अहंकार बिना विश्वास नहीं होता है। घरमे, स्त्रीमे, देवर जेठानीमे, सास वहूमे अगर विवाद खडा होता है (विवाद तो दो के बीचमे होता है ना एकसे विवाद क्या) जिमसे विवाद खडा हो। समझो इसमे भी अहंकार ही है। क्यों दुखी होते? अमुक काम नहीं हुआ तो न हुआ सही। वह भी पदार्थ है। यह ही परिणाम गया, इसमे तुम्हारा क्या बिगड गया ?

मैंने हुकम दिया पर उसने नहीं माना अथवा मैं ऐसा करता था, ऐसा क्यों नहीं किया ? यह हो गया अहंकार। यह इसके इस तरहके बर्तावसे मुझे मुक होता है यह भी हुआ अहंकार। मैंने इनका इतना बडा पालन पोषण किया और इनकी सेवा करता हूँ और फिर भी ये मेरे अनुकूल नहीं चलते। यह भी हुआ अहंकार। जितन विवाद होत है वे सब अहंकारसे होते ह। धधे करनेके मामले में निरतर जसी चिंताएँ रहा करती है, इतना क्यों नहीं हुआ, इतना कैसे बचा बचा लिया जाय, यह कैसे कमा लिया जाय अथवा इज्जत रखना है, सारे जितने राग हैं उनका भी मूल है अहंकार। क्या उनका बिगडा कि ५ लाख थे और २ लाख निकल गए तीन लाख रह गए। अरे इसमे क्यों तुम्हारा तत्त्व बिगड गया ? पर इन मायामयी मूर्तियोंके बीच इस मायामय मूर्तिको जो चाह रहा है, इस मायामय शरीरको जिमने सामने रक्खा है और इस मायाकी दुनियामे अपनेको कुछ बताना चाहता है, वह अहंकार ही उन व्याधियोंका म्बय कारण है। जगतमे जितनी भी विपदायें हैं उन सब विपदायो की व्याधियोंका कारण अहंकार है। कर्तृत्व बुद्धिके होनका कारण भी अहंकार है। हम कुछ करते हैं फल दूसरेमे होता है। कृतत्वके माननेका नाम ही ससार है। परमायसे बाट तो यह है कि हम जो करते हैं उमका फल हम ही भोगते ह। हम करते क्या हैं ? क्या दुकान चलाना है, रोटी बनाना है, धरकी तीपा पीती करनी ह। हम विकल्प कर लेनेका ही काम करते हैं। अभी विकल्पके अतिरिक्त अय काम नहीं करते है हम तो विकल्प करते है फिर



इच्छां निमित्तसे जो कुछ होता है वह अपने आप होता है ।

तुम आत्मा हो । आत्मा एक ज्ञानमय पदार्थ है । वह इस शरीरके अंदर रहते हुए भी इस शरीरसे जुदा है । यह ज्ञानमय जीव पदार्थ केवल अपने परिणाम कर पाता है । परिणाम किया कि इस शरीरमें रहने वाला यह आत्मा जो शरीरसे न्यारा है, सत्र प्रदेशोंमें हिल जाता है, कप जाता है । जैसे अभी भयका परिणाम हो तो यह आत्मा हिल जाता है । कम भयका परिणाम हुआ वहा भी हिल जाना है । खुशीका परिणाम हुआ, चिंतनका परिणाम हुआ, इच्छा की वहाँ भी हिल जाता है । यहा जीव परिणाम करता है तो उम परिणामके फलमें यह जीव कप जाता है, हिल जाना है । प्रदेश परिवर्तन होने लगता है । इसे कहते हैं योग । पहली बातकी कहत है उपयोग । यह जीव केवल उपयोग और योग करता है और दूसरा काम ही नहीं करता है । मैं तो केवल उपयोग और योग करता हूँ । इसके बाद जो कुछ होता है वह अपने आप होता है । देखो यह ज्ञानकी बान है । यही अमृत है । हमको पी लोगे तो अमर बन जावोगे, अमर होगे । वह अमर तो होता ही है । ममभ्रमे आ गया कि अमर है । मैं अपने स्वरूपसे हूँ, अपनेमें रहता हूँ । सदा अकेला ही रहने वाला हूँ । यहाँ तो यह मैं ही मैं देखता हूँ । मैं ही मैं यहा हूँ । जरा आँवें खोलकर देखो, अरे यह तो शरीरमें है । व्यवहार की बात है, शरीरमें यह नहीं है । और व्यवहारसे ही तो रहने दो । यह म इस शरीरकी छोड़कर दूसरी जगहके लिए जाऊँगा तो म तो वही वा वही हुआ । यहाँसे छोड़कर दूसरी जगह पहुँच गया । म तो पूराका पूरा हूँ । उतनाका उतना पूराका पूरा हूँ । म अमर ही तो रहा । मरा वहाँ ? मगर यह दृष्टि यह विचलन पर डालता है कि देखो हमारा कमाया हुआ यह धन छूटा जा रहा है अथवा इज्जत बनी हुई थी अब वह छूटी जा रही है । यह जब ख्याल करता है तो दुःख हो जाते हैं । नहीं तो दुःखी होनेका कुछ काम ही नहीं है । मैं यहा रह अथवा न रहूँ इसमें उममें क्या फल आयगा ? मगर बाहर जब मोहको दृष्टि बनी होती है तब तो क्लेश उत्पन्न होते हैं । तो बाहर दृष्टि ही दृष्टि बनती है, पदार्थोंमें फेरफार कुछ नहीं होना है व्यथ उचम मचाने हैं और दुःखी होने है । ये क्लम तथा दुःख वहाँसे आ गए ? हमारे स हम खुद कसूर करते हैं व दुःखी होते हैं, किसीमें ठिनकनेका क्या प्रयोजन ? क्लम किया तो दुःखी होंगे ? हा होंगे । अब दूसरीसे क्या आशा रखते हो ? उनमें मेरे हितकी बात होगी । यदि एमें विचार कर लेते हो तो दुःखी हो जात हो । अनहोनीको होनी बनाना चाहत हैं इसका तो फल दुःख ही है ।

एक लडका था । वह इस बातमें मचलन लगा कि मुझे तो हाथी चाहिए । उसका पिता हाथी ले आया । फिर लडका बोला—इसे खरीद दो । बापन वह धुनकर हाथीको पालें में खडा कर दिया और वह दिवा कि खरीद दिया । अब लडकेने कहा कि हाथी मेरो जेबमें रख दोजिए । अब बतावो भया ! यह वाम बोला कर दगा ? उसको जेबमें हाथी कौन

रख देगा ? जैसे लडका मचलता है हाथोको जेबमे रखनेके लिए उसी प्रकार जीव परपदायो को लेनेके लिए मचलता है । अरे भैया, अनहोनी बात क्यों चाहते हो ? जो होना है होगा उसे भगवान सब कुछ जानता है, जो कुछ वह जानता है सो होगा । वह जानते है इस लिये होगा एसी बात तो नही है । किन्तु जैसा हुमा था, जो हो रहा है, जो भविष्यमे होगा सबको भगवान जानता है, यह बात है और कोई बात नही । बाह्य दृष्टिमे आपदा ही आपदा है आत्मामे धोखा है, नही । यह परिचयरी जगहमे मायारूप है, परमाथस तो शुद्ध चतयम्बुरूप है । यहा कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब जो भगवाने जाना है वट होगा, फिर पुरपाथ करना व्यथ है । भैया जो आप बर्गे वही प्रमुने जाना है । फिर इसकी ओरसे क्यों एमी उपेक्षा कर ली जाय ? हां परवस्तुवोसे क्या सिद्धि है, सो परके वारमे सोचो यह जमा होता है हाने दो । अय पदाथ तुम्हारे सोचनमे बमे हो नही जावेंगे । तब जैसा भी हो गया होन दो, चमके भी यह जानामे बिगाड कुछ होता नही । और मोह है इसलिए दुख होना है । जग कोई नाच रहा हो और नाचनेमे ऐडिया कुछ गलत उठ गयी हो, ठीक ठीक ठेकेके अनुसार एडो न चलें । नाचने की बलाको जाने वाले जो लोग बठे हुए हैं वे दुखी हो जावेंगे यह गलती देखकर । वे दुखी हो जाते है, इसका कारण है कि उनको भी शीव है, उनको भी अकार है । देखो जाननेकी बलापर ही सब कुछ निर्भर है । जगतके सब पदाथोसे निराला अपने आपको जो शुद्ध नायकस्वरूप है वह जब तब अनुभवमे नही आता तब तब पतृत्व बुद्धि नही मिटती । अज्ञानी मदा अपने घमडमे रहता है । कोई बडा धनी था और अय जो बिल्कुल गरीब हो गया हो तो वह अनेक बरपनाएँ करेगा कि मेरे दरराजेपर मण्डा जूने चतरने थे, मेरा सम्मान होना था, एसा कहकर अपना बडानन जताता है । चाह अय एसा निकते सि पापका उदय आ गया सो देखो सब खतम हो गया । यद्यपि उसके सुनानमे इज्जत नही है वेदज्जती है तो भी उनकी वतृत्व बुद्धिमा नशा है सो कहता है । वतमानकी बातका भी मोही अहकार करता व भविष्यका भी । वह यो बन जायगा, वह ऐमा हो जायगा, यो इज्जत वाली बात म घमड किया । इस वतृत्व बुद्धिमे अपने हित का माग नही सूझता । तो इन मसार भावोकी छोडकर हमे मोक्षमागम आना चाहिए । मैं जो करता हू वह तो उपयोग और योगकी ही करता हू । इसके अतिरिक्त मेरा कही करनेका कुछ काम नही है । इतना कर लेनेके बाद शरीरमे जो वायु भरी है, चक्कर करने लगती है । तब आत्माके भावाके अनुसार चक्कर काटना शुरू हो जाता । यो उपयोगके अनुसार योग व योग के अनुसार वायु चलती है । जब आत्माके प्रदेशमे बावलाहट होने लगी तो यहा एक क्षेत्रम रहने वाले इस शरीरके स्कंधोम भी वायुकी बाखलाहट होने लगी । जहाँ इस शरीरमे वायु चली तो शरीरके अग भी चन उठे । जैसा उपयोग किया था उसही के अनुसार या

वायु चली, उसके अङ्ग चने और उन चलते हुए अंगोंके बीचमे कोई रोटी जो आए उसके भी परिणमन हुए। उसको देखकर लोग कहने है कि इसी रोटी बनायी, दुकान चलाई, बम्बुवें खरोदी, इत्यादि नाना बातें लोग कहने लगते हैं। परमाथसे अन्य कुछ नहीं किया। जीवने तो वेगल उपयोग और योग ही किया है। उपयोग योग होनेके अतिरिक्त इस जीवके बरतूत कुछ नहीं है। लोकमे कहावत ही बही गयी है कि घी, शक्कर मीठा या बहूके हाथ घी शक्कर होनेके कारण पक्वान मीठा है। हाथ निमित्त है। इनमे मीठा क्या है बहूके हाथ मीठे है क्या, नहीं। शक्कर मीठी थी। तो पक्वान बहूने बताया या शक्करने बनाया। रोटी को आटेने बनाया या बहूने बनाया। आटेने रोटीको बनाया। आटेमे रोटी बनाया। देखो हाथमे हाथ चला और रोटीम रोटी बनी। व्यवस्था ही अहङ्कार होता है कि रोटी मैंने बनाया है। रोटीका उपादान तो वह आटा ही है, हाथ तो निमित्तमात्र है।

निमित्त वह कहलाते हैं जो अलग रहा करते है। हाथ रोटीसे अब भी अलग है। लोकमे जो भी काम होता है उन सब नामोसे हाथ अलग है। निमित्त अलगको ही कहते हैं। जो भिन्न चीजें हैं सारी अलग है। तभी तो निमित्त पाकर भी यदि उपादान योग्य नहीं है तो वाय नहीं होता है। गाज भाई आटा नहीं बना। अरे नहीं बना तो नहीं सही। कैसे बनेगा ? धूल धर दो। क्या रोटी बन जायगी। नहीं, क्यों ? अरे उपादान तो है ही नहीं। काय जितने होते है वे उस ही वस्तुमे होते है जहाँ कि वह कार्य है। मैं जो कुछ परिणाम करता हू, कार्य करता हू मेरा असर मुझमे ही है। मेरेसे बाहर मेरा असर नहीं है। मोह करके दुखी हो गया, बरबाद हो गया। दुखी हुआ तो दुनियाके अर्थ किसी वजहसे कुछ नहीं हुआ। मोह हुआ, उस ही से दुख हुआ। मोहकी गदगी जो दुनियामे है हमारी ही है। बाहर कोई गदगी नहीं है। इस गदगीका कारण यह अपना मोह ही है, मोहका परिणाम ही है। इस मोहके परिणामने हम निगोद जैसी मोटी योनियोमे पहुचने वाला बना दिया। बतलाओ इसमे कौनसी स्थिति ऐसी है जो अच्छी है और मतोपके लायक है। जैसे कहावत है कि घर घरमे मिट्टीके चूट्ट, घर घरमे क्लेश हैं। घट घटमे विपदाएँ हैं। बही चले जावो। कच्छरीमे जो जज बठता है कुर्सीपर और हुकूमत बरता है, अनेक लोग आकर सलाम कर रहे है और बाजू बने हुए बैठे हैं। देखने वाले लोग सोचते हैं कि जज साह्य मुग्नी हैं। अरे वह सुखी नहीं है। वह अहङ्कारसे भर हुए बैठे हुए हैं, निरन्तर दुखी होते है, चिन्ताओसे युक्त हुआ करते हैं तो बतलाओ कि वह मजेमे कस हागे ? ऊपरी शानसे सुखी हैं, पर भीतरी मनसे वह दुखी हैं। जैसे ऊपरसे चाँदीका घडा दीवता है और अदर विष्ठा भरा रहता है। तो वह क्या है ? इसी तरह ससारके प्राणी ऊपरसे चिक्के चुपडे लगते हैं व भीतर अज्ञान व अशांति भरी है। वही है न वैसे ही लखनऊ जैमी नजाकत है।

यही बात है कि देखने मात्रमे वे सुखी है, पर भीतरसे वे विकल्प भरे हुए ह मोह भर हुए है और दुःखी हो रह हैं। भीतरमे राग, द्वेष मोह इत्यादि भरे हुए हैं। विपसे भर हुए घडेकी तरह हीन परिस्थिति है। बौनमी ऐसी स्थिति है जिसमे अहकार किया जाय, सतोप किया जाय, सतोप किया जाय ? जैसे रास्ता भूलकर बोरि पुष्प बुद्ध आग बढार चला गया है तो भूय मालूम होनेपर सामनेके बडे बगीचा, वा-उपबनोमे अचना मुख मोट लता है, उह मुक्कर भी नही देखता ह। एमी प्रकार खोट भागमे अमकी वाताम पडकर बढन दूर तक चला फिरा भटका हुआ प्राणो जब यह ममक जाना है कि यह मय विषय कपाय है, मूलना मार्ग है। निज सहजस्वभावी दृष्टि छोडकर परपदायीको अचना मानना यह मारी भूल है। हन भागको भूल गए ह। यह तो आधियो-न्याधियोना माग है। जब एमा सही जान होता है तो यह जीव अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे अचना मुग मोड लेता है। अपने घा रंभववा त्रिहाज नही करता है, अपने सहकोपर निगाह नही डालता है। यदि अपनेको व्याधियामे रहिन भागम मना है तो मुमागरी और देखो। अपनी चेष्टाओंका फन दूसरोंमे होना हो, एमा दृष्टि पाप फैलाए हैं, यही खोटा माग है, यही ममार है। यह विपरीतना माग है। इसमे चानसे इसमे ही भटकते रहोगे।

जब ममक आनी है तब ज्ञान इससे मुड जाता है। मेरी शक्तियाका परिणाम मुक्के ही होना है। मेरा मित्र मैं ही हूँ, मेरी विपदाएं मैं ही हूँ। यह भानानन्दस्वरूप भगवान आमा है। हमको ही अपन आपके तथ्यमे लो। इस शरीरकी समस्त आकुलनाएँ समाप्त हो जायेंगी। अपनी चेष्टाओंका फन दूसरोंमें मानना साईं शुबुद्धि है, मसार है। अगर बुद्ध अमयममे भी पडा रहना पटना हो, फिर भी प्रतीति तो पूण सही रखनी चाहिए। अपनेना ऐसा ही प्रतीन करना चाहिए कि मैं सबसे निराता, कवन शापस्वरूप ही, आनन्दमय भावात्मक एक विलक्षण चतय पदाथ हूँ जिसका यहाँ अर्थ नहीं है, हममे जो कुछ अरुचन होनी है, चेष्टा होती है वह इस स्वरूपकी होती है। और जो अमर ननता है वह हमके ही वननेकी चेष्टा हा रही है। जो होना है हमके ही प्रयोजनके लिए जाना है, इसम ही हाता रहना है, इसके लिए ही होना है। जैय सप बुडलो गग लेता है, अपने लिए ही अपनेको घेर लेता है। इसी तरह इस जीव ने जो कुछ उपयोग और योग किया वह सब अपने लिए ही अपनेमे किया। इसना इससे बाहर कुछ वास्ता नहीं है। अदर दृष्टि होना नाम मोक्षना माग है, और बाहरमे दृष्टि फैलानका नाम मसार है, ममारना माग ह। दक्षिण भावनासे ही यह ससार मिल जाता ह और भावनामे ही मोक्षना माग मिल जाता है। अत्र बुद्धिगानी यह होनी चाहिए कि हम किस प्रात कर लें ? केप्रा भावनासे ही मिल रहे है सब कुछ। रातको एक भाईय यह प्रश्न किया था कि हम उसे बीजोका सोदा करते है। सोदा तो करते ह और बीज बरीरत

नहीं। केवल भावना ही कर लेते हैं। इसमें नफा नुकसान कुछ होता नहीं।

इसी तरह केवल भावना कर लें, पर हम किसीको, मारें नहीं, किसीका सताएँ नहीं। बाहरमें कुछ करना नहीं है। केवल भावना कर लेने है। तो उसमें नुकसान क्यों होता? बड़े गजबकी बात यह हो गयी। नुकसान तो सौदा लेनेपर होता कि भाव करनेपर। लेकिन यह भाव कमका बंध करा देता। रोजगारमें भावना करनेसे नफा नुकसान नहीं होता। नफा नुकमान तो सौदा खरीद ही करनेसे होता है। सो भैया! प्रथम तो यह बात है कि तू तो केवल भावनाओंको बना सकता है, काम कुछ कर सकता नहीं है। भीतरमें विषय कषायके परिणाम भरे हुए हैं उनसे कमबन्ध होता हिंसा, भूठ आदिके कारण कम नहीं बँधता। यह विचित्र रोजगार है। जीव भाव ही यह पाता है और भावसे ही नफा-नुकमान होता है। भाव के कारण कमबन्धन है। हा यह बान जरूर है कि भाव बुरे है तो काय भी बुरा किया जाता है। इसीसे कहो कि हिंसा, भूठ इत्यादि भावनाओंके कारण कमबन्धन है। यह रोजगार बिल्क्षण है। यदि अपनी खोटी भावनाओंसे हटकर सही रूपमें काय करने लगे तो नफा हो जाय, भाव छोटे नहीं तो बाह्य परिणतिसे पापबन्ध नहीं।

ऐसे अनक उदाहरण मालूम होंगे। मुदशन सेठ थे। रानीने, सेठको बुला लिया। महलमें सब चेष्टायें कर ली, परतु मुदशन विरक्त ही थे। राजाने गुस्सेमें आकर दूलीका आदेश दिया। परतु मुदशन सेठका परिणाम बुरा रच भी न था। उनका विचार था व रानीसे कहा था कि मा, मैं तो नपुंसक हूँ। उसका परिणाम निमल था, उसके कारण उमके कमबन्धन नहीं हुए। तथा परस्तुवोके कारण मोक्षमागमें बाधा नहीं आई। और ये दुनिया विचित्र गुडे लाग परिणाम बिगान्धे है, पर कहीं बश थोड़े ही चलता है, फिर भी कमबन्धन हो रहे हैं। जनसिद्धांत तो यह कहा है कि कायसे कर्मबन्ध नहीं, कमबन्धमें भावनाका कारण है। हाँ यह बात और है कि भावनाओंका बिना काय हो, नहीं सजता। यदि माधु ईर्या-समित्तसे जाने ह और अचानक मागमें कोई कुछ प्राणी मर जाता है, प्राणघात होते हुए भी कमबन्धन नहीं हुआ। उह जीवहिंसाका पाप नहीं हुआ। कोई बिना देखे चल रहा है और उसके शरीरमें किसी प्राणीका घात भी न हो तो भी कम बँधेंग। कमबन्धनका रोजगार भाव से चलता है, चीजक लेन देनसे नहीं। सबमें बुरा भाव बुरा पाप तो मिथ्यात्व है। अपनी चेष्टाका पाप दूसरेमें देखा यह भाव भी मिथ्यात्व है। इस मिथ्या आशयको त्यागकर मैं निज सहज चैतन्यस्वभावमात्र रखू और अपनेमें अपने गाप सहज विप्राम पाऊँ।

मैं अपने आप किन तत्वोंसे बना हुआ हूँ, किन तत्वों रूप हूँ? इसपर विचार करनेसे जब आत्मामें देखते हैं तो यही मालूम होता है कि यह एक ज्ञानमय वस्तु है, ज्ञानसे ही रचा हुआ है, ज्ञान ही इसका सबस्व है। ज्ञानके मायने जानना। जानना आत्माके आधेनताही

बात है। परपदायि अधीनताकी बात नहीं। जाननेमें परपदायि आने हैं पर जानना आत्मा की चीज है, आत्मामें उठता है, जानना आत्माके स्वभावकी वला है। इस कारण जाननेकी सीमा नहीं होती है कि इसको ही जान, आगे न जान, इससे अधिक न जान, एम। जाननेमें कोई सीमा नहीं है। स्वभावमें ऐसा ही जाननेका स्वरूप है। जिसे कहने हैं आत्त ज्ञान। यदि ज्ञान कम जान इतना जान लेनेका कोई कारण होता है। इतनी बात बतलाए कि १० कोशका जान देनेका काम है और ग्यारहवें कोमके जाननेका आत्माका काम नहीं है। क्यों? अरे इसमें तो जाननेका ही मात्र स्वभाव है। सीमा बनावेगा तो स्वभाव मिट जायगा। जा ह सो जाननेका स्वभाव है, जाननेका विषय सत् है, वह सब जाननेका स्वभाव है। आगे पूछने की गुंजाइश नहीं। क्यों ऐसा नहीं है। इसने हजार कोश तबका जाना, पर हजार कोशमें आगे न जाना। पूछा जा सता है कि वह हजार कोश तब सबको जानता है इसके आगे वह किसीको नहीं जानता। उमका क्या कारण है? यह कितना जानता है? अर यह सबका जानता है, विश्वके समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंको जानता है। क्यों जानता है? जाननेका क्या कारण है? अरे पूछनेकी बात नहीं। आहोनीके हीनेका कारण पूछा जाता है। कुछ उन्टा बन गया है उसके ही कारण पूछा जाता है। जो स्वभावमें हाने वाला है उमका कारण क्या पूजा जाय?

मेरा स्वभाव जाननेका है। जानने ही आत्मा है। जेगे वएण किया जाता है ना, कि आत्मामें अन्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व हैं, अगुरुत्व प्रणेशवत्व प्रमेयत्व तथा अमाधारण गुणमि श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है, ज्ञान है। यदि इन मय गुणाम से केव न एक गुण जानना न हो, जानने न माना, जानको बाहर निकाल दो और वह कि सब खुशोसे रहा, अस्तित्वस रही, तो न रह गयगा एक पापभरकी न रहने दा, निकाल दो, नहीं है, ऐसा मान लो अगनी कल्पनाएँ करलो तो अस्तित्व न गय गयोग, श्रद्धा और चारित्र न ख सकोग। देखो केवलताके न रहनेमें कितनी निपदाएँ आ गयी? जान ही जिकका एक स्वभाव है यह मैं आत्मा हूँ। सारे गुणोंका अनर्थाय जानमें तो किया जा सकता है, पर जानका अन्नभाव किसी अय गुणमें नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रमें तो सब कुछ यह ज्ञान ही है, श्रद्धा है, ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान है, जीवादिमें श्रद्धानके स्वभावसे ज्ञानका होना याने श्रद्धानके स्वभावसे जानके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है और जीवादि तत्वके जाननेके स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्ज्ञान है। और रगादिना परिहार करनेके स्वभावमें ज्ञानका होना सो सम्यक्चारित्र है। मैं ज्ञानमय वस्तु हूँ, ज्ञान ही जिसका मवस्व है ऐसा यह ज्ञानमय हूँ। मैं तो अन्नत जानादि गुणोंका पिंड है, फिर भी तृष्णके वशीभूत हाकर अन्नमें ८ वे बंमें बखेडे पदा कर डाने? हीन, दरिद्र, दुखी रूपनेकी तर डाला।

जिम्की वगहसे जगद-भगह गटयना रहा । सनप्र कल्पनाशोका ही तो नाच है । दुख है, कठिनाई है, इस तरहकी कल्पना जो नर डाना तो दुख है । दुख मिटाना है तो यह कल्पनाएँ बदल दीजिए । वस्तुस्वरूपके अनुकूल कल्पनाएँ कर ली जाएँ तो दुख मिट जायगा । वस्तुस्वरूपके विपरीत ही कल्पना की तो दुख ही गए । असारको सार समझकर जहाँ कल्पनाएँ की तहा दुख हो गया और जहाँ इन कल्पनाशोको बदल दिया जाय तो दुख मिट जायगा । यह दुख और सुख कैसे कल्पनाकी हवामे चल रहे ह ? कल्पना कर ली दुख हो गया । सही बात सोच लिया, लो आनन्द हो गया । यह जीव अनन्तज्ञान, अनन्तदशन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुखोका पिंड है । लेकिन कोई ऐसा न माने तो वही दुखी रहगा । जसे ज्ञानकी सीमा नहीं है इसी तरह अनन्त ज्ञानसे अनन्त जानने वाले आत्माके दशन भी अनन्त हैं । आनन्द अनन्त है । आनन्दका अत तो उसका होता है जो आनन्द भूठा हो, पराधीन हो, कल्पनामात्रसे हुआ हो । जिसकी मूल जड कुछ नहीं है । केवल कल्पना ही फल है । ऐसे सुखका तो अन्त आया करता है पर जो आनन्द आत्मासे उत्पन्न हो, आत्माके आधीन हो ऐसे सुखका अन्त नहीं आया करता है और उस आनन्दकी सीमा भी नहीं रहती है । जसे गुडसे शक्करमे रस ज्यादा होता ह । उस मिश्रीमे रस ज्यादा है ता उस रसकी सीमा बन जाती है । इस तरह आत्मीय आनन्दमे तो भेद नहीं सो आत्मीय आनन्दरसकी सीमा नहीं हो सकती है ।

आत्मीय आनन्द कितना आया ? दख ला कितना आत्मीय आनन्द है ? ऋणभेद व और महावीर स्वामीने आनन्दमे अन्तर है । क्या राम जी और हनुमानजीके आनन्दकी सीमा है क्या, नहीं है और जब यह ज्ञानी जीव भी आत्मीय आनन्दका अनुभव करता है तो उसके उस आनन्दकी भी सीमा नहीं ह । सीमा कहाँ बताई जाय ? जिसकी कमी हो वहाँ सीमा है । इनो प्रकार समस्त विवासको बनाए रहनेकी ताकत हो अनन्तवीर्य है । मैं अनन्तानन्त, ज्ञानानन्तका पिंड हू । ऐसा होते हुए भी यह भगवान आत्मा केवल कल्पनाशोक भुनावेमे पडकर, अमार बाबाके बचनमे आनन्द दीनवत मसारमे भ्रमण करता है । जमे लोग कहते हैं कि हम अपने घरके बादशाह हैं और दूसरे लोग चाहे जा कुछ हो । घर अपने घरका भी सही पता लग जाय कि मेरा निजी स्वरूप ही घर है जो जानस्वरूप ज्ञानमात्र है । इस मेरेका किमीसे कुछ सम्भव नहीं है । इसे कोई पहचानता नहीं ह, इससे कोई बोल चान होती हो नहीं, है । मैंने कभी किमीको कुछ किया हो नहीं । कोई भुझने अन्त तक बाला चाला ही नहीं । मैं सबसे निराला, पानस्वरूप ज्ञानमात्र हू । इस जगतके प्राणियोंको यदि निजी घरका पता लग जाय तो यह बात सत्य है कि वह अपने घरका सम्भव हो जाये । सारा जहान चाह जैगा उनको माने उनमे कुछ अहित नहीं हो सकता है । सारा जहान अनीति कर यदि उनरे विप-

रीत चले तो भी उनका कुछ ग्रहित नहीं हो सकता है। अपना हित और ग्रहित कल्पनाओंसे सखल्पसे होता है। लोग कहते हैं कि ईश्वरने सकल्प किया कि सारा ससार बन गया। ऐसी ही उसकी विचित्र लीला है। मगर कुछ नहीं करना पड़ता, हाथ पैर नहीं चलाने पड़ते। वह तो सवव्यापक, सखिदान-दमय एक अद्भुत शक्ति है। उस ईश्वरने सकल्प किया कि ससार बन गया। जैसे कि लोग कहते हैं। अब इस ईश्वरके ममको विचारकर अपने आपका बोध कर। तू अपनेको ऐसा निरख कि मैं ज्ञानमय आत्मा हू। जिस आत्मामे हाथ पर नहीं हैं, केवलज्ञानका पिंड है ऐसा मैं आत्मा हू। ज्ञानमे क्या जानना है? उम जानका जानना। अरे जो है सो जान लो, वस्तुओंको जान लो। ज्ञान इस आत्माका प्रधान धम है। इम दृष्टिसे देखो तो इस आत्मामे ज्ञान लोकात्मक व्यापक है। यह आत्मा सकल्प करके ही अपने आपकी सृष्टि-रचना कर लिया करता है। और ऐसे ही सभी आत्मा हैं। तो उन आत्माओंके स्वरूपमे दृष्टि देकर विचार करो। यह ज्ञानमय स्वरूप अपने सकल्प मात्रसे सारे ससारको रचता रहता है। सकल्प ही तो करता है कमके बन्धन होत हैं। कंमे इसने सकल्प किया कि बंधन हो गए। पुण्यका बंधन होता है। कैसे सकल्प तूने किए कि पुण्य नहीं हो पाया। पुण्यका बंधन होता है कैसे? सम्बर निजरा होगी है कैसे? अपने विविक्तप यथाथस्वरूपके सकल्पमे लो। सकल्प मात्रसे अपनी सृष्टिकी रचना करते हैं। हम तो अनत ज्ञानके पिंड है, मगर मोहसे, तृष्णासे रहते हैं, इसलिए इस असार ससारमे घूम रह है। यो दश लक्षण प्रति वप आते हैं। ये हमे ख्याल कराते हैं।

हे आत्मन् ! तेरा क्षमा मादक आजव शौच सत्य समय तप त्याग आकिचय व ब्रह्मचय जैसे पवित्र विकास रूप रहनेका स्वभाव है। ऐसे ही स्वभावमे रहे तो तेर सारे सकट समाप्त हो जावेंगे। इस स्वभावको छोड़कर अय वातोमे लगे तो समारम भटवना ही बना रहेगा। आज इस वर्षके दशलक्षणका प्रथम दिन है, क्षमाका दिन है। क्षमा करा, माफ करो। अरे अपने प्रभुकी क्षमा करो। जानने वालेकी ही माफ कर। अपने आपको मैं कितना सजाया है? कितना गुस्सा किया अपने आपपर? यह अनतानुबधी कपाय अपने की जा रही है अपने आपपर। अतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ उह कहते हैं जो सम्यक्त्व नहीं होने देते। मयो भंया, एक ऐसा मनुष्य है जिमके घरमे स्त्री व पुत्र दो प्राणी हैं। कमाते हैं, पैसा आता है, विरायका आता है, कमाना भी नहीं पड़ता है। किसीसे गुस्सा होनका कोई काम ही नहीं है। वह तो पडा रहता है। तो उसमे सदैव क्षमा बनी रहती होगी। अरे उसमे क्षमा नहीं बनी रहती है। अपने प्रभुकी प्रभुताको भूल रहा है और अपनेपर निदयी होकर, वेदद होकर अपनी प्रभु आत्मासे विमुख हो रहा है। अपने प्रभुकी प्रभुताका विगाड कर रह है। यह कितना बडा भारी क्रोध है?



इ आत्मन् । तू अब अपने आपको मत मता । तू तो ज्ञानमय ईश्वर-सम परमपवित्र है, तू समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है । बिबादोंमें तू अत्यन्त परे है, तेरेमें झगड़ोंका नाम नहीं है । ऐसे अपने महान् ऐश्वर्यको तो देखो । उसकी रक्षा तो करो । अपने आपपर दया करो, अपने आपको माफ करो, अपने आपमें क्षमा आ गयी तो उत्तम क्षमा बनैगी । मैं दूसरे जीवोंके वसूरोको वित्कुल माफ कर देता हूँ । ऐसी दृष्टि अगर अपनेमें हो, ऐसा विश्वास अगर अपनेमें हो तो वह तो मिथ्यात्व है । जैसे लोग कहते हैं कि मैंने क्षमा कर दिया । अरे वह क्षमा नहीं है । उत्तम क्षमा हो तो अपनेकी क्षमाकी मूर्ति रूप बना देती है । अपने आपकी दयामें सबकी दया आ जायगी । जो अपने आपको सहजस्वरूपके दशनमें लगानेके लिए लालायित है उसके लिए दूसराके अपराधोंके करनेमें क्या लगेगा या दूसरेके अपराधोंको दिलमें रखेगा क्या ? दूसरीकी क्षमा सहज बन जायगी । विषय कर्षणोंके परिणाममें क्या अधिक लगे हुए हो, धन कमाते हो । तो अरे धन किसके लिए कमाते हो अथवा न्यायकी सीमामें बढकर किसलिए इतना श्रम करते हो ? अरे जिसके लिए श्रम कर रहे हो वह तुम्हारा कोई नहीं है, कुछ नहीं है । और है तो तुम्हारी अक्ल ठीक करनेके लिए है । अर्थान् विपदाओंमें गिरानेके लिए वह एक निमित्त कारण है । वह तुम्हारे कोई नहीं है । अपनेको सभालो । जमी दृष्टि अपने आपको क्षमा कर देनेकी है वैसे दृष्टि परकी क्षमा कर देनेकी बनाओ । अभी १०० २०० घण पहले १० दोलतराम जी, भैया भगवती-दास जी आदि थे । जिनमें यह निष्ण रहता था कि एक रुपया कमाया वही बहुत है । आज एक २० से १० रुपया कमा लेनेका ही भाव रखे मो भी गनीमत है । एक रुपयामें एक आना मुनाफा या एक पगड़ीमें एक आना मुनाफा । यदि १६ रु० का माल बेचा तो १६ आनेका मुनाफा हो गया । बस इतना होते ही तुरत दूबान बढ कर देते थे और मन्दिर जी में आवर धमध्यान करते थे, स्वाध्याय व चर्चामें समय व्यतीत करत थे । वे लोग थे ज्ञानी पुरुष, उतका ध्येय दूसरा था ।

आत्माके दशन पर लें और उसी आत्मीय आनन्दके रसका पान कर लें तो यही आत्मानुभव पार पर न्ने गाला है । और सब असार काम है । ऐसी धुन लगनेके कारण दूबानसे होते हुए मुनाफोंको छोडकर चने आए और मन्दिरमें बैठकर विचारोंमें लग गए । मन्दिरमें धमकी चर्चा होनी है उमको मुना । धमकी चर्चा सुननेसे स्वा पाय तो हुआ । इतना तो सतोप कर रह ह कि गगकी आगमें जन नहीं रहे हैं । बीतराम मन्दिरमें बठे हुए ह । प्रभुकी वाणी तो सुन रहे हैं । तेमें सुन्दर चरित्रसे रह तो जगतके भार पाप दूर हो जावंगे । मोहसे तो दूर हो रहे हैं । क्योंकि यह बोध तो स्पष्ट है कि जो समागम प्राप्त है वह इस ससारमें कुछ नहीं रहेगा । जैसी दृष्टि वृत्ति बने, जैसा जिमने परिणाम किया उसने

अनुमार ही जो कुछ भोगना होगा, भोगेगा। क्षमा कर अपने आपको क्षमा कर। परवस्तुओं के बारेमें, अथवा जीवोंके बारेमें राग, द्वेष, मोह, हठ इत्यादि न बनावें। राग होना है उसमें भी पछनावा होता है। द्वेष होते है तो अपने आपको दुखी कर लेते हैं। सो भाई अपने आप पर दया करो, अपनेको क्षमा करो। अपने आपको ही तरह जगतके सब जीव हैं, अतः सब जीवावर श्रमा करो। क्रोध सब गुणोंको जला देता है। क्रोधको अग्निकी उपमा दी जाती है। सो यह बड़ा भारी क्रोध किया जा रहा है कि हम अपनेको मनाये चले जा रहे है। दूसरोंके प्रति नाना प्रकारके राग, द्वेष, करते हो तो यह बुरा ही तो करते है। यह परमें राग द्वेष क्या है? अपने आपको मताना है। अतः अपने आपको सतात चो जा रह हो। सो भाई बढते हो तो बढते जाओ। करोडपति हो तो अरबपति हो जाओ, मेरा कोई नुस्सान नहीं है। यदि मेरेमे ईर्ष्याका भाव आ जाय तो इसमें अपनी हानि है। करोडपति अरबपति होना तो मामूली बात है, वह मोक्ष चाहें तो जाने दो, जावो, बड़ा जल्दी जावो। उममें मेरी कोई हानि है क्या? अरे जावो परमात्मा हो जावो या जावो अपने आपमें रमो। दूसराको बड़ा बना देनेमें, दूसरोंके बड़ा हो जाओसे यहाँ कुछ कमी नहीं हो जायगी। सबके प्रति कल्याणका भाव हो, अपने आपके स्वल्पका परिचय हो क्षमा तभी पैदा होता है।

सबने अपने-अपने यहाँ क्षमा की महिमा गायी है। कोई कहता है कि तुम्हारे गाल में कोई तमाचा मारे तो बहो अच्छा लो यह दूसरा गाल भी तुम्हारे तमाचेके निये हाजिर है। यह ईसाई लोगोंके यहाँ कहा है। अरे तमाचा तो केवल मां बहुताने के लिए लगाया है तो लो और बेहना लो। किसीने किसी प्रकार कहा, मतलब क्षमादो घम सब कहा। हे आत्मन्! निज गायको पहिचाने बिना अधेरा है। तूने अपने यथायस्वरूपका अनुभव नहीं किया इसलिए तेरेमे क्षमाका अनुभव नहीं हुआ। यदि तेरेमे क्षमा नहीं है तो ममभो तूने घम नहीं किया। इम वर्ष भी ये भादोम दशलक्षण आए और भादो सुदी पंचमीसे आए ऐसा क्या हुआ? एक एक कल्पकालमें प्रलय काल हुआ करता है तो इम कल्पमें भी प्रलय हो चुका था। प्रलयमें आपके अग्नि ४९ दिन चोटे होने ह। बहुत वर्षा तूफान इत्यादि चला करते है। सारे विश्वमें नहो चलत। भरत व ऐरावतने आयखटम प्रलयकालके वे दिन आसाठ सुदी पूर्णिमा तक स्वतम हो जाते है। फिर ४९ दिन तक अच्छी वर्षा होती है। उत्तम वृष्टि होती है। अमृत वृष्टि, दुग्ध वृष्टि होती है, जिससे कुछ शांति छा जाती है। वह ४९ दिन खत्म हो जाते है भादो सुदी चौथको। इसके बादमें आपके घमकी वृत्ति सिफ होती है। जो कुछ होना था इन्ही ४९ दिनमें हो गया। अतः घमवृद्धि होती है वह तथि भादो सुदी पंचमीको पडती है। ये दशलक्षण पब प्रतिवप हमे घममार्गका स्मरण कराने आते हैं। हमको चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार हम क्षमादि घमोंको अपनेमें उतारें। सबमें बडी

चीज यही है कि अपने पर यथार्थ क्षमा करने तो ममभो कि सब कुछ कर लिया। हमने अनतज्ञानमय होकर भी, स्वभावदृष्टिसे दूर रहकर इस मसारमे धूमकर अनन्त दुःख उठाए। अब मैं अपने स्वरूपको देखकर अहंकारमे दूर रहकर अपनेमे अपने आप आनन्दमग्न होऊँ।

समाधिगतकमे भी लिखा है कि जाति और घम वेपभूपा या पहनावाका जिनके आग्रह है उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता। मैं किसी जाति वाला किसी शरीर वाला नहीं हूँ, मैं आत्मा चैतन्य जातिका हूँ ऐसा जानूँ। कोई भी आग्रह हो, चाह जानूँ कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं भद्रिय हूँ, वैश्य हूँ, सूद्र हूँ अथवा किसी प्रकारका विक्ल्प भरे हुए हूँ तो उस आग्रहके कारण मोक्ष नहीं होता है। हालांकि यह बात ठीक है कि तमाम जातियोमे यह कोई श्रेष्ठ जाति है। और श्रेष्ठ जाति व आचरण वाले मोक्ष पात्र है। यदि सस्कार निम्न जातियोके हुए तो मोक्ष नहीं है। तो भी अपने आपमे किसी भी पर्यायका आग्रह हो तो मोक्ष नहीं होता। मैं पुरुष हूँ अथवा स्त्री हूँ तो कोई भी विक्ल्प मेरे मोक्ष नहीं होने। मोक्षकी बात दूर रहे। मेरा विश्वास है कि उसे सम्यक्त्व नहीं होगा। मेरा मेरे महजस्वरूपके सिवाय अय कुछ नहीं है। अगर विश्वास नहीं है तो सम्यक्त्व नहीं है। मैं तो एक चैतन्यवस्तु हूँ। मैं तो सबसे अछूता चैतन्यमात्र हूँ। वह ज्ञानी नहीं है जो अपनेको सबसे निराला तथा अछूता न निरखे। अपने आपकी सहज चैतन्यस्वभावके रूपमे पहिचान होगी तब सम्यक्त्व है। यह बात वही कि हँसी हँसीमे ही शांति मिल जाय तो नहीं मिलती। हँसी हँसीसे ही यदि यह चाहो कि मोक्ष का माग मिले तो नहीं मिल सफता है। मेरे लिए तो आध्यात्मिक तपस्या की जरूरत है। तपस्या तब होगी जब कि यह समझो कि मैं पुरुष नहीं हूँ, स्त्री नहीं हूँ, अपनेको पुरुष स्त्री मनाने वाली भावनाओका तिरस्कार कर दो। और ऐसी भावना बाओ कि मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं मदा आन दधन स्वरूप चेतन वस्तु हूँ, मेरी भावात्मक ज्योति बढे यही काम है। देखो इगलिशमे 'आई' शब्द है जिनका 'मैं' अर्थ होता है। वह आई शब्द न पुरुषलिङ्ग है, न स्त्रीलिङ्ग है। इसी तरह मस्कृतम अहं शब्द है जो कि अस्मदसे बना है वह शब्द भी न स्त्रीलिङ्ग है और न पुरुषलिङ्ग है। तब साओ 'म' शब्द भी जब स्त्री पुरुष दोनोंसे परे है तो वाच्य जो यह मैं चेतन वस्तु हूँ, सो वह मैं भी न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ। मैं तो चेतनात्मक जगमग स्वरूप प्रकाशमान चकचकायमान एक वस्तु हूँ। हे आत्मन ! तरे तो कोई विचार नहीं पर तेरेमे मे जो विकार हो गए, विक्ल्प हो गए, विषय बपाय हो गए, वह तूने भ्रमवश ही भलवा लिये। तू धनके ही पीछे पडा रहा, अपने परिवारके ही पीछे पडा रहा। अरे तेरा ये धन नहीं, तेरा यह परिवार नहीं। विक्ल्प तो तूने स्वयं ही इस जगतमे बना लिए है। अरे यदि तू नुबसान मान लेता है तो नुबसान है और यदि नहीं मानता है तो कोई नुबसान नहीं। चाहे हजारका नुबसान है, चाहे लाखका, चाहे करोडका। उमे तू नुबसान न मान वे तो मव

परद्रव्य हैं, उनसे तरा क्या सम्बन्ध ? ह जगतके प्राणी ! तू विवल्प छोड़ दे तो तुझे शांति हो जायगी ।

घरमे यदि कोई बीमार हो जाय तो जिसके बचनेमे संदेह हो तो उसके परिवारका इष्ट पुरुष कितना विह्वल रहता है । बंध आता तो उससे पूछता है कि सच तो बता दो यह बचेगा कि नहीं । यदि बीमार मर जावे तो दुःख वियोगका तो जन्म है, किंतु अनिर्णयका अघेरा नहीं है । इसमे पूर्ववत् भीतरी अपानकी आशुलता नहीं है । पहिले कनेश उबल था । अब केवन वियोगका कनेश है । यदि कोई बीमार पुरपके वारेमे उममे यह कह जाय कि बचने की कोई आशा नहीं है । हाँ हो सकता है कि भाग्य अच्छा हो तो बच जावे । एसा बहनेसे उस इष्टका दिमाग खराब हो जाता था और उसके हृदयमे अशांति फैल जाती थी अब मर जानेपर भी अनिर्णयकी आकुलता ता नहीं है । अज्ञानमे होने वाली आकुलता बड़ी आशुलता है । मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—इस प्रकारके विद्वन्ममे सही ज्ञान नहीं मिल सकता है । ऐसी अवस्थामे वह कितने ही घमके नामपर काम कर टाले, तपस्या घर टाली, उपवास कर डाले पर अहंकार भरे हुए हैं कि मैं शुद्ध हूँ, मैं तपस्याका काम करना हूँ, मुझे मोक्ष जाना है । तो विकल्पोसे तो काम नहीं हो जाता । जिसका कोई आग्रह नहीं होगा वह हा निर्वाणका पात्र है । मुझे अपने आपमे विश्वास करना चाहिए कि मैं सब जीवाकी भाँति चतुस्यस्वरूप लिए हुए हूँ । इसका नाम नहीं, आकार नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, मैं तो केवल भावात्मक श्वीज हूँ, ज्ञानानन्दघन मैं हूँ । यदि ऐसी ही वान हाम तो मैं निर्वाणका पात्र हूँ, सम्पन्नवका पात्र हूँ । सम्पन्नत्व मेरेसे बही बाहर नहीं है ।

जमे नदी या मागरके तटपर पहुचनेपर फिर नदी या मागर दूर बाहर नहीं हैं । वसे ही सम्पन्नत्व ही मोक्षका एक तट है । उम तटपर पहुचनेपर मोक्ष दूर नहीं । हाँ कोई गिरला ही आत्मा आन्तरिक तपस्यामे खिसक जाय । ऐसी अवस्थामे निवाण कुछ दूर तो रह जाना है पर अधिक दूर नहीं रह जाना है । और अगर अधिक दूर नहीं रह जाता है तो माशका भाग भी ज्यादासे ज्यादा निवृत्त ममन्त्रिये । यदि सम्पन्नत्व बना रह तो मोक्षमाग अत्यन्त निकट है । सम्पन्नत्वमे सही ज्ञान है और मही मे उजेला है, वही बना रह उमे तो निर्वाणका सुख अभीसे है । निर्वाण मुखना ही रूप तो आत्मानुभव है ।

जैसे आजकल लोग प्राय गिलासमे ममालेकी ढकड़ीसे रमीना पानी पीते हैं । वह भरा हुआ गिलास लोग पीते हैं । उम भरे हुए गिलासमे एक रस है । गिलासमे रस भरा हुआ होता है वही तो एक सतान हो ढकड़ी द्वारा मुहमे जाता है । यद्यपि गिलासमे सर्वाङ्ग समृद्ध रस है और मुहमे अण जाता है फिर भी वह आणिक अण व गिलासका रस एक रूप

हो रहा है। तो देखो वह एक निर्वाणता सुख है। वह यद्यपि नरालय आनन्दसागर कुछ आगे है मगर सम्यक्त्वके प्रभावमे उस आनन्दकी ओटमे उसका ही स्वाद लिया जा रहा है, उसका ही आनन्द लिया जा रहा है। उसके लिए निर्वाण दूर नहीं है। सम्यक्त्वमे ही आनन्दताएँ व्याकुलताएँ नहीं हो पाती है और सम्यक्त्व भी निर्वाणका एक रूप है तथा सम्यक्त्व निर्वाणका एक स्वरूप है। निर्वाण कहते हैं सम्यक्त्वकी एकरसताकी। अतः सम्यक्त्वका ही नाम निर्वाण है, समझ लें तो मैं एक भावात्मक वस्तु हूँ। स्थानका ही नाम निर्वाण हो, सो नहीं है। जहाँ भगवान् स्वयं विराजमान है, शुद्ध भगवान्की आत्मा जहाँ विराजमान है वही अनन्त निगोद है, किन्तु निगोदिया तो यहाँ जैसे ही निगोदियोंकी तरह है अनन्त आनन्द लिए हुए हैं। यह जीव अपनेमे अनन्त आनन्द, भगवान्के स्वरूप, सुख और केवल ज्ञानकी लिए हुए है। जो अपनेको इन रूपोंमे नहीं समझता है वह जन्ममरणके चक्रमे पड़ा रहता है। आत्मा जैसी आनन्दमे है जिस क्षेत्रमे है उसमे अनन्त आनन्दभरा हुआ है। निबल आत्मा की बात तो मैं नहीं करता, परन्तु जो आत्मा अपने आपपर विश्वास करता है, अपने आपपर दृष्टि करता है वह अनन्त आनन्द अपनेमे भरे हुए है। वह आत्मा अपनेमे ठामाठस आनन्द भरे हुए है। इस अपने अनन्तानत भगवान् आत्मापर विश्वास करता हुआ, अपने आत्माकी देखता हुआ चलें तो जीवनका प्रत्येक क्षण आनन्दमे प्राप्त होता चला जायगा। मैं एक नानानन्द पदार्थ हूँ, सत् हूँ, अपने स्वरूपमे हूँ, परके स्वरूपमे नहीं हूँ। मैं अपने ही द्रव्यसे हूँ और अपने ही क्षेत्रमे हूँ। प्रत्येक सत्मे ४ चीजें पायी जाती हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। जैसे यह चौथी है तो यह एक वस्तु हुई। जितनी लम्बी चौड़ी तथा मोटी है यह उसका क्षेत्र हुआ और जो काली है कि पीली है यह हुआ भाव। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बने बिना कोई सत् नहीं हुआ करती है। कोई सत् है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी लिए हुए है। चाहे वह मूर्तिमान् पदार्थ हो चाहे अमूर्त। प्रत्येक पदार्थमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका चतुष्टय अवश्य होता है। आत्माकी देखो कि मैं आत्मा गुणपर्यायमुक्त होनेसे द्रव्यरूप हूँ तथा क्षेत्र, काल, भाव इत्यादि को लिए हुए हूँ। जो गुणपर्याय है उसका मैं पिंड हूँ। मेरेमे विकार नहीं, विकल्प नहीं। देखो गुण पर्यायका पिंड आत्मा है। यह सत्र यो नहीं बताया जा सकेगा जैसे पुद्गलपिण्डको उठाकर बता देते हैं। ज्ञानसे ही समझते आता कि इसमे जो शैवालिक शक्ति है वह गुण है। उसका प्रतिसमय कोई न कोई पर्याय है और परिणमता है। जिसमे शक्ति है, गुण है, पर्याय है उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि यह आत्मा एक सत् है। इसमें अथ द्रव्योकी भाँति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है। जैसे एक घीती है तो वह एक पदार्थ है। उसको फूँटा, दिया जाय तो व्यक्तरूपसे क्षेत्र है और उसको जो काला, जो रंग है वह

है। उसमें जो शक्ति है वह भाव है। इसी तरहमें यह आत्मा एक द्रव्य है। इसमें गुरुका प्रचार है, फेलाव है यही इसका क्षेत्र हुआ और इस आत्माका क्षेत्र आकाशक क्षेत्रके बराबर नहीं बल्कि अपने आपमें जितना फला हुआ है उतना ही मेरा क्षेत्र है। परमायसे जितना मेरा ज्ञान है उतना ही मेरा क्षेत्र है। यदि मैं २-४ कोसकी दूरी तक जानता हू तो २-४ कोसका क्षेत्र है और यदि हजारों कोसकी दूरी तक जानता हू तो हजारों कोसका क्षेत्र है। और यदि विश्वके विषयमें जानता हू तो विश्वके बराबर क्षेत्र है। प्रदेशत जितनेमें यह मैं द्रव्य विस्तृत हू उतना निजी अमर्याद प्रदेश मेरा क्षेत्र है। इमारा रूप दुःखरूप नहीं, क्लेशरूप नहीं, विलाप रूप नहीं, ये सब केवल हमारे विभाव परिणाम हैं। इन परिणामोंसे ही दुःख होते हैं। यदि हम ऐसे परिणाम न करें तो क्लेश नहीं हो सकते हैं, ऐसी खराब भावनाएँ हो जानेमें हम विकास नहीं कर पाते हैं। यदि हम विभाव न करें तो भी हम परिणामते तो प्रतिसमय ही हैं। जैसे कि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक समय परिणमती रहती है। इस परिणमनको व इससे आधारकी जो नहीं मानता है, उनका परिणमन भिन्न भिन्न रूपोंमें रहता है और यदि भावात्मकताके परिणमनको देखो तो अर्थ अर्थ है तब भी उनका परिणमन भिन्न-भिन्न भावोंमें रहता है। अर्थात् इस ज्ञानानन्दभावमात्र आत्माको तो देखो, यह देखनेके योग्य है, इसमें कोई विकार नहीं है। केवल यह आत्मा स्वरूप सत् मात्र है।

इस जगत्में जितने भी द्रव्य हैं वे सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंके लिए हुए हैं। इस भावस्वरूप चैतन्यका जो ज्ञान करे वह बड़े सम्यक्त्वके निकट है। जान कठिन पड़ रही है, मगर वस्तुकी यह खाम तत्त्वकी चीज है।

जितने भी दशन वने, जितने भी वदात, मास्य, बौद्ध इत्यादि बने, सबकी बुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें ही तत्त्व विद्यमान है। अर्थात् यह मैं आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंसे परिपूर्ण अपने सत्मात्र हू। अपने ही द्रव्यमें मैं सत् हू। प्रत्येक द्रव्य अपनेमें सत् रूप में ही है। प्रत्येक द्रव्यकी अपेक्षा मैं इस आत्मामें नहीं जाता हू।

यह कमण्डल, यह दूरी कोई भी हो सब अपना अपना, अलग अलग सत् रखते हैं। कभी कभी इस प्रकारकी दृष्टि बन जाती है कि कोई सबपदार्थोंको मिलाकर अपनेको एक सत् मानते हैं। यदि वे स्वतंत्र स्वतंत्र सत् नहीं मानते हैं तो वह तो ब्रह्मवाद आ गया। पर-द्रव्योंमें सत् रूप न देना ही ब्रह्मवाद है। मैं तो अपने ही क्षेत्रमें सत् हू, परके क्षेत्रमें सत् नहीं हू, मैं अपने अकेलेमें सत् हू। यदि मैं ऐसा अपने को मान लू तो मेरेमें आकुलताएँ व्याकुलताएँ नहीं आवेंगी और यदि इसके विरुद्ध अपनेको मान लिया तो अनेक प्रकारकी आकुलताएँ व्याकुलताएँ आ जावेंगी। इस तरहसे मैं अपनेको ज्ञानानन्द, चैतन्यस्वरूप निरखूँ और यदि मैंने अपने को यह निरखा कि मैं पुरुष हू, मैं स्त्री हू, मैं साधु हू, मैं अर्थकी हूँ मैं

उमका निर्वाण नहीं होगा, वह दुखके वर्णनमें ही कम जाता है। मेरी दृष्टि बाहर नहीं होनी चाहिए। मुझे यह समझना चाहिए कि मैं सबसे निराला चैतन्य स्वभावमय पदार्थ हूँ। मेरे में बण नहीं जानिया नहीं। मैं तो सबसे जुदा हूँ। ऐसा ही मुझे अपने को निरखना चाहिए। मैं किसी स्त्री स्वरूप नहीं हूँ, मैं किसी पुरुष स्वरूप नहीं हूँ, मैं किसी अन्य रूप नहीं हूँ। मैं एक चतयमात्र वस्तु हूँ—इस प्रकारसे जो अंतरमें अपने आपको निरखता है वह ज्ञानिका माग प्राप्त कर सकता है।

जैसे कुछ लोग नहीं बाहर चले जा रहे हैं, मक्खियाँ सिरपर मडरा रही हैं। शरीरमें बराबर मक्खियाँ चोट मार रही हैं। यदि वे व्यक्ति किसी तानाबने जाकर दुबकी लगा लेंगे तो मारी मक्खियों का प्रयास बेकार हो जाता है। वे मक्खियाँ उन पुष्पोंको कष्ट नहीं दे पाती हैं। उसी प्रकारसे इस जगत्के जीवपर अनेक विकल्प विपदायें मडरा रही हैं यदि इस जगतका यह प्राणी अपने ज्ञानसागरमें डूब जावे तो अनेक प्रकारके जो विकार हैं, विकल्प हैं वे उन्हें परेशान नहीं कर पावेंगे। इस जगतका प्राणी यदि अपने ज्ञानसागरमें डूब जावे तो उसके विकल्प समाप्त हो जावेंगे और वह मोक्षको प्राप्त करेगा। मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ, मेरेमें अय अय रूप नहीं है, मैं चैतन्यस्वरूप हूँ—ऐसा मुझे अपने आपको मानना है। यदि अपने को यथार्थ रूप नहीं दिया जाता तो काम नहीं चलेगा।

आगे यह कहने है कि जहां कल्पनायें प्रतिभासिन होती हैं यह तो मैं हूँ, किंतु ये अस्थिर कल्पनायें मैं नहीं हूँ। इस समय अमृतको पीऊँ और अपनेमें अपने लिये स्वयं मुखी होऊँ। इस जगतके प्राणियोंको कल्पना मात्रसे ही क्लेश होते हैं। जो कुछ वे कल्पनाएँ बना लेते हैं उन्हें सत्य दिखती हैं, पर वे सत्य नहीं होती हैं। उन कल्पनाओंसे उठते उन्हें क्लेश होते हैं। जैसे सोत हुए व्यक्तिको स्वप्नमें सब बातें सही दिखती हैं। वह उस स्वप्नमें आनंद मान ही जाना है। परंतु वे सब बातें सही नहीं होती हैं। जने सनीमाके पदमें चित्र उछलना है, तो पदा नहीं उछलता है बल्कि चित्र ही उछलता है। पदाका स्वरूप चित्र नहीं हो जाना है। पदा तो वह है जिसपर चित्र उछलकर गये। अनेमें यह भावना धनाया कि मैं चैतयमात्र हूँ, मेरमें सुख दुख नहीं है। सुख दुख आदि विकार मुझमें उछल जाते हैं पर मैं तो चतयमात्रमात्र आत्मतत्त्व हूँ। मैं सबसे निराला हूँ। मेरमें मोह नहीं है। मैं तो अविनाशी तत्त्व हूँ, गिटन बाना नहीं हूँ। ऐसी श्रद्धा है आत्मन् ! तू अपने आपमें बना।

हे आत्मन् ! यदि तू अपने आपको सबसे निराला शुद्ध अविनाशी समझे तो तुझे अविनाशी सुख प्राप्त होंगे। तेरेको कभी आकुलताएँ व्याकुलताएँ नहीं आवेंगी। और यदि तूने अपनेको इसके विपरीत समझा, मैं तो ससारके समस्त प्राणियोंसे मिला हुआ हूँ, यह मेरी माँ है, यह मेरी माई है, यह मेरी बुवा है, यह मेरे पूजा हैं तो उसको कष्ट ही रहेगा।

मैं तो जैसा हूँ तसा ही मदा बना रहने वाला हूँ। मैं अय अय रूपोमे नहीं हूँ। हूँ जगनके प्राणी। यदि नू अपनेको अय अय रूपोमे मानेगा तो तुझ क्लेश प्राप्त होगे और यदि अपनेको भगवानरूप मानकर अपनेमे ही रम गया वो तुझमे आकुलताएँ व्याकुलताएँ करेगी नहीं आवेंगी। मैं ज्ञानमात्र हूँ, सबसे निराला हूँ—ऐसा अपने आपको निरखो। तू अपनेको भगवानरूप मान। तेर मे तो कोई विकार ही नहीं दिखत हैं, तू तो निर्विकार हूँ। तरमे दुःख कहाँ है ? तू तो सदा मुखी है। दुःखोका रच भी तरमे नाम नहीं है। तू अपनेको शुद्ध चतन्यमात्र समझ। तरमे दुःख करनेकी, विकल्प करनेकी, कोई आवश्यकता नहीं है। तू अपने आपको भगवानस्वरूप मानकर अपनी ही अंतर आत्मामे रम और अपनेमे अपने लिए अपने आप सदा सुखी हो। देखो जो आत्मा है वह स्थिर व एक स्वरूप है उसमे जो अस्थिर व अनेक स्वरूप भाव भलवते हूँ वे औपाधिक हैं। वे कल्पनायें मैं नहीं हूँ, किन्तु जिस पदार्थमे कल्पनायें प्रतिभामित होती हूँ वह मैं हूँ। जैसे फिल्मके चित्र सिनेमाका पर्दा नहीं है किन्तु जिसपर चित्र उछलते हैं वह परदा है। यह मात्र लीविन दृष्टात है। मैं ममस्त पर्यायोका श्रोत तो हूँ किन्तु किमी पर्यायमात्र नहीं हूँ। जो पर्यायमात्र अपना अनुभव करे वह परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है और जो ध्रुव स्वभावमय अपना अनुभव करे वह स्वसमय अर्थात् सम्बद्धदृष्टि है। अपने महज स्वरूपमात्र अपनी श्रद्धा करना सो परमाथ श्रमृतका पान करना है। इस श्रमृतपानसे आत्मा अमर व अनूपम आनन्दमय हो जाता है। आनन्द तो यही इस आत्मामे है। सो अपनेको सहज चतन्यस्वरूपमात्र निरखकर निर्विकल्प हो, अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ।

प्रत्येक जीव मुख चाहता है। मुख प्राप्त होने, इमका केवल एक ही उपाय है, दूसरा नहीं है। वह मह है जिसे मैं एक स्वतन्त्र स्वयं सत् हूँ। मैं सबसे निगला एक जुदा पदार्थ हूँ, ऐसा अपने आपमे विश्वास आ जाना यह ही सुखका उपाय है। मैं क्या स्वतन्त्र पदार्थ हूँ, मैं किसी पर आश्रय करनेके लिए स्वतन्त्र नहीं हूँ किसीको धोखा देनेके लिए नहीं हूँ। मैं स्वयं एक स्वतन्त्र पदार्थ हूँ और जगनके सब जीव भी स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किसी पदार्थ का दूसरा पदार्थ न काय है और न कारण है। इसी प्रकार स्वतन्त्र जानत रहनेका उपयोग करना ही सुखका उपाय है। मेरा कोई कारण नहीं है अर्थात् मैं किसी चीजसे पैदा हुआ नहीं हूँ। ऐसा निरखना ही ज्ञान है और ऐसा निरखने से ही सुख है। यह मैं किसी दूसरे पदार्थसे पैदा हुआ हूँ ऐसी बात नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे है और अपने आपमे ही परिणामते रहत हैं मैं ऐसा ही ज्ञानमय हूँ, मुखमय हूँ। जो स्वतन्त्र हूँ और अपने आपमे अपने द्वारा अपनी शक्तिही व्यक्तिमे परिणामता रहता हूँ। मेरा जो परिणाम होगा वह ज्ञान और सुखका होगा। जैसा आत्माना स्वरूप है वैसे ही परिणामन होगा। जैसे आममे रूप गुण है



तो ग्राममें क्या काम होगा ? पीला हो जाय, पीला हो जाय, लाल हो जाय । रूप बदलना रहेगा । यही तो ग्रामका काम है । ग्राममें रस है तो रस बदलता रहता है । खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कसमा ही हो जाय । यही तो ग्रामका काम है । इसी प्रकार मेरा गुण ज्ञान व ग्राम-रस है तो मेरा क्या काम होगा ? कभी-अपूर्णानन्द रहे कभी पूर्णानन्द रहे कभी अल्प ज्ञान रहे, कभी पूरा ज्ञान हो, यही तो मेरा काम है । यहापर कोई दूसरा काम नहीं है । मेरे गुणसे ही ज्ञान और ग्राम-रस बतता है । यह मैं आत्मा अपने को सोचू कि मैं ग्रामानन्दस्वरूप हूँ, स्वतन्त्र अस्तित्वको लिए हूँ । हूँ तो अपने आपमें हूँ । अपने आपमें ही ज्ञान व ग्राम-रस मिलता है । किसी दूसरे पदार्थमें अपनेको ज्ञान व ग्राम-रस नहीं मिलता है । यह आत्मा ज्ञान और ग्राम-रससे परिपूर्ण है । मेरेमें ज्ञान किसी दूसरे पदार्थमें नहीं आता है । मेरेमें जो ज्ञान और ग्राम-रस भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थके कारण नहीं है । दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और ग्राम-रसके बाधक बन सकते हैं । हमारे ज्ञान और ग्राम-रसके ये बाधक नहीं बन सकते हैं । परमात्मके बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और ग्राम-रसके बाधक भी नहीं बनते, क्योंकि हम स्वयं ही कल्पनाएँ बनाकर विह्वल हो जाते हैं । मेरेमें तो ज्ञान और ग्राम-रस है, मैं आत्मा अपने स्वरूप में हूँ । यदि किसी बाह्यमें दृष्टि न हो, मोह न हो, विवर्ण न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवानका है उतना ही जायगा । जितना ज्ञान-रस भगवानमें है उतना ही जायगा । मैं तो सबसे जुदा हूँ, फिर भी स्वयं ज्ञान और ग्राम-रससे परिपूर्ण हूँ । मेरी और भगवानकी जाति तो एक है, पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और ग्राम-रस परिपूर्ण अन्त है और हमारे ज्ञान और ग्राम-रस अल्प है । ऐसा क्यों हुआ ? हममें गलती यह है कि हम अपने स्वरूपको न जानकर दीन बने हुए हैं । यही गलती है और यही कारण है कि दुःख हो रहे हैं । जानकारी किसी भी चीजकी कर लें तो जानकारी करनेमें दीनता नहीं आती है । दीनता तो केवल अपने में आशामयी कल्पनाएँ बना लेनेमें आती है । दीनतामें क्लेश आ जाते हैं । यदि आशायें मिट जावें तो दीनता भी मिट जायगी । यदि हमें दीनता मिटानी है तो परकी दृष्टि छोड़ दें । परकी दृष्टिसे ही क्लेश होते हैं । अतः यदि परकी दृष्टि छोड़ दें और अपने आपके महत्त्वको समझें तो दीनता मिट जाती है । यदि अपनेमें दीनताका भाव न रहे तो ज्ञान-रस ही ज्ञान-रस है और अन्य इसका उपाय नहीं है । किन्तु ही उपाय कर डालें पर अक्षर ही रहग । दुःख न हो, अर्थात् न हा, ऐसी अवस्था न हो ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृपाय समझकर मुझे अपने आपपर विश्वास करना चाहिए । विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हूँ, सत् ही स्वरूप हूँ, अपनेमें मैं मेरेमें ज्ञान अल्प नहीं, ज्ञान और मुखसे लबालब भरा हुआ हूँ । हालांकि इस समय एक समस्या सामने है कि भूख तो लगती ही है, इसे भोजनमें तो दृष्टि दनी ही होती है, पर यह नहीं कि दृष्टि भोजन ही भोजनमें रहे । उपाय

तो ऐसा बने कि भोजनकी इच्छा ही न रहे और ज्ञान व आनन्द ही रह । भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पडता नहीं, तब इतना तो करो कि भोजनमे आसक्ति न रखो । अपने पेटकी केवल पूर्ति कर लो और अपने भाव निराहार ज्ञायकस्वभावमात्रकी प्रतीतिरूप रूप कर लो तो अमर रह सकते हो । यदि भोजन की इच्छा दूर होगी और निराहार नायकस्वभावमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार सना खत्म हो जावेगी और ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस मसालके सारे भगडे छूट जावेंगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगी । यही स्थिति सर्वोत्कृष्ट है । यदि मनमे अथ कुछ लालसा, लालच इत्यादि कर्नेकी भावनाएँ बने तो फिर ऐसी स्थिति बसे आ सकती है ?

लालसा करो तो इस बातकी करो कि यथाय दृष्टिको अपने आपमे लानेकी, अपने आपमे झुक्नेकी, विकल्पोंसे छूटनेकी और अपने भावनी आत्माकी सेवा कर्नेकी बात बनी । और ऐसी लालसा करना कि मेरे २ लडके हो जायें, ४ लडके हो जायें, मेरी ऐसी स्थिति बन जाय, धन हो जाय इत्यादि ऐसी लालसा बनी से तो ठीक नहीं होगा । अर इससे पूरा नहीं पडेगा । ऐसा करनेमे तो कोई न कोई काम विपदा सवट लड रहे ही । अब यह है, अब यह है, अब यह चाहिए और अब यह मिले—इस तरहसे अनेक विकल्प खडे ही रहेंगे । इस तरह विकल्पोंसे आनुता ही आनुलता आयगी । हे प्रभो, हे निज नाथ ! मेरेमे ऐसा बल भरा कि मेरेमे केवल अपने आपकी शक्ति आने, किसी भी बाह्य पदार्थके विकल्प न बने । बाह्य पदार्थोंको मुझे मोचना ही न पडे । बाह्यकी सोचनेमे कुछ लाभ भी नहीं है । सोचते हागे कि हम लडके को पढाते हैं तो पढता है । अर लडकेका भाग्य है । अपने भाग्यमे ही पढता है । लडकेकी सेवा करत है, सुशामद करते हैं तो यह बतलाओ कि आपका भाग्य बडा है कि आपके लडके का भाग्य बडा है ? अर आपके लडकेका भाग्य बडा है । जिसकी सेवा करने हो, पढाते लिखाते हो, बिलाते मिलाने हो, भारी सेवार्थे करते हो तो उस लडकेका भाग्य अच्छा है कि आपका भाग्य अच्छा है । अर जिनका भाग्य बना है उमकी चिन्ता करते हो और अन्न भविष्यके प्रति चिन्ता नहीं करते हो । ये सब काम हाते हैं अपने आप होत रहेंगे । मत्रके भाग्य व काम जुदा जुदा ह । चिन्तासे पूरा भी नहीं पडेगा ।

ऐसी बाह्य चिन्ताओंसे फायदा नहीं है । अपने आपका चिन्तन करो कि मैं शुद्ध, ज्ञानभाव ज्ञानस्वरूप आत्मा ह । केवल आत्मदृष्टिका ज्ञानके होनेका ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मैं आनन्दमय ह, यदि बाह्य विषयोंकी स्थितिमे रहे तो आनन्द नहीं है । आनन्द है तो केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे है, जिनकी हम पूजा करते हैं, जिनका आदर करते हैं, जिनका चरित्र पढते हैं उन्होंने अपने आपपर विश्वास किया, बाह्यदृष्टि खत्म की और अपने ही ज्ञानरमना म्याद लेकर रहे इसलिए उनका आदर करते हैं, उन्हें पूजन है । जीवनमे

एक महान् उद्देश्य गट-नाता चाहिए कि मेरी वह स्थिति आपने जिसमें केवल अपने ज्ञानस्वरूपका ही अनुभव करना रू और ज्ञानस्वरूपका ही म्वाद नेता रू । अपने आपमें यह विश्वास हो कि मैं मत्में निराला स्वतंत्र एक पदार्थ हू । मेरम दूसरा कुछ फेर नहीं कर सकता है । मैं दूसर लोकोको कुछ फेरफार नहीं कर सकता हू । सब मत् हू और अपने ही सत्के कारण वे निरंतर परिणामते रहते हैं । मैं किमीका कारण नहीं जो किसीको कुछ कर दे सकता हू । मैं किसीका कार्य नहीं कि दूसरे नाग मुझे कर दिया करते हैं । सब अपने-अपने सत्के मालिक हैं । ऐसी दृष्टि यदि अपनेमें हो तो निश्चित मुक्ति का माग है । ममन्त जगतके अपने पदार्थ है वे सब अपने-अपने मत्में रहते हैं और कोई भी अपने अपने स्वरूपमें आगे नहीं जाते हैं ।

हे आत्मन् ! ऐसा अपने आपमें विश्वास कर कि जो मैं कर सकता हू वह अपने को ही कर सकता हू । दूसरे को कुछ नहीं कर सकता हू व भोग सकता हू तो अपने स्वरूपको ही । हाय विषयवर्षायोके परिणाममें ही पडरर जगतके सब जीव बरगद हो गए हैं । मेरा भगवान तो अन्त आनन्दमय है । इन सब परपदार्थोंसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं, कुछ लेना देना नहीं, सब अपने अपने मत्में है, सब कुछ-यारा-यारा है, फिर भी बाह्य पदार्थोंके कारणोंसे वे कल्पनाएँ उठ जाती हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है । यह एक बहुत बड़ी विपत्ति छापी है । इन बाह्य पदार्थोंमें मेरा कुछ नहीं है । अपने ज्ञानरसका परिचय यदि नहीं है तो कुछ नहीं है । यदि बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि होगी, बाह्यकी आशा होगी तो अनन्त दुःख होगा । मुक्तका उपाय अपनी स्वतंत्रताका विश्वास है । जगतके सभी पदार्थोंको अपनी स्वतंत्रताका विश्वास हो तो क्लेश नहीं हू और यदि अपने स्वरूपमें दृष्ट गए तो क्लेश ही क्लेश रहेंगे । यदि दूसरे पदार्थोंमें ही लग रहे तो आकुलताएँ आयेंगी । तो यह सुख और दुःख जिसका फल है ? अरे दुःख मुख तो मोहका ही फल है । जगतके जीवोंका देखो बाह्यमें मोह करके दुःखी और मुन्वी होने हैं । दम्बो इस जगतके जीवोंका जो दुःख होने हैं वे अपने मोह और मिथ्यात्वके ही परिणाम हैं । मैं अपने आपको यह अनुभव करूँ कि मेरा तो मात्र मैं ही हू, मेरमें ममताका परिणाम नहीं है । यदि अपने आपमें ऐसी भावना बने तो वही कल्याणका माग है ।

भैया ! कोई एक शराबी था । तो वह एक शराबीका दूकानपर गया । बाला कि हमें अच्छी शराब दो । उमने प्रतलाया कि यह बहुत बढ़िया है इसे ले लो । कहा नहीं नहीं हमें बढ़िया शराब चाहिए । कहा देखो हमारी दूकानपर जो पाँच-सात पड़े हुए हैं उनसे तुम आदाज लगा सकते हो कि शराब बढ़िया है या नहीं । मोहमें क्या हुआ करता है ? तो मोह में आकुलताएँ होती हैं । मगर देखते हैं कि ये जगतके सब जीव बाह्य पदार्थोंमें ही चिंताएँ किया करते हैं, मोह किया करते हैं, दुःखी होते जाते हैं । यही सब तो मोह मदिराका परि

नाम है। फिर भी मोहके तशेके दुष्परिणामका विश्वास यह मोही नहीं करता।

देखो अपने मोहकी बेवकूफी दखना कठिन है तो दूसरे लोगोको देख लो कि यह उसका लडका है, यह भी कहता है कि यह हमारा लडका है। घर यह बताओ कि उसका तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? वे तो सब जुदा जुदा हैं। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। जो तुम्हारे धर्म दूसरा कोई पदा होता तो उनसे तुम मोह करने लगते। अरे जो पदा हुआ उनका तुम कुछ कर लेने हो क्या ? यह मेरा है—यह आशय आना ही दुःखका कारण है, दूसरा कोई दुःखका कारण नहीं है। अपने बारेमें यह विश्वास करो कि मैं अपने आपमें हूँ, स्वतन्त्र हूँ। मैं ही अपना कारण हूँ, मैं ही अपना वाय हूँ। मैं जो कुछ कर सकता हूँ, अपने को ही कर सकता हूँ। मैं अपने आपको ही भोग सकता हूँ। जो कर सकता है वह अपने आपको ही कर सकता है। अपने स्वरूपसे बाहर दूसरको कुछ नहीं कर सकता है। और दूसर लोग भी मेरा कुछ नहीं कर सकते हैं। सब वस्तु अपने अपने स्वरूपमें हैं। ऐसा यदि अपने आपका विश्वास हो तो वह अमृतका पान करता है।

जितने इस अमृतका पान किया उनको आनन्द है। उसका पान दूसरे पदार्थोंमें नहीं आता। शिष्यको गुरु ज्ञान देता है तो गुरु केवल शिष्यका निमित्त होता है। ज्ञान तो उस शिष्यका आत्मासे ही प्रकट होता है, गुरुसे पान नहीं प्रकट होता है। अगर गुरु दूसरोंको ज्ञान देने लगे तो २०-२५ शिष्योंको पान देनेके बादमें गुरु तो सुद बीरा रह जावेगा। गुरु यदि दूसरोंको पान दे दे तो गुरु मूर्ख बन जावेगा। शिष्यमें सुद ही ज्ञान भरा हुआ है, सो गुरुका निमित्त पाकर वह पाना बन गया। देखो कोई बालक बुद्धिमान होता, कोई मूर्ख होता। किसीको एक बारमें ही याद हो जाना, किसीको मुश्किलसे याद होना। क्या हो गया कि वह स्वयं ज्ञानमय तो है सो पूव जन्म की तपस्याके तारतम्यके अनुसार उसके ज्ञान प्रकट होता है। इसी तरह मेरा स्वरूप आनन्दमय है, मेरेमें मेरा ज्ञानका ही विकास हो रहा है और मेरेमें स्वयं आनन्द बर्त रहा है। दूसर पदार्थोंमें मुझे आनन्द नहीं प्रकट हो रहा है। यदि बाह्य पदार्थोंसे आनन्द प्रकट होता हो तो बतलावो। "न बाह्य अजीव पदार्थोंमें ज्ञान और आनन्द तो है ही नहीं, तो फिर वहाँ ज्ञान और आनन्द कबमें प्रायगा ? किसी दूसर चेतन पदार्थसे आनन्द कब आ सकता है ? उनका ज्ञान व आनन्द उनमें ही परिसमाप्त है। मैं स्वयं ज्ञान मय हूँ, मेरा आनन्द मेरसे ही जाना है। दूसरोंसे मुझे आनन्द नहीं होता है।

ह प्रियतम ! बाह्य पदार्थोंके विकल्प छोड़ दो और अपने मानसका स्वाद लो। यदि अपनी सहज इस स्वतन्त्रताका विश्वास ही जाय तो यही अनुपम काम है। बाहरी पदार्थोंके विकल्पसे दुःख होते हैं, बाहरी पदार्थोंसे नहीं। कोई लडका २० हाथकी दूरी पर खड़ा हो और दूसरा भी इतनी दूरी पर खड़ा है। यदि एक लडका दूसरका अंगुनी दिखाकर चिढ़ाए।

जिम लडकेको चिटाया जा रहा है वह यदि विकल्प बना ले कि अरे यह नो हमे चिटा रहा है, ऐसी कल्पना बनाने मे, ऐमा ख्याल करनेसे उस दुःख होता है, दूसरे लडकेकी अगुलीसे दुःख नही होता। बडे बडे लोगो को किस कारणमे क्लेश हो रहे है तो क्या विरोधीके कारण से क्लेश हो रहे हैं। अरे उन्होंने स्वय कल्पना बना ली है कि यह मेरा विरोधी है, यह मेरे खिलाफ है, यदि यह कल्पना बना ली है तो क्लेश होते है, दुःख होते है। देखो इन दुश्मनो से दुःख नही होना है। केवल कल्पनाएँ कर लेने मे दुःख होता है।

एक राजा था। वह किसी राजापर चढाई करनेके लिए जा रहा था, सो वह मेना सहिन जा रहा था। रास्तेमे जगलमे निकला। उसी जगलमे एक साधु था। जिम राजापर चढाई करने जा रहा था वह साधुके पाम बैठा था। साधु उसको कुछ उपदेश दे रहा था। अब राजाके कानमे शत्रुकोके शब्द सुनाई पडे। राजाने समझ लिया कि शत्रु आ रहे है। वहाँ तो वह उपदेश सुननेके लिए विनयासनसे बैठा हुआ था और कहा वह वीरासनी होकर बैठ गया। अब राजाने शत्रुकोके देख लिया तो उठ खडा हुआ और उस राजा ने अपनी तलवार निकाल लिया। साधु बोला कि राजन् यह क्या कर रहे हो? राजा बोला कि महाराज ज्यो ज्यो दुश्मन आ रहे है त्यो त्यो मेरा दिल भडक रहा है। मैं शत्रुकोके गक कर दूँगा। साधु बोला, राजन् तुम ठीक कर रहे हो कि अपने दुश्मनोको गक करने जा रहे हो, परन्तु एक शत्रु तो तुम्हारे अदर ही पडा हुआ है उसका भी तो दलन करो। राजा बोला, अरे मेरे अदर भी कोई दुश्मन ह? बताओ तो वह कौनसा दुश्मन है? साधु बोला—महाराज तुम्हारा दुश्मन दूसरेको दुश्मन माननेका विकल्प है। तुम्हारा शत्रु तुम्हारा मोह है, विकल्प है। यह विकल्प ही तुम्हे चैन नही लेने देता। दूसरे शत्रु है, ऐसा ख्याल छोड दो तो कोई शत्रु नही है। दूसरा कोई तुम्हारा कुछ नही कर सकता है। ऐसा ख्याल छोड दो कि फलाना मेरा दुश्मन है। साधुकी बात समझमे आ गयी। अब राजा शांत होकर, मुनि दीक्षा लेकर मूर्ति की भांति बैठ जाता है। दुश्मन आते है और देखते हैं कि शांत, मूर्ति स्वरूप बैठा हुआ है। सब उसको प्रणाम करते है। दुश्मन देखकर प्रणाम करके चले जाते हैं।

बतलाओ कि यदि वे राज्य हडप लेते सत्य विजयी बने तो विजयी है। अरे रहता होता। आकुलताएँ व्याकुलताएँ सदा बनी इस कारण अपने आपमे विश्वास सबसे निराला हू। बाह्य पदाश मेर ही ऐसी

रहकर  
उन्हें दुःख

ह,

अपने आपमें है, किसीका दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है ऐसे स्वतन्त्रकी दृष्टि हो जाय तो मुख और शानिका माग मिल सकती है और किनता हो घन सचय हो जाय किन्ती ही उज्जत मिन जाय, पर अयकी दृष्टिमें शांति नहीं मिल सकती। हम रात दिन दूसराका स्याल खरार, दूसरा का विकल्प बनाकर परेशान रहा करत है। हम सबसे केवल एक यह ही बात नहीं था रही है। कि ही भी परपदार्थोंका स्याल करना, अटपटी कल्पनाएँ करना और परगान होना उनना ही काम प्राणियोंका अब तक चला आ रहा है। कोई किसी का स्याल करता, कोई किसीका स्याल करता, मगर दुखी होनेकी एक यह ही पद्धति सबके अन्दर पायी जा रही है। दूसरा का स्याल करते, इष्ट अतिष्ठा स्याल करते और परगान होते हैं। योगियोंमें और प्राणियोंमें इन ही बातोंका तो अंतर है। योगी सम्बन्धानकी ही पद्धतिमें चीजाकी जानते है, इष्ट अनिष्टों को नहीं जानते हैं और अपने ही स्वरूपमें मग्न रहत है। इस तरहके ये योगी सदा प्रसन्न रहत हैं और हम जगत्के जीव परस्मनुवाक विकल्पोंकी लिए हुए रात दिन परेशान रहते हैं। वस्तुओंका स्वरूप देखो—प्रत्येक पदार्थ बसल अपने स्वरूपमें उत्पाद और व्यय करते हैं। अगुली चाहे अपने आप टेढ़ी हो चाहे दूसर मनुष्य अगुलीको दाब दें, पर अगुलीमें जो उट्टापन बना है वह अगुलीकी ही परिणतिसे बना है, वह इन ही स्क्वोंकी परिणतिसे बना है, उस अवस्थाका करने वाला कोई दूसरा नहीं है। परपदार्थोंमें जो कुछ भी हो जाता है वह उनके स्वयं अपने आपमें होता है, कोई दूसरा उमको नहीं करता है। एक निमित्तकी बातको देख कर यह प्राणी गव करता है कि मैंने यह काम किया। जैसे अभी हारमोनियम बज रही थी तो वह कैसे बज रही थी? ये इन भाईकी आरमाकी बात देखो तो यह आत्मा तो इच्छा, जान कर रहा था जिमसे योग भी कर रहा था। हमसे आगे इस आत्माका काम नहीं। हम शरीरकी देखो मो अगोंमें अग हिल रह थे हमसे आगे शरीरका काम नहीं। हारमोनियमम पोतलके तार हैं, उमम हवा तो जाती है नब वह स्वर दती है, इतने पर भी वह स्वर शब्द नारसे नहीं प्रकट हुआ, भाषावगणाके स्क्वोंसे प्रकट हुआ है। जगतन इन प्राणियोंका देखो इच्छा और योग अपने आपमें कर रह हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रह हैं। इच्छा हो रही है, जान हो रहा है, अभिलाषा हो रही है। उनका निमित्त पाकर उनके आत्मप्रदेश में कम्पन हो जाता है। इच्छा जिसके होती है उमकी आत्मामें कपत हो जाता है। जैसी अनु कून इच्छा इस आत्मामें है उसीके अनुकूल हलन इस शरीरमें है। उस योगका निमित्त पाकर शरीरमें जो बात है सो वायु चली, वातमें कम्पन हुआ, फिर वातका निमित्त पाकर इस शरीर के अग चले, अगुलियाँ चली। ऐसा स्वयं हो गया। इस ही तरह शरीरमें वायु चली और फिर अग भी चल पडे। उसके निमित्तसे स्वरका दबाव हुआ, सा हवा निकलने का अवकाश मिला। देखो ये सब काम सबसे अपने आपमें हो रहे हैं। यहाँ हवा पास होना हुआ और यहाँ

आवाजका निकलना हुआ। इस पर भी पीतलसे शब्द प्रकट नहीं हुआ, किन्तु भावावगण से शब्द प्रकट हुआ। कोई किमी क्रम्यको कुछ नहीं करता सब पदार्थोंके जुटा जुदा काम हो रहे हैं पर निमित्त उनका एक दूसरोमें है जिससे यह भ्रम हो जाता है कि अमुकने यह काम किया, अमुकने यह काम किया। वस्तुओंके स्वरूपको देखो तो परपदार्थोंमें स्वतन्त्रतामें उनका अपने आपके परिणामनमें गुद काम हो रहा है। ऐसी स्वतन्त्रताकी दृष्टि जब आती है तब ज्ञानी जीव जगतके पदार्थोंके परिणामनको देखकर न हट करते हैं और न विषाद करते हैं। अब यह देविए कि हम परशान हो रहे हैं तो किसलिए परेशान हो रहे हैं ? अरे उनमें परशान होनेसे क्या कुछ लाभ बना दोगे ?

प्रथम तो ऐसा ही सोचें व यत्न करें कि मेरी दृष्टि बाह्यसे हट जानी चाहिए। इसमें असफलता हो तो फिर आगे सोचें कि मैं किसके पीछे बग़्बाव हो रहा हूँ दुःखी हो रहा हूँ ? देखो पदार्थ दो तरहके हैं—(१) जीव और (२) अजीव। जीव वह कहलाता है जिनमें देखन हो, जानन हो और अजीव वह कहलाता है जिनमें जानन तन्व न हो। दो ही प्रकारके तो पदार्थ हैं। इनमें से जीव तो दिखता ही नहीं, जो दिखा करते हैं वे दिग्गने वाले पुद्गल है अथवा वे जो दिखते हैं भौतिक है। एक तो भौतिक है और दूसरे चेतन पदार्थ या देखने जानने वाले पदार्थ। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंमें किस प्रकारके पदार्थोंके पीछे परेशान हो रहे हो ? विचार करो कि जीव जिन जीवोंके पीछे परेशान हैं वे दिखते ही नहीं हैं। और जीवोंके स्वरूपमें दृष्टि दो तो उनमें देखन है, जानन है, जानान समय चेतन पदार्थ है। वे तो वैसे ही तसे ही हैं और वैसे ही सब हैं। किसी कोई विलक्षण नहीं है सब एक रस वाले हैं। जब कोई विलक्षणता नहीं है तो उनमें मेरे तेरेका भेद ही नहीं हो सकता। यदि विनश्रणता हो तो मेरे तेरेका भेद हो। परन्तु जीवोंके स्वरूपको दृष्टो कोई विलक्षणता नहीं है। य स्वयं ज्ञानमात्र है नायकस्वरूप है, कोई विलक्षणता नहीं है। भाग्यने, विदेणके, गाँवके ये सब ही जीव गुद्ध ज्ञानमात्र हैं, आ माने मममें दृष्टि टालकर देखो तो गुद्ध ज्ञानमात्र है, एक स्वरूपमें हैं। तो यह मेरा तेरा पत संस निन गया कि यह मेरा है यह उसका है, यह दूसरेका है अथवा यह इष्ट है, यह अनिष्ट है। स्वरूपमें दृष्टि दो माँ उहा कुछ नहीं गिनेगा। प्रथम तो इस जीवोंके पहिचानने बाल भी कोई नहीं है। और कोई पहिचाननहार मिल जाय तो इसका ज्ञाता दृष्टा हो जायगा तो उसकी दृष्टि भली बुरी नहीं होती है। सब प्रभु नजर आते हैं एक चेतना पदार्थ नजर आते हैं। फिर वह कैसे व्यवहार करें, कैसे मेरा तूरा माने ? अपनी बरबादी दूसरोंके कारण नहीं होती है। अपनी बरबादी अपने ही कारण होती है। जो जीव हैं वे दिखनेमें आते नहीं हैं। जीवके पीछे तो हम बरबाद नहीं हो रहे हैं परशान नहीं हो रहे हैं, क्योंकि जीव तो दिखते ही नहीं। यदि वह दिखेगा तो ज्ञानीको दिखेगा। माँ ज्ञानीकी

वृत्ति ही अलौकिक है वह परेशान होता नहीं।

परमात्माकी बात तो यह है कि जो कुछ भी दिखेगा वह अपने स्वरूपमें दिखेगा। सब जीव हैं, एक रस हैं इस दृष्टिमें व्यक्तिपन ही खत्म हो जाता है। जीवके देखने वाले ज्ञान-योगी पुरुष व्यक्तिपनको नहीं देखते हैं। वहाँ उस केवल एक चित्प्रतिभास ही नजर आता है। तो वहाँ परेशानी कैसी? जहाँ व्यक्ति नजर नहीं आने हैं वहाँ मेरी तेरी नजर कैसे बने? वहाँ परेशानी कैसी हो? सो जीवके विषयमें तो यह बात है कि प्रथम तो जीव निखने ही नहीं हैं, जो समझमें आते ही नहीं हैं उनमें परेशानी कैसे हो सकती है और नजर आ जाय तो यह जीव एक रस है, चतुर्भुजरूप है, जीवके स्वरूपके समझनेपर व्यक्तियाँ नजर नहीं आती। व्यक्तियाँ हैं, भिन्न भिन्न हैं, परिपूर्ण हैं, आनन्दमय हैं। आनन्दका अनुभव सबके जुटा जुटा है, स्वरूपचतुष्टय सबका भिन्न भिन्न है। ये जगतके जीव सुखी दुखी होते हैं। सब सच है, परन्तु जीवके स्वरूपको देखने वाले लोग, ब्रह्मके स्वरूपको समझने वाले लोग व्यक्तियोंको अपने मन में नहीं रख सकते हैं तो उन्हें एक चित्स्वरूप ही नजर आता है। सो मात्र जीवके पीछे लोग परेशान नहीं हो रहे हैं। अब इन पुद्गलाकी बात देखो, ये दृश्य तो हैं मगर ये जड़ बुद्धिहीन, कुछ कार्य न कर सकने वाले, कुछ ज्ञानकी बलाको न समझने वाले ऐसे तो ये जड़ पुद्गल हैं, इनसे मुझे कुछ मिलता भी नहीं है। इनसे न तो कुछ सुख है और न ज्ञान ही आता है, उनके पीछे हम क्या बरवाद होते हैं?

मानो ये ज्ञानी मनुष्य इस कमरेमें न बैठे हो। चौकी, १०, २० और टेबुल दो-चार तथा बहूतमें अजीब पदार्थ हैं, पुद्गल रखे हुए हैं। वहाँ कौन बोलेगा, कौन व्याख्यान दगा और कौन मुनेगा? अरे उन अजीबोंमें लेना देना कुछ नहीं है। वे जड़ हैं, वे अपने आपमें हैं, उनसे क्या होगा? उनमें भी बरवादी नहीं है। हाँ उनके विषयमें विक्ल्पचक्रमें पढ़नेसे बरवादी हानी रहनी है। मैं बरवाद होता रहता हूँ तो अपने आप होता रहता हूँ। दूसरोंके द्वारा मैं बरवाद नहीं होता हूँ। दूसरोंके पीछे विक्ल्पमें पढ़नेमें परेशानी होती है और अपना ज्ञान बनानेमें मुश्किल होता है। जैसे पताका अथवा झंडा वायुमें भर जाता है तो फड़फड़ाने लगता है, वायुमें उलझ जाता है तथा नियोगमें यदि हवा बंद हो जाय या अतृप्त वायु हो तो सुघर जाना है अथवा फड़फड़ाना बन्द हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान और अज्ञानका निमित्त पाकर या तो अज्ञानका निमित्त पाकर स्वयंमें उलझ जाता है और ज्ञानका सुयोगसे निमित्त बना लिया तो ज्ञान सुनभ्रम जाता है। आपको परेशान करने वाला इस दुनियामें है कौन? ये खुद वाह्य पदार्थोंको निमित्त बनाकर परेशान होता है। यह परेशान एक उर्दूका शब्द है। इसे सृष्टिके शब्दमें ले ला तो इसमें २ शब्द हैं—पर और ईशान। पर जिसका ईशान बन जाय। ईशान कहने हैं स्वामीको अथवा दूसरा मालिक बन जाय। यदि दूसरोंको



हम अपना मानिक समझ बैठे। यही परेशान शब्दका अर्थ है और इसे परेशानी कुछ नहीं है। दूसरको अपना मालिक समझ लेना, खुदको परका मालिक समझ लेना, वगैरह परेशानी की जड़ है।

धय है वह परिस्थिति, धय है वह अनुभूति जिसको केवल सहज ज्ञानरमया अनुभव आ रहा है। परमे विवक्षित न हो तो वह परिस्थिति वय है। उस ही अनुभूतिका नाम दुर्गा है। 'दु खेन गम्यते प्राप्यत या मा दुर्गा।' जो बड़ी कठिनाइयाँ पूरा होना है उसे दुर्गा कहते हैं। यह स्वानुभव बड़ी कठिनाइयोंमें प्राप्त होता है। अपने आपमें ऐसा अनुभव बन जाय कि कोई बाह्य पदार्थ उपयोगम नहीं है। केवल शुद्ध ज्ञानरसका अनुभव होता रहता है, ज्ञानदृष्टि होनी रहती है, इसलिए ज्ञानदृष्टिसे भी परिपूर्ण है। तब तो जीवा मफल है। अन्यथा क्या दुष्परिणाम है। उसका प्रमाण यह है कि जो अभी तब हम ममारमें यह डोल रहा है। यदि शुद्ध स्वरूपका अनुभव हो जाय तो यह शुद्ध आत्मतन्त्र हम शरीरके रचनमें मुक्त हो जाय। यह शरीर जड़ है, हड्डी और मांस बन है। हममें काँसा नही नजर आता है। इस शरीरमें फोडा फुसी हो जायें, अनेक परेशानियाँ आवें, इसमें कोई साँस नहीं नजर आता है। जो मुँदर चुपड़े चापड़े बैठा है उसको छेद करके त्व लो, हममें कोई साँस नहीं नजर आता है। इसमें कुछ भी नहीं है। इस शरीरको असार भीपड़ी ममभी और अपने आपको समझो कि मुझमें शुद्ध ज्ञास्वरूप चतयमय तत्त्व मौजूद है। जैसे किसी गाड़ी में गधा और ऊँट जोत दो या हाथी और गधा जोत दो तो जैसे स्थिति होगी ऐसी ही स्थिति मेरी भी बनाई जा रही है। कहाँ तो एसा शुद्ध परमात्मतत्त्व मैं हूँ और कहाँ इस असार शरीरका रचन। क्या है फिर भी अलग रहता हूँ। एका अनुभव करते हो तो जितने उत्कृष्ट भाव बनते हैं ? मैं तो पवित्र ज्ञानमात्र शुद्ध चैतन्य पदार्थ केवल ज्ञानमय, केवल ज्ञानानुभव हूँ और य पुद्गल असार है अहित हैं, उनसे सम्बन्ध हो रहा है फिर भी सम्बन्ध ही नहीं। यह भीतरके अपने आपके स्वरूपको तावता रही और बाहरम असारको देखकर सबस्व मान रहा है। एको दृष्टि हो रही है। हे नाथ ! धय वह क्षण है जब सबको छोड़कर अपने आपपर शुद्ध नजर व गेग। यदि बाह्य ही फसे रहता बरबादी होगी। बाह्य ही पडकर नष्ट हो रहता है। उन जीवामें तिमर्य पीछे पड रहता व अशुद्ध, जीव पदार्थ है। व अपने आपके स्वाथके लिए अपनी चला कर रहता है। इस मायामय जगतके पीछे माहम पडकर मोही व्यथ बरबाद हो रहा है अर्थात् अपना माल बनाकर, अपनी कल्पनाएँ बालकर ही दुखी हो रहे है। तो जगतका स्वरूप जब जान लिया तो फिर क्या ही क्या है ? जो जसा है वसा जानते जायें तो स्वरूपमण होना मुगम ही है। मो अर मेरी ऐसी ही भावना हो कि अब मैं तो अपने ही स्वरूपको रचि व रके अपनेमें ही रमकर अपने लिए अपने आप विश्राम पाकर सुखी होऊँ।

मेरा मात्र म ही हू । मेरा अर्थ कोई कुछ नहीं है । किसीके पीछे दृग् होना क्या है ? हठ हा रहा ह । जगतमें कौनसे विषय ऐसे हैं जा मेरो हस आत्माको पूरा पार दैये जान करके ह्व लो । समारके लगेरे घसीटामि चिताएँ करना हठ करना यह मेरा है य उमका है यह सब क्या है पुण्यके उदमका ऊधम है । बडा सोच करते हैं कि यदि हठ नहीं व तो गसागके लोग क्या कहेंगे ? भैया, मायाकी हठमें इज्जत नहा बढती । हिमा करे मा कर अन्याय करे, द्वेष कर परिग्रही बने तो क्या जीव महान हो गया / क्या जोवकी इज्जत हो गयी ? अरे पाप किया और भर गए मरकर बोडे मकाडे हा ग ता पिग् क्या इज्जत रहे गयो ? अपने धममे न चिगना यह सबसे उडी कमायी ह । अपना नीतिम, स्वभावसे, आत्मदृष्टि से न चिगना यह सबसे बडी कमायी है । इसमें उम नोकम सुख ह आर परलोकमें भी सुख रहेगा अथवा बाह्यमें दृष्टि दो ता तुच्छ तुच्छ बातमें भी यह प्रभु फस जाता है ।

एक सुना हुआ कथानक है । एक मास्टर और एक मास्टरनी ये । दोना ही भिन्न भिन्न स्कूलोंमें पढाने जाते थे । समझ लो इतवारका दिन हो, मास्टरने मगोडी बनानेका प्रोग्राम बनाया । बहुत अच्छा सामान बाजारसे खरीदकर मास्टरने घरमें रख दिया । अब मास्टरनी मगोडी बनाने लगी । बनाते बनाते २१ मगोडियाँ बन गयी । अब मास्टर भोजन करने बठ १० मगोडियाँ मास्टरको परोस दिया और ग्यारह मगोडियाँ अपनेको रख लिया । कर्म मजाक भी हो जाती है । जरा जरासी बातमें जिद हो जाती है । मास्टरने कहा कि हम दस मगोडियाँ परोसी और अपने लिए ग्यारह रख लिया । मास्टरनी बोली, मैंने तो परिश्रम किया है इसलिए मैं ग्यारह खाऊँगी और आप दस खावोगे । दोनोना निराश हो गया कि दोनो चुप हो जावें । जो पहले बोल देगा उसे दस मिलेंगी और जो बादमें बोलेगा उसे ग्यारह मिलेंगी । अब दोनो चुप हो गए । एक दिन हो गया, २ दिन हो जाए, पूखा मर जा रह है । तीन दिन हो गए मरनेकी हो गए मगर जिह नही छोडी । स्कूलके बालकोने देखा कि मास्टर २ दिनमें स्कूल नहीं आत । वे मास्टरके घर आण । देखा दोनो मर पडे हैं । मर नहीं थे मरम हो गय ये । मत्र लोग जुड गए । सब लोगोन देखा कि दोनो एक साथ मर गए । कनो इनकी अर्थी बनाकर लिटा लें आर ो चलें । यद्यपि अभी मर नहीं थ । पर वे मरसे हो चुक थ चुप रहन की जिहमे । लागने अर्थी बना ली और दोनाको लिटा लिया । अर्थी ल गए । आग लगान हो बाने थ कि स्त्रीने देखा कि प्रब हम जाना नही बचेंगे । त भाग्य की बात ह्वो कि अथा ले जान बाल भो इक्कीस लाग थ । स्त्री भट बोली कि आप ग्यारह वा लेना हम दस खा लेंगे । लकोने समझा कि ये मरकर भूत हो गए है । ज ललागे १ स्त्रीके शब्दोको सुना ता डर गए । बाल कि अरे हम सबको य खा जावेंगे । हम इक्कीसी ही खत्म हो जावेंगे । इसलिए छोडकर सब भाग गए । दोनो ही घर गए, बोले कि

जो पहले बोला वह दस खाये और हम ग्यारह खावेंगे ।

ऐसी कोई कोई घटना अपनी जिन्दगीमें ही घटित हो जाती है । बहुतसी ऐसी बातें हो जाती हैं जिनमें कुछ ज्ञान नहीं होती है और जिद्द पूरी हो जाती है । यह अज्ञान ही तो है । मोहको ही तो बात है । ज्ञानकी शरण लो भैया, यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या ? 'यो परिणम गया तो क्या, न परिणम गया तो क्या है ?

आपने देखा होगा कि उनमें क्षमा कर देनेका माहा, दूसरीको माफ कर देनेकी बात बहुत अधिक होती है जो बड़े घरानेके लोग होते हैं । उपद्रव और ऊधम इत्यादि ज्यादा भी होते हैं तो भी वे धीरे रहते हैं । यह ज्ञानकी ही बात तो है । खराम प्रवृत्तिके लोग जो होते हैं वे छोटी छोटी बातमें अड जाया करते हैं । जैसे कहते हैं सूत न कपास बोलीसे लट्टमलट्टा । दो आदमी चले जा रहे थे । एक किसान था और एक जुलाहा । एक मदान मागम मिला । किसान बोला कि अगर यह मदान मिल जाय तो हम कपास बोवेंगे और कपासके कपडे बनवाएँ, व्यापार करेंगे, बेचेंगे । जुलाहा बोला कि अगर यह मदान मुझे मिल जाय तो मैं भैंसे चराऊंगा । किसान बोला कि अरे तो भैंस कैसे चरावेगा, मैं कपास बोऊंगा । जुलाहा बोला कि अच्छा देखो मेरी भैंसे चरती है या नहीं । रास्तेमें चले जा रहे हैं । हाथ चनाकर किसान बोला तो मैंने मदान हलसे जुता लिया, बीज बो दिया । कपास पैदा हो गया । जुलाहा, दस ककड उठा लता है और कहता है कि सो हमारी एक भस आ गयी, २ भमें आ गयी और बीस भमें आ गयी । दोनोंमें तेज लड़ाई हो गई ।

ये जगतमें प्राणी व्ययकी वानोमें ही विवाद खडा कर दते हैं । घरकी ही बात देख लो, घरमें तो गुजारा करना ही पडता है । कई बातोंके लिए लड़ाई लडनी पडती, फिर भी एक लक्ष्य होनेसे शांति हो जाती । धमसे ही काम हो तो धमके प्रसंगमें भी विवाद समाप्त हो । धमके काममें लगे और विवाद रहे यह सब तो आश्वयकी बात है ।

अरे ये सब क्या है ? अपने धर्मको छोड़कर वहाँ दृष्टि डाल रहे हो ? धम अपने आपकी आत्मामें है । अपने आपके स्वरूपमें दृष्टि हा तो धम है । धम बाह्यदृष्टिसे बाह्यमें मोह करनेमें नहीं मिलेगा । शुद्ध परिणाममें ताल्लुक रखना तो धम होगा । अगर क्रोध आदि कपासका बघन होगा तो धम नहीं होगा । अरे मैं यह चेतन पदार्थ तिन पदार्थोंके पीछे बरबाद हो गया, जिनमें कोई सार नहीं है । धम जगतमें जो जीव हैं वे देखते नहीं हैं और जो अजीव हैं वे देखते हैं, किन्तु जड हैं और जो जानने वाले हैं वे देखते नहीं और जो समझते नहीं वे देखते हैं । भाई जो रफ्तार चल रही है उसमें फक करना चाहिए । अपने को अपने आपमें भुका लो तो शांतिका माग मिलेगा अथवा शमारमें रुकना ही बात रहेगा ।

जब तक हम अपने आपमें मुडकर विमुख रहेंगे तब तक शांति नहीं आयगी। जाने को पात रखने के लिए सगंध स्वाध्याय है, आत्मचिंतन है। यदि अपने ज्ञानमें नहीं ध्यान बने तो अपने आपको शांति प्राप्त होगी और यदि अपने आपमें सही ज्ञान बनना तो अशांति ही रहेगी। आत्म-बल्याणके बाहर दृष्टि करनेमें भी अपने को दुःख ही है। प्रतः जानबलमें अपने आपको भेटकर, मैं अपने आपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप मुग्ध होऊँ। सुखी होने का उपाय शून्य नहीं है आत्मज्ञान ही सुखका उपाय है।

अब तक भी जिन जीवोंमें सम्बन्ध हुआ उस प्रसंगका याद कर लो। क्या उनमें कुछ भाग हुआ ? उनसे कोई हित है क्या ? अथवा १० वष पढ़ने, २० वष पढ़ने जो सगंध था, परिचय था उस प्रसंगमें कितना लाभ पाया था ? इस बातका भी ध्यान कर लो। जो भी सम्बन्ध हुआ उनमें यह जीव पछाना ही रहा है व पछानाया करता है। उसे लाभ कुछ नहीं मिलता है। परिस्थितियाँ सब अलग अलग हैं लेकिन तरीका एक ही सबका है। सम्बन्ध हुआ, राग गया, द्वेष किया, घटनाएँ बनायीं काय किए। जिन जिनके परिचय हुआ उनमें केश ही मिला, पछानावा ही मिला, अशांति ही मिली और वहाँ भी देखा ता जो जीव मोही है वह तो झूठ झूलकर पछानाता है। रागमें पडकर यह जीव तडपकर व्याकुल होता और परेशान होता। मगर जो ज्ञानी जीव हैं वे रागमें नहीं पडते। समयके अनुकूल ही अपनी अवस्था गुजार देते हैं, उन्हें कोई परेशानी नहीं होती और न दुःख हो सहने पडते। अज्ञानी जीव अपने आत्मतत्त्वको नहीं समझ पाता है, वह अपना जीवन यो ही गुजार देता है। अज्ञानी दूसरोंमें अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इस सम्बन्धका फल पछानावा हाता है और उसका कोई फल नहीं। जिनका सम्बन्ध शून्य जीवोंसे है वे भय ही माँगे कि हम सुखी हैं, मीठम है, परन्तु अतमें उसका फल अत्यन्त पछानावा ही रहना है। इस कारण कोई भी परादाय मेरा हितरूप नहीं है। जो मेरा हितरूप है वह मैं ही हूँ अथवा मैं अपनेमें यथाथ हूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ मनु हूँ चित्त प्रतिभागमात्र चत यस्वभावमात्र, जिसका नाम ब्रह्म जानन और देखन है ऐसा मैं हूँ। हूँ अपने आपमें हूँ। यह मैं आत्मास्वरूप हितरूप हूँ। यदि कभी तरह मैं अपनी आत्मामें देखूँ तो यह मैं हितरूप आत्मा हूँ, सो ऐसा हितरूप मैं मृत पदार्थ नहीं हूँ जो आत्माको लया जाय, पब हटैसे जो पबडा जाय। नाकम जो मूछा जाय एसा मैं मृत पदार्थ नहीं हूँ। जो हितरूप हूँ व किसीको लिखत नहीं और जो दिखत हूँ व हितरूप नहीं। फिर मैं किसके चिंतनमें, किसके विचारमें अपने आपको नष्ट कर रहा हूँ ? ये सारे विवक्षित अनर्थ हैं। ये मरे प्रयाजन को सिद्ध न करेंगे। प्रथम तो जितन विकल्प उठत हैं वे सब अनर्थ हैं। मेरे बाहरके सोचनेसे बाहरसे कुछ आता नहीं। जितने भी लाग काम करते हैं, दुकानका, दपनरका, घरका, समाजका वे सब अपने आप होते रहने हैं। आप तो केवल अपना ज्ञान

श्रीर गोग करते रहते ह । इच्छा पर लें श्रीर जानकारी कर लें हमके अलावा कोई काम नहीं करते । जो कुछ काम होने है वे अपने आप होते है । यदि मैं बगता होता तो जो मैं करूँ सो हावे । पर ५ प्रतिशत तो इच्छा माफिक होन नजर आने है और ९५ प्रतिशत नहीं होते या प्रतिकूल होने नजर आते है । यदि सोचा तो ५ प्रतिशत भी मेरी इच्छामे नहीं होते है, बगनेसे नहीं होते, वहा केवल विकल्प करना है । जो अनय है, कायकारी नहीं है । ऐसा सयोग सुयोग जिनका होगा वह होगा । मेरे करनेसे कुछ नहीं हुआ करता । मेरा करनेमे मेरा मैं ही होता ह । दुःख, मुख होते, कपाग होते अशाति होती । जो कुछ होते हैं वे मेरेमे मेरे ही किैसे होते हैं, मेरेसे बाहर कुछ नहीं होते । परपदाथ भी मेरे कुछ नहीं है और न होंगे । नितनो ही बातें ऐसी हो जाती है जिनको आप बहुत दिनोंमे मोचते आते हैं पर पूरी नहीं होती हैं । किसी कामको १० वपमे मोचते आन हैं पर काम नहीं होता है । ये तो सब पुण्य पापके उदयके निमित्तकी बातें ह । जैसा पुण्य पापका निमित्त है तमा बाह्रमे सयोग होता है ।

ये जगतके जीव अपने आप कर्मोदयवश सबत्र विचरते रहते ह । उनके जन्ममरण होते रहते हैं । जन्म होगा फिर मरण होगा । फिर जन्म होगा फिर मरण होगा । एक पचेन्द्रियका शरीर भी प्राप्त हो गया । आँखें देखनेके लिए प्राप्त हो गयी, कान सुननेके लिए प्राप्त हो गए । यह कुछ देखने लगा—यह शहर है, यह मोहल्ला है, यह फलाँ है इत्यादि । अरे यह सब मोहका आनन्द है । यहा पर पदा हो गए । यहाँ कुछ समागम हो गया । उस समागममे इतना लीन हो गए कि अपने स्वरूपको भी ग्यो बटे । यदि अपने स्वरूपकी चर्चा करे, अपने ही स्वरूपके निबट पढुचें तो वहाँ आकूलनाश्रुका नाम नहीं रहता है । अपना स्वरूप है केवदज्ञान । आत्मा सबपदार्थोंमे विलक्षण एक सत् है कि यह ज्ञान ज्ञाना ही बना रहता है । इसका और कोई काम ही नहीं है । सब अपनी अपनी धुनमे ह । सब पदाथ अपने अपने स्वरूपमे परिणामने है । जैम घडोमे चाभी भर देनेमे चला करती है । तुम चाहे जो कर रहे हो घडी अपना काम कर रही है । वह खुद अपना काम कर रती है । दूसरा कोई उसके लिए नहीं है । जब काम कर चुकती न्खा अर २ वज गए १ वज गया अरे ३ घटा हो गया, इत्यादि । घडी अपने ही काम व्यस्त है हम चा' कुछ भी करें । इस माट दृष्टान्तके आधारपर देखो जगतके प्राणी अपने अपने काममे व्यस्त ह, अपना अपना काम करते है । ये प्राणी यदि दूसर पदार्थोंके चारभे मोचते हैं तो मानो ये पागलपन की बातें मोचते ह ।

एक आदमी सडकके पास एक कुवे की जगहपर बैठ गया । सामने से एक मोटर आयी । कुछ लोग मोटरमे उतरकर कुवेपर पानी पीने गए । पानी पीकर मोटरमे बैठकर लोग चले गए । अब वह व्यक्ति जा कुवेकी जगह पर बैठा था, मोटर चनी जाने से दुखी हो गया । हाय मेरी मोटर चली गयी । इसी तरह इस जगतके जीव इस सडकके बीच कैंसे

पडे हुए हैं ? चारा तरफसे इस लाकमे जीव घ्रा रह हैं, कोई कहीसे, कोई कहीसे घ्रा रहा है । यह पाणन प्राणी मान लेता है कि यह मेरा है, यह उभवा है इत्यादि । तो ऐसा सोचनेसे क्या उसका हो गया ? अरे जो घ्राए है वे मिट जावेंगे । उनका अस्तित्व भिन्न भिन्न है, पर इस मोही जीवने मान लिया कि ये मरे ह । सो वे अपने परिणाममे घ्राये हैं और अपने परिणामसे ही जायेंगे । जब जानेका टाइम होगा सब चने जावेंगे और यह व्यथ गोजवर दुखी बनेगा । पर यह मोही प्राणी जाके ही पीछे पागल हो रहा है, दुखी हो रहा है । यह मेरा घ्रा और चना गया । इस तरहमे व्यचने विकल्पमे ही मोही दुखी होते हैं । जरा अंतरदृष्टि तो दो । हमारा इस जगतमे है क्या ? अर यह म तो केवल ज्ञानमान हू मयसे निराना हू मयसे जुटा हू । ऐसी दृष्टि यदि बने तो आत्मज्ञान म पा सकता हू, नहीं तो आत्माना ना पा सकता मुश्किल है । इस आत्माकी स्वतन्त्रताकी दृष्टिसे देखो कि मैं आत्मा पानमय हू, यह आत्मा ही मेरा घन है । यही मेरा निजी घर है । यह घ्रा मा ही मेरा निजी परिवार है । इस मेरी आत्मामे जाननरी ही व्यवस्था है । जाननके प्रतिरिक्त मेरा कही कुछ नहीं है । ऐसा मान जानान्तरूप अपने को निरन्त्रे तो वहाँ न तो भोगना पता रहता है और न जगन का पता रहता है । किन्तु ज्ञानमात्रका अनुभव करना व भोगना रहता है, यही गिद्ध योगियों की स्थिति रहती है । जिनके विवेक है, पान है, ममभङ्गारी है तो वे ससारके दुखोमे दूर रहते हैं और जिन्के भ्रम है, अज्ञानता है व इस ममाग्म ही पडे रहते हैं, दुःख उठाय करतें हैं, उनको उन्नति नहीं हो सकती है । हे आत्मन् ! इन बाह्यमे कौनसा सार है, कौन कारण है, उनमे पडनसे मुक्त क्या लाभ मिलता है ? अरे इन बाह्यमे कुछ नहीं मिलेगा । यदि अपने मे ऐसा पान बनाओ, एमी हिम्मत बनाओ जिगम तुम स्वयं स्वयमे स्थिर हो सको तो मुक्ति का माग मिल जायगा, नहीं तो मुक्तिका मार्ग न मिलेगा । हे प्रभो ! मुक्त मुक्ति मिले या न मिले किन्तु इतना उल होव कि रागम पडकर अरा न उन्नू द्वेषकी ज्वालामे न जलू । राग द्वेष करना ठीक नहीं । वचन इतनी बात हो जाय तो मुक्तिका माग तो मिलेगा ही, रागद्वेषमे पन्नेस कुछ लाभ न हो सकेगा । राग जिनम करत हा उनको मामने लेतर प्राइवेट बात कर लो । उनक पीछे पडकर कयो रात दिन चिंतन किया करत हा ?

इतना ही ध्यान रखो कि व क्या मेर किसी हितम काम घ्रा सकते हैं ? मेरे कल्याण मे वस साधन हो सकते हैं ? जब तब हम जानत है कि उनम हमारा कल्याण होता है तब तब हम भून हुए है । अर उनसे हमारा भला नहीं होगा । उनके सम्पक्मे तो हम जहाके सहा ही हैं अर वहाँस भी कुछ नीन हैं । कौनम पदाथ द्दितरूप है—निएम करो और निएम घ्रा जाय ता परपदाथोमे अपना भाग कर लो । कोई मेरा हितरूप नहीं, इसलिए किमकी चिन्ता करने, जिसका विचार करके अपने आपकी बर्बाद करें ? सब ओरसे हटकर केवल ज्ञान

मान, प्रतिभासगाय में—ऐसा दृढ मत्यका आग्रह उसके में अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं मुग्धा होऊँ। मुग्धी जानना दूसरा उपाय अर्थ नहीं है। मैं ही मान जाऊँ कि मैं मय कुच्छ हूँ, परिपूर्ण हूँ, अधूरापन मरम नहीं है। मेरा बाह्यम करनेका कोई काम नहीं है। मैं हूँ ज्ञानमय हूँ, तानमें ही प्रकृता रहता हूँ, इसके आगे मरा काम नहीं हूँ। शयनका मात्र मैं कि मेरा काम है। उसमें मरती है। उच होना प्राकृतिक बात है। जिसमें हूँ मान तू तो दुःख ही की कोट बात ही नहीं हूँ। हम तो भगवान्स्वरूप हैं। जैसा जानन भगवानका है तैसा ही मेरा है। मगर हम तो गदूतसी बातें बनाकर जानत हैं, जैसा हूँ वैसा नहीं जानते हैं। जो देखो उस से भी बढ़कर उन गए हैं। कोई छोटा आदमी किसी उड़ आत्मीमें स्पर्धा कर, हिम्मत बने कि मैं काम बड़ा उन जाऊँ तो उसका फल पतन है। हम भगवानम बटकर जाता चारुन है। भगवान नहीं जाता है कि यह मेरा घर है यह फना लालका घर है यह मरी चीज है, यह फलाने की चीज है। मगर हम कहत है कि यह मेरा घर है यह फनाने लालका घर है यह चीज मेरी है इत्यादि। उह भगवान ता शुद्ध है, सोवा माया नहीं जानता है, अवलमद नहीं बन रहा है। जैसे वह उस मवानको ऐसा जान रहा है जैसा कि यह परिणामता ह, रूप रम, गय स्पश बाना है पुद्गलाका मय है जसा है तैसा इसे जानता है प्रभु। यही जानन है। और यह म जो नहीं है उमें भी जाननेका विनय करता हूँ। माही यह जाता है कि यह प्रमुक लालका घर है, प्रमुककी चीज है, प्रमुक जान की चीज है। परन्तु वह प्रभु तो जो है उस ही जानता ह और जो नहीं है उस नहा जानता है। यह जगनका प्राणी जो है वह नहीं जानता है और जो नहीं ह वह जानता है।

ह आत्मन् । २४ घटेक समयम कुच्छ ही समयमें यवाय जातकागो पर लो, सम्पज्ञा कर ला । १ आत्मन् । अपनेम अतग चीजमें लपनम काई फायदा नका है। मगर स्क्च्छ उप-योगका जाय जावो ता रोग रोज नाम ही मिनता रहगा और जा माहम ही रहगा तो उस अनम मितेगा मुठ नहा। जाना पडगा अतम अकेला ही। मुग्धी बाय आया है और हाय पमार जावगा, यह कविघाती एक कल्पना ह। जत्र वच्चा पना होता ह तत्र मुट्टी गंधी ही रहती है। कविघाती गमी कल्पना ? कि जा पूजकमम पुष्य विधा है उस पुष्यका ही उह मुट्टीम लिए हुए है। ज मन समय उस पच्चा पाम मत्र पुष्य हावा ह परन्तु उका उका भायु बढ़ती ह, विषय कपायके भाव वदत ह पुष्य सुनता है तथा तथा हाय सुनता जाना है। वह मरत समय तन मत्र पुष्य ख म कर चुकेगा विषय कपायाम रत हायर। जि हाने बचपनमें जान नडा किया, जवानोम विषयामे उपेक्षा नहीं की और चाह जो कुछ भी जीवनम घमक्रिया की हो, व्यवहार विना उह कुछ नहा रहता है, कवल विषयकपायकी आहुतताए ही रहती है। १ मत समय वच्चा कहीं कहीं बालता ह। कविघाती कल्पना ह कि वच्चा मायका है

कि 'मैं वहाँ था और वहाँ आ गया ? कैसा सुखसे था और अब वहाँ दुःखोमें आ गया ?' बचपानमें माँ बापने खूब लाट-प्यार किया, खूब मौज किया। विशाह हो गया, स्त्री प्रसंग किया और एक क्षणको भी अपने आत्मस्वरूपपर ध्यान न दिया तब, जत्र वृद्धावस्था आयी, दुःखोंसे घिरे तब पछतावा बन्ते ह। विषयकपायोकी भावनाएँ रखनेका ही कुफल इस वृद्धावस्थामें मिलता रहता है।

अगर बचपनसे ही अपने आपके स्वरूपके अध्ययनपर ध्यान लगता, धमके काम करता तो ऐसी परेशानी वृद्धावस्थामें नहीं आती। य जगनके प्राणी जन्मते समयसे ही विषय कपायामें मोहमें रहे, आरम्भ परिग्रहमें रहे और धमके कार्योंमें न लगे। निजके स्वरूपको न देख सके तो तब अन्तिम अवस्थामें बरबाद होते हैं, दुखी होते रहते हैं। मरनेके समय उनकी वैसी गति हो जाती है जैसी कि मति रहती है। वे जन्ममरणके चक्रमें ही पड़े रहते हैं, ८४ लाख योनियोंमें ही वे पड़े रहते हैं। अनेक प्रकारके शरीरोंमें जन्म ले करके जो इस मधुध्य शरीरके जन्ममें आते हैं और अपनी जिम्मेदारी नहीं रखते हैं, अपनी जिम्मेदारी न रखनेसे ही वे खराब होते रहते हैं और अपने भविष्यको खराब किया करते ह। जिन्होंने अपनेको उत्तम बनाकर अपने भविष्यको बनाया, अपनेको अपने आपके उपयोगमें लगाया तो उनकी सद्गति होती है और भविष्य उज्ज्वल होता है। अगर अपने भविष्यको खराब किया, आत्मतत्त्वको न समझ पाया तो उनका पतन होता है। हम अपनी जिम्मेदारी अनुभवमें लेनी चाहिए और वह जिम्मेदारी यह है कि भाई हजार पाचसौ कम आते हैं तो कम आने दो। नष्ट होते हैं तो नष्ट होने दो, उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा सम्बन्ध तो मेरे परिणाममें है। यदि मेरा परिणाम मेरे स्वभावके अनुकूल है तो उत्तम है और यदि प्रतिकूल है तो दुःख होंगे। भाई अपने पर्यायके गवमें आकर अपनेको महान् समझना और दूसरोंको तुच्छ समझना, इससे तो कोई लाभ नहीं है। यदि ऐमें ही विचार बन रहें तो अपने सही स्वरूपका पता नहीं हो पायगा और यदि यथाथ विचार बनेंग तो कोई उपद्रव नहीं होगा और न दुःख ही होंगे।

सब जानी है, ऐसी दृष्टि रहे और जिम दृष्टिक प्रतापसे बड़ा न्यायपूर्ण व्यवहार बनता है वह व्यवहार भी रह। अगर ऐसा सत्य व्यवहार रह तो लाभमें रह और अगर न रह तो मोहका स्वप्न है। जो चाही विवल्प कर जो, मगर फल खराब ही रहगा, कोई हित नहीं रहेगा। यह उपयोग मिहामन ऐसा स्वच्छ स्वभावका है कि जिमपर ज्ञानमय प्रभु विराजमान रहते ही हैं, चाहे प्रभुका ज्ञान ही, चाहे अज्ञोविज्ञ ज्ञान ही, ऐसे आसनपर मोही जीव मोही जीवोंको बँठाकर, जगत्तमें चलने वाले अज्ञानी जीवोंको बँठाकर गदा कर रहा है ना। मैं अपने आपको गदा न करू तो स्वच्छ ही बना रहू। अपने आपको शुद्ध एवं स्वच्छ बनाओ। यही तरा सबस्व ह और यही तरा मिहासन है।



अपने आपको यह समझो कि मैं सामे विराता, ज्ञानान दधन, भावात्मक, चैतन्यस्वरूप पदार्थ है। इस प्रकारकी दृष्टि आने निज प्रभुपर रहे तो यही यथाथ ज्ञान है। राग, द्वेष विकार इत्यादि की तरंगों तेरमे न हो। ऐसा यह तेरा प्रभु ही याने तेरा स्वरूप ही उन्मृष्ट है। ऐसा यदि उपयोग अपन प्रभु प्रतीत रागाए रह तो हमारा उपयोग स्वच्छ होता है। अगर मारे उपयोग पाप, अज्ञान और गह इत्यादिसे मसारमे रलता ही बना रहता है। अगर हम मगारमे ही भटकरे रह तो सदा अपवित्र ही जने रहगे। इस जगतके प्राणीको अपवित्र रहना ही मुहावना लग रहा है। इसमे ही विपत्तिया हैं, दुःख हैं। यदि यह प्राणी अपने उपयोगमे परलगावको टाल द तो प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी और मुक्तिना माग मिल जायगा।

अरे अपनेको बरपाद किय जा रह है। अपने आपके अंतरङ्गमे दृष्टि नहीं लगाता है। यह एक बड़ा भारी जीवनको सफट है। अरे इनको क्या सफट मान ? १० हजार रुपयेका नुबमान हो गया, अमुन गुजर गया। इनमे तू सफट मानता है। मेरी आत्मा जाननस्वरूप है, जाननको ही लिए हुए है, स्वच्छ है। जिनका सयोग ह, होगा उनका कोई रोक्ने वाला नहा है। अपने स्वरूपको त्य, तू सबदा पूण है। ज्ञानी होगा तो वह सदैव ही आनन्दमय होगा और प्रसन्न चित्त रहगा, परंतु यदि अज्ञानी है तो निरंतर दुःख ही रहग। इस तरह अगर बाह्य पदार्थोंम जात आता है कि यह मरा है, यह उमका है तो यह एक बड़ा भारी सफट है। इन सफटोंना करने वाला मैं ही हू। मरगे सफट इन बाह्य पदार्थोंके उपयोगमे ही आता है। जो माधु जा है यागी जन ह प्रभुके भक्त ह वे बाह्यम अपनको नही म्माते हैं। यही कारण है कि उनके पाम सफट नहीं आते हैं। जिन बाह्यको अपन उपयोगमे लाकर सफट म्हने हो, मौज मानने हो वे सफटको बढाने वात है सफटके ज्ञान वाते नहीं है। अरे सफटके बढाने वालोम इतना मोह और हटाने वागेसे दनी विमुचना। जो सफटको देते हैं उनसे दतनी प्रीति है। ये चेतन अचेतन वैभव जो मिलने है उभय माह अचकार मितना ह राग मिलता है जिसका फल वनेण ही है मा वनश महन जात और उमीम मौज मानन जात है। जम मिच खान की गदत हो जातो है। खान जान है, मा सो करत जाते ह, आग्याम आंभू गिरते जात ह दुःखी होन रहत हैं, फिर भी खाना नही ठाडत ह। य सब चाहती पदाथ ह। इनम जा बुद्धि करेगा उसे उपद्रव प्राप्त होग, दुःख हाग सफट होग। सफट सहते जाते ह और प्रीति करत जात हैं। उनमे अच्छास, स्पीमे, घरक नागास, रागने भगडे चलते रहन ह रिगा जान है, फट जाते ह और शामको फिर ला गपना लिया। इस तरहमे इन मोहियावा काम चरना रहता है। गृहस्थीम रह, और परिवारके लोगको छोडकर रह, यह तो नही हो सकता है। रहा, पर भीतरम ज्ञान माफ होना चाहिए।

मेरा मान म ही ह, मेरा मनस्व दिनकर में ही ह इसलिए अपने आपमें साफ बना रहता ह। अगर मैं अपने आपमें मजबूत ह तो किसीकी ताकत नहीं दिखी करद। एमी ताकत अपने आपमें बना देनेस दुस्र नहीं हो सकते ह। य जगत्में पशुध परमाणुमात्र ही मरती है। ऐस भिन्न अगर बना जावें तो दुस्र नहीं हो सकते हैं। महिमा तो जानकी है शी ॥ जिज्ञास है। महिमा तो एत जाग्ये ही ह। गुण गुण है ता रिजय है और नहीं ह तो मनीस है, पाप मनीस हो गे मवप मकट ही मकट ह। य मकट जोइ इमरा धाड ह लाता ह गुण अपना ही ता मकटम फेंक। अपना ही मकटोम उतारता है ता उपाय गही ना और धा मकटोम ही जाग्ये है गातदधन है धान धान ही परिणामता रहता है, इमक बाहर में कुछ नहीं ह—मेमा उपाय धने।

अगर उवा करना वीन है ? भीतर उपायवी प्रवृत्ति शान्ति उमम प्रेरित हकर देवा करते हैं, अपने भीतरमें मेमा जान ज्ये कि भं जाग्ये ह जानानदधन ह, मैं अपने परिणामतो मनिग्नि कुछ नहीं करता ह तो यज्ञ सदा गुणा रहगा।

एव आदमी था। वह अच्छे घरानेका था। किसी कारणसे उसको बद हा गयी। बदमे चक्की मिमाई जानी थी। चक्की पीसता रहता था। कभी कभी यह ग्याल धा जाता कि घर म अच्छे घरानेका ह और चक्की पीसना पटना है। वह यह नहीं साचता कि यह जेमाना है चक्की पीसना ही पडगा। यह यह मोरना कि मैं अच्छे घरानेका ह चक्की पीसना पड रहा है, दुस्रो हो जाता है और उपाय भी धा जानी है। यह मोच गाच तर दुस्र चक्की हो जात हैं। उसे यदि यह मातूम हो जाय कि य जेत गाता है। चक्की पीसना ही पडता है ता उपाय दुस्र चायाने हो जायगा और यदि रस्मीने ज्ञानत परिणाम रह तो दुस्र चीजन ता गात ह।

अगर यह परिणाम तो कि मैं जाग्ये ह मेरा भाग्यमर गा स्वस्व ह तो ऐस जान करने पर प्रमत्ता हो ग्येमी साधुताप्राप्ता नाम नहीं रहगा। जैसा मैं ह वैसा न मोचकर धापायित गाता गाता स्था स्था मा जाता ह तो उपाय म माटोरे पहाड दूट पात ह। य गुण मकट पहाड जो मायात्मक ह तरत तागतिर है। मैं अपने जानस ही यथाय शाप धी समझ और अपने मे अपने लिए गात गात स्वय गुयी हाऊं।

जोरमें जिनकी भी प्रवृत्ति है यह घर धागाता पटा है अर्थात् जितने काम लिए जात है, जितनी चेष्टाएँ की जानी हैं, जितने व्यवहार किए जात ह सदा अनानम हात ह। जानता पत्र तथा ह। यह बात, सम्झना, रिश्ता मानना, हृदय, शक्ति नाम, जितना नाम, धमता काम, व्यवहारता काम, चक्की, उठाता, गातना, चक्की, करना, गृहस्थ धमपालन, माधु धमपाता, यज्ञपत्रात्र जिनकी भी प्रवृत्ति ह सदा धागाता फल है। जानता पत्र तो प्रवृत्ति

है। जितना हट गए उतना तो ज्ञान है और जितना लग गए उतना अज्ञान है। जो कुछ हम कर रहे हैं वह अज्ञानका गध है, अज्ञानका फल है। ज्ञानका फल तो निवृत्ति है। प्रवृत्ति अज्ञानका फल है। यहाँ शक हो सकता है तो धार्मिक प्रवृत्तिमें भी क्या मूल अज्ञान हो सकता है ?

हम मित्रोंको जानते हैं तो यह ज्ञानका फल है या अज्ञानका फल है। तत्त्वदृष्टि करके देखो तो अज्ञानका फल है। तब सोचो कि हम ज्ञानका फल उत्पन्न करते हैं कि अज्ञानका। यदि मात्र जानना हो तो ज्ञानका फल है किन्तु दृष्टपनेका भाव होना तो अज्ञान है। बहुत भीतरके सूक्ष्मकी बात कह रहा हूँ। हमारी वह हिंसा न हटे तो पापका फल है कि अज्ञानका फल है ? अज्ञान का फल है। अच्छा धमके कितने काम बताए जाते हैं, कितने व्यवहार धमके करते हैं ? शासन लगाने है, पंचपरमेश्वरकी उपासना करते हैं, मालाएँ जपते हैं, यह सब लावदृष्टिमें भले ही ज्ञान है, पर है अज्ञानका फल। ज्ञान कहते किमें है ? ज्ञानका उगना क्या है ? यह हम सूक्ष्म बात बताना रह है। ज्ञान एक प्रतिभाग सही जाननहार है उसके होनेसे आत्मामें कुछ भी तरंग नहीं रहती ? यह तो है ज्ञानका फल और जान करके किसी भी काम को करना क्या चाहिए कि स्वाध्याय होना चाहिए। जानन होना चाहिए, साधु सेवा होगी चाहिए, देशसेवा, समाजसेवाके अथ फाय होने चाहियें आदि कुछ भी जिनका लगाव है वह है अज्ञानका फल और सब परभावमें जो निवृत्ति है वह ज्ञानका फल है।

एक उदाहरण लो। एक रस्सी सामने पड़ी हुयी है, कुछ उजला अधेरा है। रस्सी को देखकर यह भ्रम हो जाय कि यह साँव है। इस भ्रमके होनेका फल अज्ञान है। वह भ्रम में पड़कर घबड़ा जाता है, डर जाता है और अगर सोचे कि आँखि चलकर देखें तो कि कौनसा साँव है। यहाँ गया तो गरसे टखा। गौरम दग्य! पर यह पता चला कि यह तो कौरी रस्सी है। इतना ही जाननेसे उसने घबड़ाहट छोड़ी, कुछ चन मिली। यह चन भी मानना उसके अज्ञानका फल है। तो ज्ञानका फल क्या है ? अज्ञानका फल मिट गया, भ्रम व घबड़ाहट गई यह तो ज्ञानका फल है और जितना लगाव है उसका फल अज्ञान है। अज्ञानका छोड़ो तो अपना स्वरूप ममभमें आ जायगा। हम सत्संगमें बैठे हूँ वो रागमें बैठ है, अज्ञानमें बैठ हैं। ज्ञानसे नहीं बैठे है क्योंकि ज्ञानका फल तो ज्ञान है। ज्ञानका फल कहीं बाहर से नहीं आना है। अपने आत्मस्वरूपमें ही आता है। भगवानकी पूजा करके, साधुजनो की सेवा करके तो यह सब राग है, अज्ञानका फल है। रागना होना यह अज्ञानका फल है अज्ञानसे राग पैदा है। ज्ञान कितने भीतरकी ममकी चीज है ? हम इस ज्ञानको जानते हैं या नहीं इसकी परख कर ला। केवल बाहरी दैहिक प्रवृत्तिको ही धम जान कर सतुष्ट हो जाते हैं लोग या इतना ज्ञान हो चुकनेके बाद सतीप कर लेते हैं, अगर ज्ञान तो और इससे बढ़

कर अ तरमे रहता ह । जानमे केवन जानान दया वर्णन रहता है । ज्ञानदृष्टिका फन विवृति होना चाहिये, यह शुद्ध केवलपान की चर्चा है । यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो भवान्ना यह स्वरूप है विदिन हो जायगा । यदि एभा जान आ गया तो उसके तागण हमपर क्या गुजरगा ? केवनान । जानना मात्र ही जानका फन ह । जानका उपामन प्रभुके इस स्वरूप मे भुगेगा । यदि बाह्य भक्तिमे लगगा, पूजनम रगगा, नाचन लगगा तो यह ज्ञानका फन है विगगा ? अर यह तागना फन है । आज दबो दुनियाम रामे ताग रिनना नाच रह है । जान बही मिन नहीं पाना है । सब दबो, परपदाओंम अनानान पन्कर नाच रह ह ।

इमरा यह जास्वरूप हम और आपव भीतर ता है उमरा यह गोही जोन गही दषता है । परपदाओंम ही पन्कर मुसीतों मह रहा है । यह भी अनानका फन ह । इसी तरह उन मरकी प्रवृत्तिम व्यवहारम भी अनानता ही ह । जैसे गति इन्द्रिय रपाय, योग विषय इत्यादि को उपक्षित करके मात्र जान किया जाय ता वह प्रकाशमय है । एमा यदि गही है तो कम सचित हो जाते है । उस ज्ञानके होमे ही ये कम भस्मीभूत हो जात है । तब तो बनलाआ, कोई पुरुष साधु हाकर भी, मुनि हाकर भी यह ग्याल परना रह कि मैं मुनि ह मैं मातु ह मैं एमा ह, मैं वंसा ह, यह तो मिथ्यात्व होगा ना । कोई गृहस्थ यह विचार कर कि मैं गृहस्थ ह, मैं माल बन्धो वाला ह, मैं दूकानदार ह इत्यादि य सब मिथ्यात्व है, अनानता है । ना उम मातुने भी अपने आप यह मोच लिया कि म साधु ह । जैसे कि गृहस्थ ने अपने आपमे यह सोच लिया कि मैं गृहस्थ ह । पयायकी पक्क दानोमे है मो दोना आशय परममयके है । पर व न तो माधु हैं और न गृहस्थी ह । व तो जानान दघन, चतयस्वरूप एक पदाय ह । ये मर अपने आपमे है । अपने आप ही परिणामत रहने हैं । यह वंस मान लिया कि मैं आफीम ह, मैं दूकानदार ह म फना ह । अरे ये सब त् कुत्र नहीं ह । तू तो जानानदघन, चतयस्वरूप एक पदाय है । प्रतीतिकी जान चन रहो है । विश्वासकी बात योन रहा ह कि तुमरो यह विश्वास ह कि मैं गृहस्थ ह । मम तो मोह होगा । गृहस्थका यह विश्वास कि मैं गृहस्थ ह साधुका यह विश्वास कि मैं मातु ह ना मोहम दोना दब गण । अरे म तो एक चैन पदाय ह । अगर गृहस्थ मातु वा गया तो यह आफन है । अर अज्ञान और मोहन कुत्र पायता नहा हो सकेगा । ना कुठ कह रह है वे सब उल्टी ज्ञाने मालूम होगी, मगर य सब विश्वासकी बातें ह । मर जानम बहुनमी कनाएँ लीगोने मोच ती है—कोई मीनकी कना, उयकी कना, ब्रोतनकी कना, भापण रनेकी कना इत्यादि माव चेत ह । एमा कलावागेना जानन वात अपने मनमे मनोप खत ह कि मैं बहुत बुद्धिगानीका काम कर रहा ह । म नारी, समाजकी सेवा कर रहा ह । भाषण देन वात जानने है कि मैं इस गेते

से विरक्त रहा करता है, इसी तरह साधु भी शुद्ध सम्पत्तज्ञानके अनुकूल व्यवहार करते हुए भी व्यवहारग विरक्त रहा करता है।

एक ज्ञानी गृहस्थ अपने कुटुम्ब, परिवारमें रहते हुए भी अपनेको भिन्न समझता है, 'यारा समझता है। अहितरूप है, ऐसा जानकर परिवारसे विरक्त है। तब साधु भी अपने शुद्ध काम करते हुए साधु रहत हुए भी उस प्रसंगसे विरक्त है। शुद्ध ज्ञानके काम की यह बात धन गयी और लम्बी बिच गयी। प्रयोजन यह है कि जितना हटे उतना धम है और जितना लगे उतना अधम है। ज्ञानका काम मात्र निवृत्ति है। इतना ही ध्यानमें लाना है। तो यह निवृत्ति ज्ञानका साम्राज्य है। यदि मैं अपने साम्राज्यकी ओर अर्थात् निवृत्ति का उपयोग कर मैं प्रवृत्तिस हट जाऊँ तो मैं सुखी हूँ।

देखो जितने नी मुख मिलते हैं वे हटनेसे मिलते ह, लगनेसे नहीं मिलते हैं। गृहस्थी में रहते हुए भी उससे हटकर रहनेमें जो आनन्द मिलता है वह आनन्द उसमें लगनेसे नहीं मिलता है। गृहस्थीमें लगनेसे रचमात्र भी आनन्द नहीं मिलेगा। आनन्द इच्छाके अभावमें मिलता। इच्छाकी पूर्ति व इच्छाका अभाव वही बान एक ही है। हटना ज्ञानका काम है और लगना अज्ञानका काम है। आनन्द भी जितना होता है वह हटनेसे होता है, लगनेमें नहीं होता है। जैसे एक मित्रता पत्र आए कि १० बजे हम गाड़ीसे आ रहे हैं। बस पत्र पात ही मा तयारीमें लग गए। वह इस्तिग कि मेरा मित्र आ रहा है, मैं अपने मित्रमें मिर्नूना। वह मिलनेके कारण ही जल्दी जल्दी काम करता है। रमोई जल्दी जल्दी बनवा नी और भी जितने काम है जल्दी जल्दी कर लिये। तैपो य मय व्याकुलतायें क्या की जा रही है, इमत्रिये कि मित्र मिलनेके काममें अपना लगाव रखता। १० बजे स्टेशन पहुँचे, पूछता है कि गाड़ी लेट तो नहीं है। यदि कोई कह द कि अभी १० मिनट लेट है तो दुखी हो गए। गाड़ी माने ही भट इस डिब्बेमें देखा उम डिब्बेमें दखा। मित्र मिल जाता है तो वह आनन्दमय हा जाता है। अच्छा अब यह बनाओ कि उसे आनन्द मित्रके मिलनेसे आया है कि मित्रके मिलनेका काम हट गया इनसे आया है, इसका उत्तर दो। अरे उमें मित्र के मित्रनभ आनन्द नहीं। उसने मिलनेका विकरन हट गया उमका आनन्द। क्योंकि अगर मित्रसे मित्रनेका आनन्द है तो मित्रन डिब्बेके अदरमिलता ही रह। इधर-उधर डिब्बेमें बाहर न निक। गाड़ी चलन वाली है ता वह बाहरका भावना है। अरे बाहर क्या भावे ? यदि मित्रता है तो मिलना ही रह। मित्रसे मिलनेका काम समाप्त हो गया, इससे तो आनन्द आया, किंतु अत्र उमें घर जायेका लगाव हो गया तो दुखी हो गया, उम लगावमें दुःख होगा। उसका जितना भी दुःख है लगावका है।

मित्रम मिलनकी इच्छा हा गयी। इच्छासे ही दुःख मिना है। इस दुःखसे दूर होनेके

लिये ही वह मिश्रमे मिलने जाना है, क्योंकि उसको विकल्प सता रहा था। अरे यह विकल्प स्वय ही पहिलेसे न रहे तो क्या भानन्द न आये ? भानन्द अवश्य आयेगा। यदि ऐसी भावना हो कि भाई विकल्प न करो, यहाँ क्या खया है ? उनसे इच्छा न करो। इस तरह मिलनकी इच्छा ही न हो तो वहाँ भी भानानुलना है। जो इच्छाएँ हो उन्हें समाप्त कर दो, इन्द्रियोंके विषयोंमें बरबादी है। यह एक अन्तरके मगको देखकर कह रहा हू। अरे विषयोंमें अग्र लग गए तो मगको विषयोंमें ही जल गए और मिट गए तो इच्छाओंका अभाव कैसे हो जायगा ? विषयवृद्धि के होनेसे इच्छाओंका अभाव नहीं हो सकता है। विषय प्रवृत्ति अग्रम है। अग्र विषय प्रवृत्ति नहीं हटेगी तो लगाव भी नहीं हटगा और आनन्द भी नहीं आयेगा। अपने ज्ञानको अग्रके लगावमें लगाना ही भानानका फल है। निवृत्तिका तो फल ज्ञानका है और प्रवृत्ति फल अज्ञानका है।

अपने आपके भीतरमें निवृत्ति स्वरूप शब्द निरपेक्ष बचलान जिसका काम है, ऐसा जानमय मेरा स्वरूप है। मेरा काम क्या है ? दग्ना नहीं बोलना चालना नहीं, हाथ जोडना नहीं और और करने अपनी बातोंमें तपेट लना नहीं। जितने काम लगावके हैं, अग्रकारके हैं वे सब अज्ञानमें होने हैं। ज्ञानमें केवल एक प्रवृत्तिका अभाव होना है, नशिय, कुछ नहीं करता है, कुछ नहीं सोचना है, कुछ नहीं घोरता है या कुछ काम नहीं करता है। ऐसी जो निवृत्ति है, जिनमें काम तो बराबर स्वभावविकारका लगा रहता है। जानन, जानन, जानन, केवल जानन जानना काम है। एसा साम्राज्य हो और स्वयकी पहिचान हो तो उसे मोक्षका मग प्राप्त होगा, नहीं तो नहीं प्राप्त हो सकेगा।

मैं आत्मा जो हू वह हू, जमा स्वरूप है उम ही स्वरूपमें हू। मैं अग्र मव पदार्थोंसे विनशय, जानने, देखनेकी स्वभावका नाम तमय हू। यह एक भावात्मक पदार्थ है, जिसमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पश नहीं। केवल चितानन्दधन, चैतन्यस्वरूपमात्र एक ऐसा विनक्षण मन् हू। इस ही को ब्रह्म कहते हैं क्योंकि ब्रह्म नाम उसका है जो जानसे बढ़ना हुआ रह वही ब्रह्म है। अपने जानकी बढ़ाने की कला इस आत्मामें है। पुद्गल तो रूप है, पुद्गल बाह्य है। पुद्गलके गुणका ऊँचमें ऊँचा विकार हो तो क्या होगा, रूपका क्या होगा ? परन्तु आत्माके जानगुणका विकार ऊँचा क्या होता वह कहा जा सकता है। आत्माके जानका विकार हो तो सभी बुद्ध ज्ञानमें आयेगा। इसका स्वभाव बढ़नेका है। जैसे कोई स्त्रिय होनी है उमे दयाएँ तो दबी रह जायगी और छोड़ दें तो स्वत उठी रहेगी। इसी प्रकार यदि जानकी विषय वषाय परिणामोंके द्वारा दयाएँ तो दब जायगी और यदि दयाएँ नहीं तो ज्ञान फलना ही जायगा। ज्ञानके फलनेका तो स्वभाव ही है। ये विषय वषायोंके परिणाम, रागद्वेषादिभ भाव ज्ञानको दयाके कारण हैं। जब तक ये विकार रहते तब तक ज्ञान दबना

ही रहता है। बिरोधीपन हूटे, आत्मतत्त्वका विकार मिटे तो यह विकसित हो जाना है। क्योंकि आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ज्ञानसे वह वर्धनशील रहे, बढ़ता हुए ही रहे। इसलिए आत्माका नाम ब्रह्म है। इस ज्ञानस्वरूप आत्माको कहा जा रहा है। यह आत्मा विष्णु कहलाता है, क्योंकि विष्णु उसे कहते हैं जो व्यापक है। जिसका स्वभाव ही ऐसा है कि सर्वत्र व्यापक ही होता रहे वही विष्णु है। ज्ञान वह कहलाता है जिसमें चीजवा कोई हिंसा न छूटे। जैसे किसी टकीमें पानी भर दिया जाय तो पानी लवालब भरा हुआ है। उस पानीमें ऐसा नहीं है कि कहीं एक ड्रॉप पानी न रहे। जो पानी भरा हुआ है वह पानी पूणरूपसे भरा हुआ रहता है। उसका कोई भी स्थान खाली नहीं रह सकता है। इसी तरह इस ज्ञानका फलवा है कि यह ज्ञान सर्वत्र फल जाता है। किसी जगह खाली नहीं रह सकता है कि लो में मनुष्य कोई नहीं जानता। जैसे टकीके बीच कोई चीज उठो हुई या जाय या कोई चीज पानीमें ऐसी पड़ जाय जिसमें कुछ टीका मा हो तो वहाँ पानी नहीं पहुँच सकेगा। पर पानी अपने स्वभावके कारण न पहुँच सका ऐसी बात नहीं है कि वहाँ कोई चीज ऐसी या गयी है जिससे रूपावट आ जाती है। इसी प्रकारसे ज्ञानमें विषयव्यापकी आठ आ जाती है जिससे ज्ञानके विकसित होनेमें रूपावट पदा हो जाती है।

यदि वही ज्ञान न पहुँचा तो वहाँ पर ज्ञानके स्वभावके कारण नहीं पहुँच सका ऐसी बात नहीं है। ज्ञानके विकसित होने में जो रागादि भाव रूपावट पैदा करते हैं उसीसे ज्ञान वहाँ नहीं पहुँच पाता है। ज्ञानका स्वभाव सर्वत्र फैल जाने का है, सब जगह व्याप जानेका है। ऐसे ज्ञानका स्वभाव व्याप्त होना ही है इसलिए ज्ञान ही विष्णु है। यह ज्ञान ही जिन है अथवा जिनेन्द्र है। जिन कहते उमे है जो समस्त बाल्य पदार्थोंको जीव ले, स्वतन्त्र कर दे और स्वयं शुद्ध स्वच्छ बना रहे। उसे ही जिन कहते हैं। जिन ज्ञान ही है, सो यह भावात्मक तत्त्व है कि ज्ञान ज्ञान ही है, जानन जानन ही है, जानन ही काम है, यह मेरा ज्ञान स्वच्छ है, इसमें दूसरेका प्रवेश नहीं है। यह अपने ऐसे ही स्वच्छ ज्ञानकी बात कर रहा है। ज्ञान का काम मु दूर शुद्ध प्रतिभासको बार-बार पदा करते चला जाना है। कब तक? अतः तत्काल तक। इसलिए हम ज्ञानकी शुद्ध, स्वच्छ, सुन्दर एक सृष्टि करता रहे वह ज्ञान है। जो ज्ञान अपनी सृष्टि करता हो, चाह वह भिगड जाय, रूठ जाय गुरमा हो जाय, मलिन हो जाय, आपेसे बाहर हो जाय तो भी यह पूण ही रहता है, पूण ही परिणमता है। यह जगत जितना दिखता है उस रूपमें ज्ञान ही जाय यह भी ज्ञानमय आत्मदवकी सृष्टि है। ऐसा यह ज्ञान तत्त्व भीतरका है। यह ज्ञानतत्त्व मलिन ही जाय, काटने न रहे, सगत न रहे तो बिगडा हुआ प्रभु ऐसी सृष्टियों को कर जाने, ऐसी ज्ञानकी महिमा है। यही ज्ञान पदाथ, जीव तथा बुद्धके रूपमें आ जाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव जन्तु जितने भी हैं उन सबके रूपमें यह

ज्ञान आता है। यह ज्ञान ही ब्रह्म है। इसका ऐश्वर्य स्वतन्त्र है। शुद्ध सृष्टि करे, अशुद्ध सृष्टि करे सब ज्ञान की महिमा है। उसके ऐश्वर्यका पना लगा लेना बिरने ही सूक्ष्महृष्टि ज्ञानी योग्यता काम है। वैसे है यह ? कुछ नहीं है और सब कुछ है। ज्ञान तत्त्व है। जिसके अन्तरणमें कुछ नहीं है और सब कुछ है, कुछ वचा नहा है और है कुछ पिण्ड एसा नहीं है। ऐसा जाननहार यह आत्मतत्त्व विलक्षण ऐश्वर्य वाला है। इसका काम जानन है सो अपनी ही बलामे, अपनी ही लीलासे अपना काम कर रहा है। इसका काम केवल जानन है, जान लेना। इस जाननेमें सुख दुःख नहीं, जाननका काम केवल जानना ही है। जान लो फिर उमवे बाद महान् आनन्द आना रहता है। जमे प्रयोजन अशुद्ध है तो वहाँ सबट है और जहा प्रयोजन अशुद्ध नहीं वहाँ सबटोको तो जान लिया। विसलिए जान लिया ? जाननके लिए जान लिया। मिला हुआ दूध और पानी एक क्षेत्रमें है पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधके वण दूधमें हैं और पानीके वण पानीमें हैं। दूधमें पानी मिला होने पर भी दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। यह सारा विश्व ज्ञानमें आवे फिर भी विश्व व ज्ञान अलग अलग है। और हम और आप लोगोको तो इतनी चीजें जाननेमें आ ही रही है इनमें ही देख लो हम अलग हैं और य सब अलग हैं। देखनेमें यह सारा लोक, मारा जगत आ रहा है फिर भी जो यह है वह म नहीं हू। जाननमें जानन है, पदार्थमें जानना नहीं। जानन की ओर ही जान है और जाननमें ही जानना बा रहता है। बिही बाह्य पदार्थमें जानन नहीं रहता है।

जाननेमें ही जानन बना रहता है। ऐसी विचित्रताआ और ऐसे ऐश्वर्यका पता योगी और ज्ञानी पुरुषोको ही हुआ करता है। वितरण ऐश्वर्यको जानकर ही उन योगियो और ज्ञानियोका मन प्रसन्नचित्त रहता है। जगलम योगी जा एकात्ममें रहते हैं। गृहस्थो को ऐसा आगता है कि जगलमें रहने वाले लोग कैसे रहते ह ? उनको कोई पूछने वाला भी नहीं है, उनके पास कोई नौकर नहीं है, कोई साधन नहीं है, खाने पीनेका कैसे इनका काम चलना होगा, परंतु उनका काम अद्भुत रूपसे चलना रहता है। वे अपने ज्ञानरस का स्वाद लेकर ही आनन्दमग्न हो जाया करते हैं। यही उका ऐश्वर्य है। वे अपने ज्ञानअमृतमें ही छके हुए रहते हैं, इसलिए वे सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। अत इम ज्ञानका नाम ही ईश्वर है। आनन्दमय, कल्याणमय, सर्वोत्कृष्ट सारकी चीज दुनियाक अन्दर क्या है ? मोही जीव अपने सारमें अलग होकर बाहर को निरखा करते ह। सारभूत चीज क्या है ? मकान हो गया, बालबच्चे हो गए, मित्र लाग हो गए, लाफक और जन ही सारभूत हो गए। ऐसी कल्पनामें इस तरहसे वे माही बाहर ही घूमा करत है। सारको टूटनेके लिए और जगह-जगह मारे मार फिरा करते हैं। योगियोको अपने ज्ञानका पता है, जानी गृहस्थियोको भी अपने



ज्ञानका पता होता है। उन ज्ञानियोंको पता है कि दुनियामें सारकी चीज कोई भिन्नती नहीं है। सार वह खुद ही है। इसका जो सहजस्वरूप है, अपना अस्तित्व है, वह ज्ञानमय है, प्रकाशमय है, बल्ल्याणमय है। सारको, कर्त्याणको, उत्कृष्टको शिव कहा करते हैं। यह ज्ञान तत्त्व ही शिव है।

राम किसे कहते हैं ? राम उसे कहते हैं, जिसमें योगी पुरुष रमण किया करते हैं। जिसमें योगी जन, ज्ञानी जन, रमण किया करते हैं उसे राम कहने हैं। वह राम मेरा कौन है मैं जिम्में रमण किया करता हूँ ? वह मेरा राम है। मैं अनादिसे अनन्तकाल तक सदा अपने आपमें रमण किया करता हूँ। यह तो लोगोंको भ्रम है कि मैं घग्में रमता हूँ, इन्द्रिय विषयोंमें रमता हूँ दुनियाकी कार्योंमें रमता हूँ। अरु कोई किसी बाहरी चीजोंमें नहीं रमता है। यह खुद ज्ञानमय है, अरिभ्रमय है। स्वयं ही स्वयंके स्वरूपमें रमा करता हूँ, खुदमें ही रमा करता हूँ। कोई अपनी दुःखानमें ही रमा करता है, कोई विकल्पोंमें रमा करता है तो कोई जानकार विद्वान् विकल्प करता है, कल्पनाएँ करता है वह उनमें रमता है और ज्ञानी योगी साधु पुरुष अपने ज्ञानस्वरूप में रमते हैं और प्रसन्न हात है। मैं अपने नाममें रमा करता हूँ। तात्पर्य यह है कि सभी जीव अपने अपने ज्ञानमें रमा करते हैं। विशेषता यह है कि कोई वैसे रमा करता है, कोई वैसे मगर सभी अपने अपने रमते हैं। बाह्यपदार्थोंमें कोई रम नहीं सकता है, कोई बाह्यमें लग नहीं सकता है, परन्तु कोई मान ले कि मैं बाह्यमें रमता हूँ तो वह परेशान हो जायगा। पर न कोई बाह्यमें रम सकता है और न बाह्यमें लग सकता है। तो मैं रमता हूँ और अपनेमें ही रमता हूँ। तो ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही राम है, ज्ञानतत्त्वकी आत्माराम है। यह प्राणी अपनी शरण बाह्यमें ढूँढता है, बाह्यमें ही हित और अहित ढूँढनेका प्रयास कर रहा है, परन्तु बाहर वही शरण नहीं है। यह प्राणी इधर उधर भटकता है परन्तु यह शरीर देवता इसकी रक्षा नहीं करता है। यह ज्ञानस्वरूप ही हमारा सच्चा देव है, रक्षक है, अपने आपके लिए स्वयं सबस्व है। जिस प्रकार हम सबस्व हैं उसही प्रकार की बातें करें तब तो ठीक है। परन्तु ह आत्मन् ! यह प्राणी शुद्ध प्रगति नहीं करता है। यह तो उल्टी अटपटी बात करता है। यह जैसा शुद्ध है, स्वच्छ है, चतन्यस्वरूप है वैसे बातें नहीं करता है।

ह आत्मन् ! अपने आपपर दृष्टि दा तो अपना प्रभु अपनेको ही मिल जायगा। यह प्रभु ही तेरे पापोंको हर सकता है। पाप क्या है ? विकल्प और कल्पनाएँ ही पाप हैं। ये बाहरके जो पाप हैं। झूठ बोल दिया, जान ले लिया, परिग्रह किया, यही बाहरी बातें पाप हैं। ये पाप होते भी कैसे हैं ? यो ही कल्पनाएँ उठती हैं तब यह इन पापोंको करता है। इन पापोंके कारण ही उसे दुःख मिला करते हैं। तो इन पापोंको हरेगा कौन ? इन पापोंको मेरा प्रभु ही हरेगा, इन पापोंके उत्पन्न दुःखोंको मेरा प्रभु ही मिटायागा। जो पापोंको हर वही

हरि कहलाता है। हम अपना प्रभु कबे हूँ ? हमारी शरण, हमारा रक्षक, हमारा हित् यह प्रभु ही है।

इस एक अपने स्वरूपपर ही ध्यान हो तो सब सफलता है। मैं तो यथाय हू कृत-वृत्त्य हूँ स्वभावमात्र हूँ। यह लाकका धन कुछ महत्व नहीं रखता है। यह धन पिङ्गल है धन पुद्गल है, इन पुद्गलोम कोई सार नहीं रखता है। ऊँचे-ऊँचे महल, बड़े-बड़े घा वंभव आदि इनमें कोई महत्वकी चीज नहीं दिखती है। यह ज्ञानी जब ज्ञानदृष्टिसे देखता है कि मैं सबसे निरागा हूँ, ज्ञानमय वस्तु हूँ तो अनुभवरसका स्वाद मिलता है। अथवा जिस के बारम् जैसे विचार किये वसा ही उसको समझ लिया और वसा ही उमका वणन कर दिया। सो इसी अदशनके फलमें बौद्ध, भट्ट, नैयायिक, मीमांसक, सांख्य इत्यादि नाना प्रकार के दशन बन गए। पर जिमपर समस्याएँ खड़ी हुई है वह दशनका मूल आधार यह स्वयं ज्ञानतत्त्व है।

ऐसा यह म जानतत्त्व हूँ, मेरा काम केवल जाननही जानन है। बाह्य पदार्थोंको करनेका इस ज्ञानमात्र भावात्मक आत्मा पदाथका काम नहीं है। किन्तु अज्ञानी मानता है कि हम करने वाले हैं, मैं अमुक करने वाला हूँ, मैं दुःखान करने वाला हूँ, इत्यादि यह मिथ्यात्व है। ये विचार धर्ममें ले जाने वाले नहीं हैं। ये सब मिथ्यात्व है। तू है और परिणमता रहता है। इतना ही तेरा काम है। तू पूराका पूरा है। पाप वनों तो पूरा है चाहे न वनों तो पूरा है। तू तो परिपूर्ण है। जैसे लोग कहते हैं कि तू तो अधूरा है, तेरी आत्मा अधूरी है, अरे तेरी आत्मा अधूरी नहीं है। तू तो एक सत् है, सत् अधूरा नहीं होता है। अधूरापन तो दुनियामे होता ही नहीं है। यह ऐसी मानी हूयी चीज है कि जैसे अनेक चीजें मिली होती हैं। कुछ यहाँ हटा दिया, कुछ वहाँ हटा दिया तो लोग कहते हैं कि आधा आधा कर दिया। अरे कुछ नहीं कर दिया। जो चीज है वह पूरी की पूरी है।

य म्य-घ हूँ, य दिखते हैं, ये सब चौकी, पुस्तक, कमडल इत्यादि एक एक चीजें नहीं हैं। ये अनेक पुद्गल परमाणुओंमें मिलकर बने हैं। लकड़ी फाड़ी गई, हथोड़ेसे पीट गए पुस्तक मशीनमें टानी गई इत्यादि अनेक पुद्गल परमाणु मिलकर बने हैं। इनमें आधी आधी चीजें कुछ नहीं है, उनमें जो एक एक चीज है वे सब पूरेके पूरे हूँ इसी तरह जगतके जितने जीव है सब पूरेके पूरे हैं। अगर त्रिगड गण तो पूरेके पूरे त्रिगड गए और अगर बन गए तो पूरेके पूरे बन गए। आधा न तो त्रिगडेगा और न बनेगा। प्रत्येक जीव परिणमता है। अगर कोई परिणमता है तो अपने ही परिणमनसे परिणमता हूँ दूसरेके परिणमनसे नहीं परिणमता हूँ। अगर मैं विकल्प कर रहा हूँ तो अपना ही विकल्प कर रहा हूँ, दूसरका विकल्प मैं नहीं कर रहा हूँ। अपनी परिणतिके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कर रहा हूँ। मैं परिण-

मता हूँ, अपने आपमें ही परिणमता हूँ—ऐसा अगर ज्ञान हो तो यही अमृतका पान है। जिसने अपने स्वरूपको लक्षमें न लिया, अपने को ही कर्ता धर्ता माना तो समझो कि वह दूसरी दुनियामें चला गया, अपने स्वरूपसे हट गया। यदि वह अपनेसे हट गया तो समझो दुःखोंकी परम्परा उसके ऊपर आ गयी। क्योंकि अपने स्वरूपको भूलकर वही भी लगे सवत्र लेश ही बलेश है।

हे आत्मन् ! अपने स्वरूपसे विमुख होना विवल्बकी परम्परा बढ़ाना है। मैं इसको करता हूँ—ऐसा सोचना रागोका बढ़ाना है और यह अज्ञानका काम है। मैं इसको नहीं करता हूँ, मेरा यह करनेका काम नहीं है—ऐसा विचारना ज्ञानका काम है। इमना न तो करनेका स्वभाव है और न मना करनेका स्वभाव है। करनेमें बलेश हैं और मना करनेमें बलेश है। बलेश दोनों में ही है। ग्रहवारको देख लो उसमें ही दुःख आते हैं। ग्रहवार करना या न करना, बल्कि उसके प्रति विवल्ब करना ही दुःख है। इससे अपनेको पूरा नहीं पड़ेगा। मैं तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपको दखू जिसका काम केवल जानन है, ज्ञानमात्र है। जान लो तो भाई फायदा उठाओ। अर इतना ही फायदा है, इसके आगे किया तो नुकसान है। भगवान सारे विश्वको जान गया, पर अब फायदा तो उठाओ। सट्टेका सार तो जान गए, पर अब फायदा तो देखो। अरे जानन ही बना रहे तब तो भगवान फायदमें है। अगर जाननसे आगे आ जाय तो लटोरो सटारोकी तरह दुःख होगा। भगवान अपने स्वरूपको भूलकर अय कुछ नहीं करते। इस जो जाननके आगे कुछ फायदा सोचता है तो उसीको ससारमें रूला पड़ता है। केवल जाननमात्र का फायदा रह जाय और कमचेतना व कमफलचेतनासे जुदा रहे, एसी दृष्टिसे आनंद होता है। वह सब सहज पारमार्थिक आनन्द है। भक्ति वाले कहते हैं कि ऐसे ही क्षण में व्यतीत हो। मो है आत्मन् ! तुम बाह्यमें कुछ न करा, तुम ही और परिणमते रहते हो, इतना ही तरा काम है। इसके आगे तेरा कोई काम नहीं है। अपने आपको देखो तो तेरसे दुःख दूर हटेंगे और फिर समाधिका अनुभव करोगे। यह आत्मा आनन्द व ज्ञानविकासमें जब बढ़ता जायगा, बढ़ चुकेगा तो प्रभु हो जायगा। अपने स्वभावसे हटकर, बाह्यको कुछ निरखकर, बाह्यमें लाभ देखकर बाह्यमें जा पड़ रहे हैं तो उनका टोटा पड़ता है, नुकसान होता है। ये भोग पुण्य उदयसे प्राप्त हैं, निकट हैं, जरा मुड़े और भोग लिये ऐसे सुगम हैं, सो ये भोग बड़े सस्ते लग रहे हैं, किन्तु ये बड़े महंग पड़ेंगे। जैसे खेतोंसे कोई चला जा रहा है। खेतमें एक बैरका पड़ मिले। किसी तरहसे बर तोड़ लिया। इतना काम तो बड़ा मस्ता लगा, पर यदि उस खेतका मालिक आ जावे और उसे मारे तब कितना महंगा पड़ेगा ? इसी तरह ये माह रागादि भाव सस्ते मगने हैं पर यह नहीं जानते, है कि ये कितने महंगे पड़ते हैं ? जरा सी देरमें जो कुछ कर लो। सस्त है, मगर स्वभावदृष्टिसे हटा हुआ

रहता है ना । कर्मोंके तीक्ष्ण बंधन ह्रात रहत हैं "जिनके" उदयमे महा बनेश हो जाता ह । यह ज्ञानकी बात, समयकी बात, साधनाकी बात स्वल्प निरल्पनेकी बात इत्यादि महंगी पढ रही है । धरे जरासा दिमाग लगाना पड़ेगा कि वह सस्ता हो पड़ेगा । जब चाह अपने स्वल्पको देखा । ऐसा गानस्वरूप भेखो तो मुखी होंगे । मरी प्ररण यह मैं स्वय ही हू । जगा में हू उसी रूपमे अपने को भेख तो मरा कल्याण हो जायगा । यह आत्मा तो जिन, शिव, ईश्वर ब्रह्मा, राम विष्णु आदि रूप है । सब ज्ञान इसीके अन्दर हैं । एमा महिमा निधान, ध्यान दानिधान यह मैं स्वय हू अपने आपका समझता हू और जाननभाव लिए हुए हू । मेरेम विपदाएँ नहीं है । विपदाएँ तो मात्र भ्रममे दिक्ल्पमे हैं । हम गौर आप सभी आत्मा परिपूरण हैं, सब प्रकारसे गान और ध्यान-दमय हैं । मय बाते इस आत्माम ठीक है केवल एक गडबडी इसके आ-माके अन्दर है जिससे मारा बिगाड हा गया । वह गडबडी क्या है ? वह गडबडी यह है कि इस आत्मामें इच्छाएँ भरी हुई है । सारी बातें करत रहो हम किसो की मान नहीं करत । प्रोष आता हो करो, मान आता हो करा, लोभ आता हो करो मगर एक इच्छाओंको हो निकाल दा तो मारे सबट समाप्त हो जावेंगे । इच्छाओंके समाप्त होने पर कषाय भी हिसपर नएर करेंगे ? इच्छाएँ ही एक बंधन है जो जीवोंको बांधे हुए है । इन पुण्याओं कोन बांधे हुए है ? इनमें कन गौठ लगी हुई है ? धर ये सब व्याग-न्यार हैं, मगर अपनी अपनी इच्छाएँ बनाए है और बंधामे पडे हुए हैं । कोई किसीमे बधा हुआ नहीं पया ह इच्छाओंमे ही बांध रक्ता है ।

बीशलकुमार विरक्त हुए । लोगने बहुत समझाया । धर राजकुमार अभी तुम्हारी कुमार अवस्था ह अभी कुछ उप हुए तुम्हारी शादी हुई है तुम्हारी स्त्रीके गभ है । उपान होन वान पुत्रके लिए राजतिलक कर् जायो, फिर चाह घर द्वार छोड देना । बीशल कहत है पिठ बचानन लिए कि अन्धा जा गभमें है उमे मैं राजतिलक दिए दता हू । बीशलका बधनमे बधनेकी इच्छा नहीं थी ना उनके कोई बधा न था । उच्छाएँ है तो बधन हैं । गृहस्थी मे क्या बंधन है ? धरे नहीं, गृहस्थीमे बंधन यहाँ है, केवल इच्छाओंके कारण ही वे फसे हुए हैं । हमे ना बान बन्धारी फिर है धर द्वार कुटुम्ब परिवारकी फिर है, इसीसे हम फसे हुए हैं । हम ता म्रनत्र हैं परंतु वान उन्नाम मोह हानेम अपन मोहमे ही फम गए है । क्या उम्मीद ह कि हम इन बन्धासे निकल पायेंगे ? जो जो व्यवस्था हम साचे हुए है क्या इनको पूरा करके मिथ्याम धर लेंगे ? दरती मडका को कोई तोल मारता है ? नहा । धर व तो उछल जावेंगे । कोई धर उछलेगा, कोई उधर उछलेगा । व तोल नहीं जा सतत है । इसी तरह क्या अपना परिग्रहम रहकर अपनी व्यवस्था बना सकते हो ? कितनी ही व्यवस्था

बन जायगी तो फिर कोई नई बात खड़ी हो जायगी। क्योंकि बात बाहर खड़ी नहीं होती, अंदरमें खड़ी होती है। सा अंतर उपादान अयोग्य है ही। जब तक इच्छाएँ समाप्त नहीं होती तब तक बन्धन नहीं मिटता अर्थात् जब तक इच्छाएँ रहेंगी तब तब बंधन रहेंगे। बगीचेमें एक चिड़िया मार जाल फँसाए है। जालके नीचे थोड़ेसे चावल या गेहूँके दाने डाल दिए हैं। अब चिड़िया आती है, उस जालमें फँस जाती है। देखने वाले दो चार तोग आपसमें चर्चा करते हैं कि देखो चिड़ियामारने चिड़ियाको फँस लिया। दूसरा बोला—नहीं, चिड़ियामारने चिड़ियाको नहीं फँसा, जालने चिड़ियाको फँसा है। तीसरा बोला—नहीं नहीं, जालने चिड़ियाको नहीं फँसा है, चावल और गेहूँके दानोंने चिड़ियाको फँस लिया है। चौथा बोला—नहीं, नहीं, चिड़ियाने स्वयं दाने चुगनेकी इच्छा की, इसलिए स्वयं ही वह बंधनमें बंध गयी है। प्रभुमें और आत्मामें भेद क्या? सब लोग चित्लाते हैं कि प्रभु और आत्मा भेद नहीं है। कष्ट हैं ना कि "आत्मा मो परमात्मा" भेद कुछ नहीं है। आत्मा है हम और आप और परमात्मा है कोई निर्दोष सबज्ञ, शुद्ध, ज्ञानी आत्मा। उसमें और इसमें कोई भेद नहीं है। सारा मामला उधार है, केवल इच्छाओंको निकाल दो। यह एक इच्छाएँ जो कि उत्पन्न होती है जिनसे बाह्य पदार्थोंमें कोई मतलब नहीं है, जो जसा है वसा ही है। किसीके करनेसे कुछ होता नहीं है। मेरा सोचनेसे बाहर कुछ नहीं होता है, सब अपने अपने स्वरूपके धनी हैं, अपने-अपने सत्के स्वामी हैं, केवल य व्यथकी इच्छाएँ उत्पन्न करते हैं और दुखी होते हैं। रात दिनके कार्योंके अंदर अपने को देखत जाओ कि मेरे लिए लोग बंधन है या काम बंधन है या इच्छाएँ बंधन हैं। अगर अपने लिए तो केवल इच्छाएँ ही बंधन है। इच्छाएँ न करो तो सुखी हो। अच्छा देखो शुद्ध किस कहते हैं? शुद्ध कहते उसे है जो इच्छाओं का समय लिए है अथवा इच्छाएँ रचमात्र भां नहीं है। इच्छाओंके होने न होने पर ही सुख दुख निभर है। अथ पदार्थोंके मयोगम सुख नहीं है, दुख ही है। ममारमें दृष्टि पसारकर देखो तो सब दुखी ही नजर आ रहे हैं, सबको कष्ट है। और किसीको यहाँ कितना ही आराम मिले फिर भी कष्ट है। जितने एका दीनको कष्ट है उतने एक धनीको भी कष्ट है। यद्यपि जितनी असुविधाएँ दीनको हैं धनीको नहीं हैं, फिर भी धनीको भी उतने ही कष्ट होते हैं।

अरे सुविधाओंमें सुख नहीं होते हैं और न सम्पदाओंसे ही सुख होता है। इज्जतसे भी सुख नहीं होता। इच्छाएँ यदि न रहें तो सुख होता है। तो किसी भी परिस्थिति आ जाय, इच्छाएँ अगर कर लो तो दुख हो गया। इच्छाएँ ही एक बंधन है। इन शिशु, बालको का देखो, कैसे आजादसंस्कारिते हैं, कोई फिक्र नहीं है। क्या सुखी रहते हैं? पर भाई जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती जाती है वैसे वैसे इच्छाएँ भी बढ़ती जाती हैं और इच्छाओंके नातेसे ही

दुःख भी बढ़ते जाते हैं। तो भाई दुःखीका कारण इच्छाएँ ही हैं। पर दबा कठिन प्रश्न है कि इन इच्छाओंको कैसे दूर किया जाय ? अरे जिसका तुम्हारा प्रसंग है तथा कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे सम्बन्ध होनेकी जो इच्छाएँ हैं वह न हो तो तुम्हारा काम न बने, यह नहीं हो सकता है। इच्छाएँ न हों यह नहीं हो सकता है, इच्छाएँ तो हागी ही। पर गृहस्थीमें भी इस बारेमें दो काम तो किए जा सकते हैं। एक तो यह कि मैं आत्मा इच्छारहित हूँ ज्ञान स्वभाव वाला हूँ, मेरा स्वभाव इच्छारहित रहनेका है, मैं आत्मा पानमय हूँ आनन्दको लिए हुए हूँ मैं इच्छाएँ नहीं करता। इच्छाएँ न रखनेसे मेरा कुछ मिट नहीं जायगा कुछ नष्ट नहीं हो जायगा, मेरा तो ज्ञानस्वभाव है, जानन ही मेरा काम है, मेरा जाननहार मैं हूँ। एक तो यह काम गृहस्थीमें भी किया जा सकता है। पर इसे शांति गृहस्थ ही कर सकता है। यह केवल रहनेकी बात नहीं है सत्य बात कही जा रही है, पर ऐसा किया जानेमें कुछ अभ्यास चाहिए कुछ ज्ञानभावना चाहिए पानदृष्टि चाहिए, ससारसे मुक्तिकी भावना चाहिए आत्म कल्याणकी भीतरमें भावना होनी चाहिए। यदि ये बातें ही सकती हैं तो गृहस्थ यह काम कर सकता है कि मेरा इच्छारहित स्वभाव है, जानन ही मेरा स्वभाव है। जानन अगर मिट गया तो मैं मिट जाऊँगा। इच्छाएँ अगर हो गयी तो मैं मिट जाऊँगा। इच्छाओंके मिट जानेमें मैं मिट जाऊँगा ऐसी बात नहीं है। इच्छाओंके मिटनेसे मैं नहीं मिटता, बल्कि इच्छाओंके मिट जानेमें मुझे आनन्द है। ये इच्छाएँ मेरा स्वभाव नहीं, मैं नो पानस्वभाव हूँ भीतरमें एक ऐसा विश्वास बना लें। एक तो गृहस्थी यह कर सकता है। दूसरे यह कर सकता है कि इच्छा भांगिक यदि काम नहीं है तो इससे नष्ट हो जाऊँगा, ऐसी बात नहीं है। इच्छाएँ होती हैं और इच्छाओंके अनुसार ही काम किया जाता है फिर भी इच्छाओंके अनुसार काम नहीं होता है। यदि इच्छाओंके अनुसार काम नहीं होता है तो मैं नष्ट नहीं हो जाऊँगा। अरु मैं तो वही तत्त्वा गत हूँ। यदि ऐसा होगा तो क्या ? होगा तो क्या ? ऐसी भावना बाहरी तत्त्वोंसे उभरा धारण कर। यह दूसरी बात भी गृहस्थ कर सकता है। बाह्यकी यदि इच्छा बन गयी तो क्लेश ही क्लेश है। ये इच्छाएँ ही बंधन हैं। यदि मैं इच्छाएँ न रखूँ पाता रहा रहूँ, ज्ञानमात्र रहूँ तो मेरी हानि नहीं है। इच्छाओंमें ही हानि है। मेरा पूरा इच्छाओंसे नहीं पडेगा। इच्छापसि तो मुझे देख ही मिलेंगे। मेरा पूरा ता ज्ञानमात्र भावोंसे ही पडेगा। मैं जितना हूँ, स्वयं हूँ, इससे ही मेरी ठीक व्यवस्था चलेगी। इसलिए इच्छाओंको दूर करके ज्ञानमात्र रहकर मैं अपनेम अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हूँ।

दखो हाथी, मछली, भवरा, ये प्रत्येक जीव बचनम पज जाते हैं, जालमें बँध जाते हैं, शिकारियोंके चंगुलमें फँस जाते हैं। उनकी इच्छा नहीं होती तो वे बचनमें नहीं पडते। अभी मनुष्य भी रंग ढगमें चलत हैं दूसरोंमें मनमानी अभ्यायकी प्रवृत्ति नहीं कर पाते, एक

मनुष्य दूसरे मनुष्यके बंधनमें पड़ जाते हैं। तो एक दूसरेके बंधनोंमें पड़ना भी इच्छाओंके ही कारण है। पुत्रकी इच्छा है कि मैं ठीक रहूँ। मेरा बड़िया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने। ऐसे इच्छाओंके कारण ही वह पिताके साथमें रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बूढ़ापेमें नाम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इन इच्छाओंके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाएँ अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएँ अपनी स्त्रीके प्रति होती हैं, इस तरहसे व सब एक दूसरेके बंधनमें बन जाते हैं। नीचे अपने मातापिताके बंधन में हैं। मालिक अपने नौकरके बंधनमें हैं, बड़ा अपने छोटेके बंधनमें है और छोटा बड़ेके बंधनमें है। यह सब इच्छाके कारण ही तो होता है इसलिए इच्छाएँ ही बंधन हैं।

सीता जी अग्नि परीक्षामें मफल हो गयी तो रामचंद्र जी हाथ जोड़कर खड़े हुए। बोले—देवी क्षमा करो। आपकी बहुत कष्ट पहुँचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोड़े और भी सब लोगोंने हाथ जोड़े। भला सोचो कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट कराने वाली अग्निपरीक्षाके बाद क्या अपने मनमें इच्छाके भाव बनाय होंगे? क्या सीता जी के मोहकी प्रवृत्ति हो सकेगी? नहीं ऐसा नहीं है। इसीसे तो सीता जी के वरामय उमड़ा, सीता जी के लिए कुछ बन्धन नहीं हुआ, विरक्त हो गयी। तपस्यामें लग गयी। जब तब इच्छाएँ थी तब तब बंधन था। जब इच्छाएँ खत्म हो गयी तब उनका बंधन भी खत्म हो गया।

अब घरमें ही देखो लोगोंकी इच्छा नहीं रहती है, इसलिए जुदा हो जाते हैं, अलग हो जाते हैं, वे तलाक द वते हैं। जब इच्छाएँ नहीं हैं तब मोहके बन्धन भी हट जाते हैं। मोह बंधन खत्म हो जाता है। हमको बांधने वाले कोई पदार्थ नहीं हैं। जब हम बाह्य पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं तब अपने आपको ही-बेदियोंमें जकड़ते हैं दुखी होते हैं। बड़े बड़े रईम लोग आजकल भी अपने स्त्री, धन वैभव इत्यादिको छोड़कर अलग हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। यह क्यों, यो कि इच्छाका बंधन उनके नहीं रहा। इच्छा तक साम्राज्यासे लगाव था। इच्छावाके ममान होते ही वे बड़े बड़े साम्राज्य छोड़ देते हैं। कहते हैं ना कि पत्नी आदमी मोहप्रसंगमें अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपनेकी बंधनमें बांधनेकी इच्छा नहीं की, इसलिए अलग हो गया। बंधन तो इच्छाको कहते हैं। किसीकी अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फनानेका है इत्यादिमें विपदाएँ हैं। भीतरमें अगर जरा भी नान आ गया है कि यह मेरा है तो बस दुख उत्पन्न हो गए। देखो दूसरेसे लात घूसे मिला करते हैं, पर कहते हैं कि यह मेरा है। परकी अंगीकार करनेसे ही सुख दुख हो जाते हैं। परकी अङ्गीकार करना ही इच्छा है, मोह है। यह मोह इस जीवके ऐसा फँसा हुआ है कि उसे चैन नहीं आती है। यह जीव किमी किमी बातसे मोज मनाता है और किसी किसी बातसे दुखी होना है। जिन चीजोंमें मोज मनाता है उन चीजोंमें मोज

के माप साथ दुख ज्यादा आते हैं। रात दिनमें २४ घंटेके अंदर यह बनायो कि बहुत बढ़िया मोज आपकी कितने मिनट रहती है? रात दिनमें २-३ मिनटके लिए शायद मोज आ जाती होगी, बाकी समयमें बट ही रहने हैं। कभी कोई बच्चा आ गया, उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो एक मिनटके लिए मोज हो गयी, 'बाकी' समयम दुख ही रहते हैं। डूबानपर बटे हैं, बाई ग्राहक आ गया तो सौदा पटनेपर दो एक मिनटके लिए मोज आ गया। सौदा न पटा ग्राहक चला गया तो फिर दुखी हो गये। और ग्राहककी अपेक्षामें तो पहिलेसे भी दुखी बट ये। मोज और दुखमें अंतर देखो कि मोज तो रातों समान है और दुख पहाडके बराबर है। मोज आर द खोती फिर दख सो। दुख तो सार सारे है, मगर मोज जो दो मिनटको आता है वह भी झूठ है। मोज झूठा ही गया और दुख सचि हो गए। घर भाई कोई बात ही तो बताओ। इन सबका क्या कारण है? देखो भाई क्षणिक मोज माननेमें ही कारण इच्छाएँ ही हैं। इन्हीं इच्छाओंसे ही दुख हो जाते हैं, दुखोंमें दब जाता है। इस मोज माननेका कारण इच्छाएँ ही हैं। इन इच्छाओंमें ही दुख हो जाते हैं।

जस कोई कहे कि माहब अपनी कहानी सुनाओ। अच्छा, सुनो। ५ मिनट तक सुनाया। तो उसमें यही पावोगे कि इसकी इन विषयोंम इच्छा है, इसकी इन विषयोंमें इच्छा है। निर्णय कर लो कि इसमें अनुभवकी इच्छा है, इन सबसे दुख होने है। इन सब इच्छाओंसे ही दुख होत हैं, क्लेश होते हैं। सारी बातें ठीक हैं ना। सारी बात समझ आयी हैं ना। सारी बात समझमें क्या, सिरपर ही तो आ रही है। अब समझते यह है कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याएँ समाप्त हो जावें। हम बहुत हैं कि जिनम मोह है, जिनमें इच्छाएँ हैं उनको कभी मुख नहीं हो सकता है। इतना तो निश्चय कर ही लो। जिनके श्रौव हो, मान हा, चाह कुछ भी हा पर एक ये इच्छा न हा तो आनंद ही आनंद है। इच्छा मिटी फिर क्या पडा है? तो ये इच्छाएँ मिटें कैम? अरे इन इच्छाओंके मिटने की तरकीब तो ही। जो शास्त्र पूजे जा रह है उनमें इच्छाएँ मिटाने की तरकीब लिखी होती। इसीसे हम पन्ने पने शास्त्र आदरमें पलटते हैं, पूजते हैं, उनका मनन करते हैं और यह भगवान की मूर्ति मंदिरम विराजमान है, परमात्मा अरहत, जिनेंद्र की मूर्ति विराजमान है, उनकी उपासना उह आदेश मानकर ही तो करते है। इच्छा प्रभु के समाप्त है। सो निरोहरी पज करके हम अपनी इच्छाओंका नष्ट करें। हम गुस्वाक सतसग करते है, गुस्वाकी उपासना करते है क्याकि इच्छाओंक मिटानेकी तरकीब उनके सतसगसे मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसी बनाकर मैं प्रयत्न रहू। जिसने पास इच्छाएँ होती है और चाहसे ही मोज किया करते हैं, उन्हे क्लेश ही रहत हैं। देखो भाई जिसके पास आनंद है उसके पास हम नहीं आते है और जिसके पास जानेसे अपनेको क्लेश है



मनुष्य दूसरे मनुष्यके बधनमे पड़ जाते हैं। तो एक दूसरेके बधनोंमे पड़ना भी इच्छाशोक ही कारण है। पुत्रकी इच्छा है कि मैं ठीक रहूँ। मेरा बढ़िया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने। ऐसे इच्छाशोकके कारण ही वह पिताके साथमे रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बन्धा बुढापेमे, नाम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इन इच्छाशोकके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाएँ अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएँ अपनी स्त्रीके प्रति होती हैं, इस तरहमे वे सब एक दूसरेके बधनमे बन जाते हैं। नीकर अपने मालिकके बधन मे है। मालिक अपने नीकरके बधनमे है, बडा अपने छोटेके बधनमे है और छोटा बड़ेके बधनमे है। यह सब इच्छाके कारण ही तो होता है, इसलिए इच्छाएँ ही बधन हैं।

सीता जी अग्नि परीक्षामे मफल हो गयी तो रामचन्द्र जी हाथ जोकर खड़े हुए। बोले—दवी क्षमा करो। आपको बहुत कष्ट पहुँचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोड़े और भी सब लोगोंने हाथ जोड़े। भला सोचा कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट कराने वाली अग्निपरीक्षाके बाद क्या अपने मनमे इच्छाके भाव बनाय होंगे? क्या सीता जी के मोह की प्रवृत्ति हो सकेगी? नहीं ऐसा नहीं है। इसीस तो सीता जी के वैराग्य उमड़ा, सीता जी के लिए कुछ बन्धन नहीं हुआ, विरक्त हो गयी। तपस्यामे लग गयी। जब तक इच्छाएँ थी तब तक बधन था। जब इच्छाएँ खत्म हो गयी तब उनका बधन भी खत्म हो गया।

अब घरमे ही देखो लोगोकी इच्छा नहीं रहती है, इसलिए जुदा हो जाते हैं, अलग हो जाते हैं, वे तलाक दे देते हैं। जब इच्छाएँ नहीं है तब मोहक बधन भी हट जाते हैं। मोह बधन खत्म हो जाना है। हमको बाँधन वाले कोई पत्थर नहीं हैं। जब हम बाह्य पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं तब अपने आपको ही बेडियोमे जकड़ते हैं दुखी होते हैं। बड़े-बड़े रईम लोग आजकल भी अपने स्त्री, धन वैभव इत्यादिको छोड़कर अलग हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। यह क्यों, या कि इच्छाका बधन उनके नहीं रहा। इच्छा तक साम्राज्यसि उगाय था। इच्छाकाके समाप्त होते ही वे बड़े बड़े साम्राज्य छोड़ देते हैं। कहते हैं ना कि फर्ना आदमी मोहप्रसंगसे अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपनेको बधनमे बाँधनेकी इच्छा नहीं की इसलिए अलग हो गया। बधन तो इच्छाका कहते हैं। किसीको अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फलाका है इत्यादिसे विपदाएँ हैं। भीतरमे अगर जरा भी नाश आ गया है कि यह मेरा है तो बस दुख उत्पन्न हो गए। देखो दूसरेसे लात धूसे मिला करते हैं, पर कहते हैं कि यह मेरा है। परको अमीकार करनेसे ही सुख दुख हो जाते हैं। परको अङ्गीकार करना ही इच्छा है, मोह है। यह मोह इस जीवके ऐसा फँसा हुआ है कि उसे चैन नहीं आती है। यह जीव किसी किमी बातसे भोज मनाता है और किसी किसी बातसे दुखी होता है। जिन चीजामे भोज मनाता है उन चीजोमे भोज

के माथ साथ दुख ज्यादा आते हैं। रात दिने २४ घंटेके अंदर यह बताओ कि बहुत बढिया मोज आपको कितने मिनट रहती है ? रात दिने २-३ मिनटके लिए शायद मोज आ जाती हो, बाकी समयमे वृष्ट ही रहते हैं। कभी कोई बच्चा आ गया, उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो एक् मिनटके लिए मोज हो गयी, बाकी समयमे दुख ही रहते हैं। दूबानपर बठे है, कार् ग्राहक आ गया तो सौदा पटनेपर दो एक् मिनटके लिए मोज आ गया। सौदा न पटा ग्राहक चला गया तो फिर दुखी हो गये। और ग्राहककी अपेक्षामे तो पहिलेसे भी दुखी बठे थे। मोज और दुखमे अंतर दखा कि मोज तो राईके समान है और दुख पहाडके बराबर है। मोज और दुखको फिर देख लो। दुख तो सारे साचे है, मगर मोज जो दो मिनटको आता है वह भी झूठ है। मोज झूठा हो गया और दुख मांचि हो गए। घर भाई कोई बात हो तो बताओ। इन सबका क्या कारण है ? दखो भाई अणिक मोज माननेसे ही कारण इच्छाए ही है। इन इच्छाओसे ही दुख हो जाते है, दुखसि दब जाता है। इस मोज माननेका कारण इच्छाए ही है। इन इच्छाओसे ही दुख हो जाते हैं।

जैसे कोई कहे कि साहब अपनी कहानी सुनाओ। अच्छा, सुनो। ५ मिनट तक सुनाया। तो उसमे यही पावोगे कि इसकी इन विषयोमे इच्छा है, इसकी इन विषयोमे इच्छा है। नियाय कर लो कि इसमे अमुककी इच्छा है, इन सबसे दुख होते है। इन सब इच्छाओसे ही दुख होते हैं, क्लेश होते है। सारी बातें ठीक हैं ना। सारी बात ममम्मे आयी हैं ना। सारी बात ममम्मे क्या, सिरपर ही तो आ रही है। अब समझते यह हैं कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी ममस्याएँ समाप्त हो जावें। हम कहते हैं कि जिनमे मोह है, जिनमे इच्छाए हैं उनको कभी मुख नही हो सकता है। इतना तो निश्चय कर ही लो। जिनके क्रोध हो, मान हा, चाह कुछ भी हा पर एक ये इच्छा न हा तो आनन्द ही आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या पटा है ? तो ये इच्छाए मिटें कमे ? अरे इन इच्छाओके मिटने की तरकीब तो हा। जो शास्त्र पूजे जा रट है उनमे इच्छाए मिटाने की तरकीब लिखी होती। इसीसे हम पने पन शास्त्रके आदरमे पलटते है, पूजत हैं, उनका मनन करते है और यह भगवान की मूर्ति मंदिरमे विराजमान है, परमात्मा अरहन, जिनेद्र की मूर्ति विराजमान है, उनकी उपासना उह आदश मानकर ही तो करते है। इच्छा प्रभु के समाप्त है। मो निरीहकी पज करके हम अपना इच्छाओरा नष्ट करें। हम गुस्वोके सत्सग करते है, गुस्वाकी उपासना करते है, क्योंकि इच्छाओर मिटानेकी तरकीब उनके सत्सगसे मिलती है। जमी इनकी वृत्ति है ऐसी बनाकर मैं प्रसन रहू। जिसके पास इच्छाए होती हैं और चाहसे ही मोज किया करते हैं, उह क्लेश ही रहत हैं। दखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम गहों जाते है और जिसके पास जानेसे अपनेको क्लेश है उनके पास जाते

है। जिनके पास जो है उसके पास जाकर उसे पाना चाहिये। दरिद्रतामें दुःख है—यह सोचकर जिनके दरिद्रता नहीं ऐसे धनीके पास जात है। लोग जिनमें उह कुछ मीज मिलता है उनके पास जात है। इसी तरह इच्छाओंसे दुःख है। जिसके यह दुःख न हो उनके पास ही शान्ति जाने है और परन्तु मोही दुखियोंसे चिपटत है और जिनके पास दुःख नहीं हैं उनके पास हम नहीं जात हैं। दस्ता मिल चल रहे हैं खटपट खटपट। यह चीज वहाँ बन रही है, वह चीज वहाँ बन रही है, खूब काम चल रहा है। वैसे ही हमारी भावनाओंमें मिल चल रहे हैं। एक इच्छा यह हुई, दूसरी इच्छा यह हुई, इस तरहसे इच्छाओंकी मशीन चला करती है। जितने दुःख आते हैं वे सब इन इच्छाओंके द्वारा ही आते हैं। अरु इन खटपट इच्छाओंमें पढ़नेसे बलेश ही बलेश रहेंगे। अरे इन इच्छाओंको हटा दो, इनमें कोई मनसब नहीं निबलता। कोई इच्छा करो, पर उससे लाभ नहीं मिलने का है। जैसे ऊटका पता ही नहीं रहता है कि वह किस करवट बठ जाय ? जैसे ऊटका पता नहीं रहता है कि किस करवट बैठेगा। बैठतेमें भी यह भी नहीं पता रहता है कि किस तरफका बठ रहा है ? पहले तो वह बारा सा झुकेगा, फिर पर लचाकर बैठ जाता है। जब वह बैठ जाता है किसी तरफमें तो फिर पता लगता है कि ऊट इस करवटसे बठा है। पुद्गलकी चाहे लट्टू चले, चाहे तलवार, खटपट वहाँ कुछ नहीं होगा। और इस मनुष्यकी तरफ जरा देखो। इस मनुष्यका पता नहीं कि एक मिनटमें ही व। निमाग बदल जाय या कुछ समय बाद क्या उमका बदले, उसका कोई पता नहीं चलता है। वह अपनी भूलम आकर ही गलतियाँ कर डालता है। इन गलतियोंके कारण ही इच्छाएँ हो जाती हैं। इन गलतियोंकी अगर अपनम निजाल दें तो दुःखके बधन छूट जावेंगे। दुःख तो टच्छाणा से ही आते हैं। इच्छाएँ न हों, केवल ज्ञाता हूँ मात्र मैं होऊँ ता उम ज्ञानमें ही मेरा पूरा पडेगा। इच्छाओंसे मेरा पूरा नहीं पडेगा। देख लो केवल एक इच्छा हो गयी तो बैठ-बठ ही इच्छाओंसे दब गए।

जब बच्चे थे तब भी इच्छा इज्जन की थी, नीच नहीं बैठते थे, गोद में ही बैठते थे। जब थोड़ा बड़ हुए तो यह खा लें, वह खा लें, और तनिक बड़े हुए तो अन्न इच्छाएँ आ गयी। स्कूल जावेंगे, परीक्षा देंगे, यह करेंगे, वह करेंगे और अगर भूखराज हो गय तो, हाय मैं तो स्कूल नहीं जाऊँगा, यह सोचकर इधर खेल रहे उधर खेल रह। तनिक और बड़े हुए, शादी किया विवाह किया, पुत्र हुए देखो अय अय दगकी बातें हो रही ह। तो इच्छाओंमें आराम नहीं लिया। इच्छाएँ मेरे मनमें बहुत सवार हूयी। इन इच्छाओंमें हमें बहुत सताया, फिर भी हम इनका आदर करत जा रहे हैं। अरे ये इच्छाएँ बेकारकी है, व्यर्थकी हैं, इनमें कुछ मतलब नहीं, कुछ प्रयोजन नहीं। भला सोचो तो सही, इस शरीरका तो मरण होगा ही। इस शरीरकी क्या दशा होगी, खाक कर दिया

जायगा, भस्म कर दिया जायगा। वह जाननस्वरूप ज्ञानस्वरूप कहाँ जायगा ? ४३ घनराज प्रमाण लोकमे पता नही कि वह किस जगह जायगा ? फिर उनके लिए जानपुर नही होगा। उनका हिन्दुस्तान नही होगा। उनका घर द्वार इत्यादि भी नही होगा। वह तो ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपमें अगर विश्वास कर ले तो सुखी हा जावें। तो ऐसा ही अब जान लो कि मेरा कही कुछ नही है। जो कुछ भी हो घम कर लो तो उमका फल है। शरण कोई नही होगा। अपना आत्मबल ही शरण होगा, दूसरा कोई शरण नही होगा। हम लिए मैं इस अपने ज्ञानमय आत्माको दखू और अपनेमे अपने लिए अपने आप रमकर आनंद पाऊ।

कुछ भी चेष्टायें करीपर भी फिर जैसेके तम ही खाली हाष रहने हा। किसी भी प्रकारकी चेष्टायें करो—दुकानकी, घरकी, मत्स्यकी, रहनेकी, पढनेकी, सोमाइटीकी समाजकी सेवानी, देशकी सेवानी तो वैसेके वैसे ही खानी हाष रहने हो। इस आत्मामे कुछ भर जाता है, बन जानो है, बडा हो जाता है तो यह भी कुछ नही होगा, बल्कि उन चेष्टाओंसे कुछ खाली हो जाता है। नाना प्रकारकी चेष्टायें करो मगर कुछ लाभ नही मिलेगा।

अगर मैं कोई चेष्टायें न करूँ तो स्वच्छ बना रहूँ। चेष्टायें न करनेमे कोई हानि नही। मेरी तो वास्तविक चेष्टा ज्ञानमय ही है। भीतरके स्वरूपको देखो तो यह केवल जाननहार एक आत्मा है अपने आपके स्वरूपम घुना मिला है। मुझ आत्माका काम केवल जाननस्वरूप है, केवल जाननका काम है, इसके आगे और कोई काम नही है। इसके अतिरिक्त और कुछ करनेका अगर स्वभाव भाना है तो धोखा है। यह तो जाननहार है, जानन ही इसका काम है। ऐसा ज्ञानमात्र मैं अपनेको दखू। भीतरमें यह प्रवृत्ति बन जाय कि मैं तो सबसे निराला, निरत तत्र हूँ। इसका किसीमे सम्बन्ध नही है। जहीमे कुछ हाता हो या कुछ हो जाय, ऐसी बात नही है। सब हैं, पूरेके पूरे हैं परिणामनशील है, अपने आपमे परिणामते रहते हैं। परिणामना ही तो इसका काम है। इसको कहते है कि उत्पादव्ययधोव्ययुक्त सत् जो बन जाय बिगड जाय और बना रह वही तो सत् है। यह प्रत्येक पदार्थोंका स्वभाव है। मैं किसीकी बना दू सो बात नही है। मैं किसीसे बन जाऊँ यह भी बान नही है। सो न तो मेरा स्वभाव है परका बनाना और न स्वभाव है परका बिगाडना। यह तला पदार्थोंमे अपने आप भरी होती है। प्रत्येक पदार्थोंमे यह उत्पादव्ययधोव्ययुक्त की कला स्वय है। दुनियाके लाग यह नही समझते हैं सो उनकी यह बुद्धि बन जाती है कि य चीजें बन जाती हैं तो कोई बनाने वाला अवश्य है। उन बनाने वालेका नाम ब्रह्मा है। देखा कोई चीज बिगडी, खतम हो गयी, गुजर गयी ता ऐसा करने वाले महेश है। ऐसा उरान व्यय हा जानेपर भी कुछ रहा करता है उमका नाम विष्णु है। भैया ! प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। पदार्थक स्वभावको तो देखता नही, अपने रूपको तो समझता नही, केवल बाहरमे ही देखकर कल्पनायें बनाकर यह

कहता है। मैं प्रभु नहीं बना दूँ, प्रभुत्वको विगाड़ दूँ, प्रभुत्वको कुछ न करूँ। कोई दूसरा ही विगाड़ दे—इस प्रकामे भी सदैव दुःख रहता है। अरे मैं तो स्वच्छ हूँ, मेरा कोई दुःख न कर सकता। जपपादव्ययघ्नीव्य मेरेमें पड़ा होता है सो मैं स्वयं प्रपन्न स्वरूपको जानता दखता हूँ। मेरी जानामात्र ही चेष्टा है, बाकी प्रपन्न नहीं है। सो मैं प्रपन्न ज्ञानस्वरूप आत्मामे रह कर अपनेमें प्रपन्न तिष्ठ अपने प्राप्त सुखी हूँ।

यह अतर्क्यी बात, तत्त्वकी बात, हमको जो जानता है वह मूक हो जाता है, बोली नहीं सकता मौन हो जाता है। जैसे कोई किसीको कोई चीज समझाने और समझाने वाला समझने वालेकी समझमें नहीं आता है। अब समझाने वाला भी यद्यपि जानता है सब पर यह ऐसा नहीं समझता है तो समझाने वाला चार-चार समझाता है, पर एकसप्लेनशन नहो कर पाता है। जब सुनने वाला समझ नहीं पाता है तो बोलने वाला देबुलमे हाथ मारकर यो ही रह जाता है। क्या समझाया जाय बताया नहीं जा सकता है अच्छा मिश्री तो सबन खाये होगी। कोई भाई खडे होकर मिथीके स्वादका एकसप्लेनशन कर देवें। अरे भाई आप जान रहे हैं मिश्रीके स्वभावको, पर बताता कोई नहीं है। जानते सब हैं पर बता कोई नहीं सकता। जानते सब है, पर बर्णन कोई नहीं कर सकता है। ज्ञानस्वरूप कैसा है? कोई बतावेगा। जो तत्त्वका जानने वाला है वह मूक हो जाता है। सो मूक जीवन एक छल पकड़ लिया कि जिसके जाननेमें गुणा हो जाता है। उस तत्त्वसे हमें क्या प्रयोजन ? २०-२१ वष बाद धर्मपत्नेका रिवाज था। ससृष्ट पढनका रिवाज था। सडके विद्यालय ससृष्ट पढनके लिए जान थे। घरके माँ बाप कहते कि अरे देखो ससृष्ट पढनेसे कोई पडित हो जायगा, तो आई-आई तो घर छोड़कर चल दिया। तो एम पढानेसे कोई फायदा नहीं है। ऐसा माँ बाप लडकोंके प्रति मोक्ष थे। अरे ममके तत्त्वको जिसन ममम लिया, जिसकी जान हो गया वह अगर घरस चला जाय तो उसे आसानोमे चला जायेगे। उसका उत्सव मानो। ऐसा जो जानी ध्यानी निष्णय कर रहा है कि यह तो अपने आपका कल्याण करत है और दूसरोका भी कल्याण करता है तो उसका गौरव होना चाहिए। मान लिया आपने दूकान कर ला, बहुतमा साम्राज्य कर लिया तो उससे क्या होगा? बतलाओ। अर य ता सबसा। जाने हैं ही। अगर जीवोका उदार हो जाय तो सुखी होनी चाहिए। यह मूक पुण्य छल करत है कि मरको उस तत्त्वम क्या लाभ होगा? अर भाई ऐसे तत्त्वमे, उपयोगमे ही शक्ति है बाहरमे शक्ति नहीं है। बाहरी कामोमे तो अशक्ति ही अशक्ति है। अपने उपयोगमे लगने से शक्ति ही रहेगी, अशक्तिका कोई काम नहीं है। क्या आप बतला सकते है कि किसमे शक्ति है? शक्ति न्या मविसमें है, क्या दूकानम ह, क्या दुनियाक कार, कामाम है? अरे शक्ति कही नहीं है। केवल अपने आपके स्वरूपका लबा तो कहापर शक्ति ही शक्ति मिलेगी। चहो अशक्तिका नाम नहीं है। अशक्ति कितन प्रकारकी हाती है? एक एक प्रादमीमे कामसे काम

एक एक हजार अशांति होगी। फिर एक आदमीमें इतनी प्रकाशकी अशांतियाँ हैं तो दूसरोंमें भी ऐसी ही नाश अशान्ति हैं। ये अशांतियाँ भी एक दूसरोंमें मिलती नहीं। इसको और तरहकी अशांति, इनको और तरहकी अशांति। कितनी तरहकी अशांतियाँ हैं, कोई हृद नहीं है। मगर शांतिवा जो रूप होता है वह केवल एक है और अशांतिके रूप करोडा हैं। शान्ति अगर मिली तो उनका केवल एक ढग है। अगर मान लिया इन लौकिक मौजामे कि हमें शान्ति मिले तो वह शान्ति नहीं हुई। शान्ति तो केवल एक प्रकारकी है। तो यह तत्त्व जा अपने आपमें विराजमान है उस और दृष्टि दो तो उसे शान्ति है। तो ऐसा तत्त्वको जानकर म अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं मुन्नी होऊ।

अब एक मनुष्य बोल रहा है कि उम तत्त्व जाननेमें क्या फायदा? जिम तत्त्वके जाननेसे जानी अज्ञानी हो जाता है। तत्त्वको जानने वाला आलसी होता है। ऐसा आलसी होता है कि आँखें खोलता है तो पलक गिरानेमें आलस्य आता है। आँखोंमें पलक अगर गिर तो उठानेमें आलस्य आता है। और की बात तो दूर रही, जिनको मांगी कहते हैं उनको भी, पलक अगर गिर गयी है तो पलकें उठानेमें आलस्य है और अगर नजर उठी तो पलकें बंद करनेमें आलस्य है (यान बाह्यमें दृष्टि नहीं करता) एम तत्त्वको जाननेमें हमें क्या प्रयोजन है? और ज्वादा पडे तो ऐसे प्रश्न हा जान हैं कि हम भी मुक्त हो गये तो दुनिया कसे चलेगी? दुनियाके क्या हाज हाज? अरे तम सब बड़ा बन जायेंगे? सब ता नही बनेंग मगर अनन्त बन जायेंगे। अनन्त बनने पर भी अनन्तान त हो रहेंगे। अगर इस ही प्रकारसे रह तो खुदका शान्ति कसे मित्र जायगी? अगर बाहरमें ही दृष्टि गयी तो बड़ा शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति तो वहाँ है जहाँ बाहरमें दृष्टि न हो। बुद्ध मत मोचो, बुद्ध मत बोचो, बुद्ध मत करो। देखिए, कपना, जल्पना, चलना क्या है? कपनामाका सम्बन्ध मनसे होता है। जल्पना का सम्बन्ध बचनोसे होता है। जिससे जल्प व गल्प गण्य बने और चलपना उठाने चल द, उठाने घर द वह चलपना हुई। न कोई कपना हो, न कोई जल्पना हा और न कोई चलपना ही, केवल स्वरूपका ही परिग्रह हो तो तत्त्वज्ञानकी प्रगुति बडे। शान्ति ता वहाँ है। मांग कहते हैं कि उस तत्त्वके जाननेसे क्या फायदा जिगको जानकर आलसी हो जाते ह। भया। शान्ति तो उम निर्विकल्प तत्त्वमें है। मैं अपने ही तत्त्वको निरखकर, उसमें ही उपयोग देकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं मुन्नी होऊ।

मन मरा स्वभाव वही जो दीडा करता है। मनका वाय मरा कोई वाय नहीं। मन मेरी वस्तु नहीं। मैं तो मैं ही हू। मर स्वरूपका पता मुझे न हा—यह कमी अनहोनी बात है? एक राजा था। घाडे पर चढ हुए जा रहा था। दीवानों घर परसे निरला। दीवान बुद्धिमान था। राजा बोला, दीवान! मुझे यह समझा दो कि आत्मा क्या खोज है और

परमात्मा क्या चीज है ? जो प्रमत्त हाता है वह बदी बातें करना है । राजा भी प्रमत्त थे । घोड़े पर बट दूए दीवानमे बात कर रह थे । बड़े आदमी प्रायः जब प्रमत्त होते है तो बहुत बोलते है । राजा बोला, जल्दी समझा दो कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? दीवान वाला, अच्छा समझा दूगा । राजा बोला—समझा दूगा नहीं, ५ मिनटमे ही समझा दो । दीवान बोला—राजा माफ करो, मैं ५ मिनटमे नहीं आधा मिनटमे समझा दूगा कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? राजावा घोटा छुड़ाया और चार छः बोहे राजाके जमा दिये । राजा बोला—अरे भगवान, अरे भगवान । दीवान बोला—जिसकी तुम अरे अरे कहते हो वह है आत्मा और जिसको भगवान कहते हो वह है परमात्मा । है आत्मन् अपने में बाहर न जानो, अपने से बाहर दुख हैं । मुदके जाननेमे ही मुक्त है । सबको मानो कि भगवान सबसे है । अत्यन्त यथाय रूपमे आत्मा है । यदि उस अपने यथायथरूपको देखा तो तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे गायन है । जहाँ यह रागादिव प्रतिभासित हो वह तो मैं है वित्तु रागादिव मैं नहीं हूँ । मैं तो एक जानमात्र आत्मतत्त्व हूँ । इस जानमय आत्मतत्त्वका जब नयोंसे हल न हो सका तो एक एक एकांत दर्शन बन गया । सब प्रकारसे देखनेपर आत्मतत्त्वका सही जान हो सकता है कि मैं आत्मतत्त्व यह हूँ मैं आत्मा सुखी हूँ, निज उपादान वाला हूँ, वित्तु माने यह कि मैं अमुकके कारण सुखी हूँ तो इसीको कहने है निमित्तदृष्टि । और जो दृष्टि अपना आचार नियम अपनी जुम्हार होती है उसीको कहने हैं उपादानकी दृष्टि । एक पुस्तक है, उसमें एक गधे की कहानी लिखी है । मैं वचनपत्रमे भी उसे पढ़ा था । अब चाह हमारा एटीमन नयार हुआ हो या नहीं उस कहानी की पुस्तकमे बहुत सी शिक्षाए थी । एक उपकहानी यह है कि एक घोबोके पास गधा और एक कुतिया थी । कुतियाक बच्चे २०—२५ दिनक हो गए । घोबो कुतियाके बच्चाको उठा भी लेता था । प्यार भी करता था । कुतिया अपने पजे मारकर घोबोको प्रमत्त करती थी । कुतिया पजोसे ही तो मारती है । कभी मुहमे घोबोने हाथ पजोमे भरकर काटती । इसी तरहमे तो कुतिया खेलती ही है । इसी तरहमे घोबो उस कुतियाक बच्चोमे प्रेम करता था । गधे ने यह दया कि घोबो कुतियासे तो प्यार करता है जा वित्तुज काम नहीं करती है और हम तो बहुत काम करते है फिर भी हममे प्यार नहीं करता है ।

उसने इस बातको माचा कि आखिर हमसे प्यार क्यों नहीं करता है । सोचा तो एमझमे आ गया । गधेने समझ लिया कि कुतिया घोबोको रातोसे मारती है और दाँतोंसे काटती है इस वजहमे वह प्यार करता है । चना ऐसा ही हम करें तो हमसे भी यह मालिक प्यार करेगा । गधा अपने स्थानसे चला और घोबोके पास पहुँच गया । सोचा कि लाते मारें जो शायद कुछ हो जायगा । खूब लाते मारने लगा, काटने लगा । अब घोबोने उठा उठाया

श्रीर उमे पीटने लगा । उस गधेने सोचा कि अरे कृतियासे तो वह प्यार करता है श्रीर हमे मारता है । तो भाई बातें सबकी न्यारी न्यारी है, उपादान यार यारे है । कोई जीव किसी तरह पीडाग्रोम रहकर शान रह सकते है, कोई अशांत रह सकते है, कोई किसी भी स्थितिमे धर्मात्मा रह सकते ह । इसकी परख बाहरी बातोमे नही होती, भीतर तत्वमे होती है ।

ऐसा उपादान तत्त्व अगर समझमे आ गया तो सब कुछ ठीक होगा श्रीर जिसकी समझम न आया तो यह ठीक नहीं होगा । जैसे कोई नावसे नदीम जान, कभी इस दिशामे, कभी उस दिशामे तो लक्ष्य विना भटकता ही रहना है उसी तरहमे इस जगतेम व जीव जिनका कोई शुद्ध लक्ष्य नही व भटकते ही रहेंगे । इतना धन चाहिए, इतनी इज्जत चाहिए बाल बच्चे चाहिये । अर ये सब क्या ह ? वे भी बूढ़े होंगे श्रीर मरेंगे । क्या ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यहाँसे निकलकर नही जायगा ? यहाँ कौनसी चीज सारभूत है जिनमे हम गढे हुए हैं ? सारी चीजें छोड़कर जाना पडेगा । यहाँ कुछ रहता नही है ।

एक सेठ था । उसके चार लडके थे । अपनी चाची किसीको भी वह सेठ नही दता था । अपनी फँटमे वह बाँधकर रखता था, किसी बच्चेपर वह विश्वास नही करता था । सेठ जब खतम होने लगा, गुजरने लगा ता बच्चीसे बोला, बच्चा लो, चाची ले लो । बच्चे कहते है कि नही पिनाजी, चाची हमे नही चाहिए, आप अपने साथमे लेते जाइए । शांतिका माग प्राप्त कर लें, ऐसी कोई चीज दुनियामे है क्या ? बाहरी बात कुछ भी हो उसमे तो अमतीप न करो । अर भोजन करते है तो देहातीम पूछत है कि किस चीजकी दाल बना दें, क्या बना दें तब पुरुष उत्तर देना है कि कुछ भी बना दो । उडदकी बनाओ, चाह ममूरकी बनाओ चाहे चनेकी बनाओ, चाह मूंगकी बनाओ, चाहे अरहरकी बनाओ, जो हागा मो खा लेंग । ता भाई जैसे खानेमे सतोप है उसी तरह यदि बाहरी व्यवस्थाग्रामे सतोप हो तब तो ठीक होगा । सतोप तो अतमे करते ही हैं । कोई गुजर जाता है तो कहते ह कि दतनी ही अवस्था थी, यदि भेदज्ञानसे सतोप करें तो लाभ है । ४६ हजारका टोटा पड जाय तो वहाँ या सतोप करते है कि वह तो किसीसे कज लिया था सो चुक गया । अर धन आए तो क्या, न आए तो क्या ? वह मय नो सवया भिन्न है । इस भेदज्ञानसे ही मनोप वरें ता ठीक है । उममे भेद तो रहना ही है, जवरदम्नोम क्या है ? भया बात नो भेदविनाशकी ही एक पक्की है श्रीर यही रोज रोज चल रहो है । अब कुछ भाइयोकी मर्जी है कि भक्तामर स्तानका अथ हृषतामर खले । ठीक है चलेगा, किन्तु भैया ! बात पक्की भेदज्ञानकी ही है । एक क्या यात्र आ गयी । एक रंगरेज था, वह शासमानी नीले रंगकी पग ी रंगना बहुत चटिया जाता था । कोई उससे आकर बोलता कि हमारी पगही हरी रंग दो, कोई बोलता मुनहरी रंग दो ।



शरीर सब पगड़ी रखता था वह कहता था कि अच्छा रंग तो दोगे। बिन्दु रंग आस-मानो ही ठीक खिलेगा। सो भाई कुछ पढ़ा लो, आनन्द तो भेदविज्ञानसे ही मिलेगा। चमत्कार तो तभी बनेगा जब ज्ञानस्वभावके विनासकी पूजा हो। सो मैं अपने आपमें स्वयं निधि रूप, ज्ञानानन्दघन हूँ अथवा शरण हूँ। अगर यह समझमें आ जाए तो मेरा भविष्य सफल है।

एक ऐसी दृष्टि बनाकर कि कोई समय ऐसा आया जब कि यह मैं आत्मा दस जड़ शरीरसे चारा होकर चला जाऊँगा। और उम समय शरीरकी क्या स्थिति होगी? मिल-जुलकर यह मित्रमंडल इसे साक कर देगा। इस शरीरसे जब जीव निकलेगा उम समय क्या स्थिति होगी? ज्ञानज्योतिमात्र यह आत्मा होगा, यह शरीर छूट गया, दूसरा शरीर मिला नहीं तो जो बीचके क्षण है वे क्षण किस प्रकारके होंगे एक। ज्ञानानन्दघनका पिंड जैसा है उस समय मैं परिणामता हूँ वैसा ही परिणामता हुआ होऊँगा। एक भावस्वरूप पदार्थ होऊँगा। ऐसा भावस्वरूप पदार्थ मैं शरीरमें हूँ अब भी हूँ। दूसरे शरीरमें जब जाऊँगा तब भी मैं भावस्वरूप पदार्थ ही रहूँगा। शरीरमें रहकर भी मैं शरीरसे चारा हूँ। मुझमें जो परिणामन तत्त्व है वह भी चित्तस्वभावमात्र मुझमें चारा ही रहेगा। और उन परिणामन तत्त्वोंके मायने रागाद्वेष की छाया न हो, शुद्ध ज्ञानमात्र सबसे चारा मैं होऊँ। ये रागादिक ऐसे कैसे हो गए हैं? मुझमें स्वभावसे तो ये रागादिक नहीं हैं। मेरा स्वभाव तो रागादिक करनेका नहीं, केवल जाननका है। जैसा पानीका स्वभाव बहनेका है याने द्रवता का है। पर ठंडा होने का गर्म होनेका नहीं है। ठण्डा करनेसे पानी ठंडा हो जाता है और गर्म करनेसे गर्म हो जाता है, पर पानी सवत्र द्रव ही है, गीला ही है बहने वाला ही है। पानी अपने स्वभावसे न तो गर्म ही होगा और न ठण्डा ही होगा। पानी तो कूलर या ठंडा करने वाली मशीनसे ठंडा होगा और अग्निव द्वारा गर्म होगा। ऐसी स्थितिमें भी पानी द्रव है, बहने वाला है। इसी तरह यह आत्मा चाहे क्रायरूप परिणामन रहे, चाहे लोभरूप परिणामन रहे चाहे विषयकषायरूप परिणामन रहे पर अपने ज्ञानस्वभावकी नहीं छोड़ना, केवल जाननके स्वभावमें रहता है। इसी कारण विषयकषाय यद्यपि आ जात है तो भी जानन रहता है। जो जानने वाला नहीं है उसमें विषयकषायके परिणामन नहीं आत। ये विषयकषाय मेरे स्वभावमें नहीं आ रहे हैं, बल्कि उपाधि पाकर आ रहे हैं। जा अध, मान, माया, तोभ इत्यादि हो जात है उनका करने वाला मैं नहीं हूँ।

जैसे एक दण्ड सामने है। दण्डके स्वभावका काम केवल रखरखना है, केवल झलक है, किर्तनमात्रात रहनेका स्वभाव है। अपनी चमक बनी रह यही उसका काम है। जो चीज सामने निकर रखे तो उसकी छाया दण्डमें सही नहीं पड़ती है, दण्डमें ही प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। अगर मृत्का बनाओ तो मुक्ता दण्डमें दिखाई देगा। इसी प्रकार अज्ञ अमर बनाओ तो घोड़ीका प्रतिबिम्ब सामने आ जायगा, अज्ञ अमर तिनही

वनाओ तो आँखोंका तिरछा प्रतिबिम्ब आयगा । दपग क्या करे ? इसी तरह तेरी आधीनता की बात हूँ त्रि क्रोध कर ले, मद कर ले, मैं अपनी आधीनतासे यह कुछ नहीं कर पाता हूँ कि तु जैसी उपाधि सामने आती है वसा कर डालत है । इसी तरह दपणमा परिणामन केवल गुद, स्वच्छ है । आत्माके परिणामनमे गगद्वेप नहीं, विषयकपाय नहीं, वह केवल गुद स्वच्छ एव ज्ञायकस्वरूप है । ऐ आत्मा ! गलीज बनेका तेरा काम है क्या ? आत्माका उत्तर यह है कि मेरा काम नहीं । मेरा काम तो प्रभुकी तरह गुद ज्ञानमे परिणमते रहनेका है । पर क्या करूँ ? जब यह उपाधि उदय होता है तब खुदकी गगुद योग्यतामे यह परिणामन आता है, अशुद्ध, त्रिकारमय, रागादिक, क्रोधादिक, तो मैं इनको करता नहीं हूँ इनके करन वाल तो कोई दूसर ही है । इस बुद्धिमे अपनेको ज्ञानस्वरूपकी ओर ले जाया जाता है । इसका कर्ता तो कम है । मैं तो गुद ज्ञायकस्वरूप ही हूँ, मैं तो जाननस्वरूप हूँ । मरमे रागात्मक भाव नहीं । विपरीत परिणामनमे बड़ी विचित्रताएँ हैं, उनका कर्ता कम है । प्रकृति कहो या कम कहो । जैनसिद्धातमे प्रकृति भी कहते हैं और कम भी कहते हैं । अपनेको शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाने वाली इस दृष्टिमे कितना आराम मिलता है ? विषयकपाय होते हैं वे कमके उदयसे होते हैं । यह मेरा काम नहीं है । मेरा काम तो ज्ञानमात्र होनेका है, जाननका है । जिनमे मेरा अधिकार नहीं उह मैं अज्ञीकार नहीं करता । ये रागादिक होते हैं, होने दो, होकर मिटन दो । इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं । उन बाहरी वस्तुओंके विषयमे ज्ञान होता है । सो जान तो मेरा काम है विकल्प मेरा काम नहीं । जब अपनेको ज्ञानमात्रका अनुभव होगा तो य रागादिक कम नष्ट हो जावेंगे । सा मैं ज्ञानमात्र अपने स्वरूपका देखूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप गुबी होऊँ ।

कहते हैं कि मेरा काम तो जानन है मेरी क्रिया तो जानन है । मैं कितना क्या हूँ ? अपनेको ही देखनेमे पना पडेगा । मेरा काम तो जानन है य विकल्पकी तरफ उपाधिके कारण आती हैं । मेरा काम विव्यप करना नहीं है । जगतके जीव तो विकल्पोंके कारण विगडे रहते हैं और वे आजीवन इस जगतमे मोचते रहते हैं । य रागादिक उठते हैं तो उठें, उनसे मेरा क्या तान्बुध है ? मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, जानमात्र ही मेरा काम है, जानन ही मेरा काम है । मुझ आत्मामे न जागरण है न सोना है, न बचन बोलना है, न खाना है, न पीना है । मेरा काम तो मेरा काम तो यह है कि मैं जाननमात्र हूँ, ज्ञाताद्रष्टा हूँ । कर्ता भोक्तापनकी ख्याति तो दहक लिय है उसका नाव करना ता विपत्ति है । जैसे कभी स्कूलमें बच्चोंसे कोई काम विगड जाय, या कोई बच्चा किमी काम को त्रिगाड दे तो मास्टर उसकी प्रशंसा करता है । मास्टर यदि यह कह कि वाह यह तो बड़ा ही अच्छा काम किया है, बड़ी बुद्धिमानीका काम किया है । इतना मुनउे ही जिस बच्चेने काम विगाड दिया है वह मट कहेगा कि

मास्टर साहब भेने यह काम किया है। मास्टर केवता यह जानना चाहता था कि किस लडके ने वाम बिगाडा, इसलिए प्रशसा करता था। इसी तरहसे ये जगतके जीव मास्टर बने रहने हैं, प्रशसा दूसरोकी विनय करते है। वाह यह तो बडी बुद्धिमानीका काम है, बडा ही मु दर काम है आदि। यह पता नहो कि इस प्रशसाके फलमें मेरे को विपदा ही आवेगी। बाल बच्चोको पढा दिया। अरे उन बच्चोके जीवन भर दास बने रहे, उनको भेवा की, उनको खिलाया पिलाया। उनका क्या किया? अरे वं तो स्वयं नानमात्र आत्मनत्व है। केवल जानन ही उनका काम है। जगतके १०—२० हजार आदमियोके बीचमें जरा अच्छा सुन लिया तो क्या इज्जत बढ गई। यदि यहाँ न रहते अथवा वही रहते तो यह ममागम मेरेको क्या था? अगर वही कीडे मक्कोडे होने, पेड बनस्पति होते या अथ किसी पर्यायोमें होते तो इस रंग ढगका क्याल आता। अरे मनुष्य हो गये हा तो यह अपनेको समझो कि हम यहाँकी भाजके लिये पैदा ही नही हुए है। हम ऐसा ही समझें कि अथ भवमें होत तो वहाँ क्या था? हम निश्चय करें कि हम अपने ही कायके लिए पैदा है हम दूसराकी दिखावटके लिए बनावटके लिए, तथा सजावटके लिए नही। हम वही अथ पदा हो गए हो यह तो है नही। यह म किसी भी क्षण अपने विकल्पोको छोडकर अगर वाम करूँ तो अपने आपमें आनन्दमग्न हो सकता है। यदि म विकल्पपरहित होकर काय करता है तो ठीक है, नही तो सब दुदशा हो जायगी। इस जगतमें कोई किसीका मोह करता, कोई किसीका मोह करता, पर मोही प्राय सभी है। इसी कारण दुखी भी सभी है।

देखो थोडा ही ज्ञान हो, पर मेरी आत्मामें विवेक हो तो ठीक है। पर बहुत नान हो और आत्मामें विवेक न हो तो ठीक नही है। उल्टा ज्ञानसे तो विचार है। थोडा ज्ञान हो पर सही ज्ञान हो तो सबसे न्यारा, ज्ञानमात्र अपने आपमें समझ रहती है। बहुतसे शास्त्रोका पार हो, तीन लोककी रचनाप्रोडा ज्ञान हो, बहुत ज्ञान हो, पर विचार उल्टा हो, विवेक माय न हो तो सही ज्ञान नही है।

एक बुडियाके दो लडके थे। दुर्भाग्यसे उन दोनो लडकोके आँखका रोग था। एकको कुछ कम दिखता था और एकको ज्यादा दिखता था, पर पीला दिखता था। दोनो बच्चोको बुडिया बँचके पास ले गयी। बचने दोनोकी एक ही दवा दी। कोई सफेद मफेद भस्मसी थी। कहा कि चादीके गिलासमें गायके दूधमें इस पुडियाको इतनी इतनी खुराक मिलाकर दना, आँखें ठीक हो जावेंगी। बुडिया दवा लेकर गयी। दाँतोको चादीके गिलासमें गायके दूधमें भस्म डालकर देने लगी। परन्तु उन लडकेका दिया जिसको पीला दिखता था। लडकेने कहा—मा, क्या हमी तुम्हारे दुश्मन मिते? इस पीतलके गिलासमें मूत डालकर हमें द रही हो, हम तो इसे नही पीवेंगे। अब उस लडकेको दिया जिसे कम दिखता था। उसने देखा कि

चाँदीका गिलाम है, दध है भस्म पड़ी हुई है। उसने उम दवाको पी लिया। उस दवाक पी लेनेसे आँखाका रोग दूर हो गया। जो ज्यादा खता था, ५० हाथ, १०० हाथ दूर तक खता था, उसकी उरटी दृष्टि थी, इसलिए दबा नहीं पी और उसे भला नहीं हुआ। जिसका ज्ञान ज्यादा है मगर प्रमाण या उपयोग उल्टा है तो भला नहीं होगा। मेरा भना तो निजो आत्माके अनुभवमे होता है जो कि मही जान है। यदि जान ज्यादा है पर सही नहीं है तो उससे भना नहीं हो सकेगा। जिसकी अपनी दृष्टि होती है, अपने चरित्रकी दृष्टि होती है अपन चरित्ररूप परिणमनकी दृष्टि होती है वह ही दृष्टि मही मानी जाती है। जानी पुस्य यह सोचता है कि जानन ही मेरा काम है। सोन, उठने, बोल-चान श्यादिमा मेरा काम नहीं ह। य होते हैं उपाधिका निमित्त पाकर, अपन आप हीन हैं। अरे होते हैं तो हान दो। मेरा यह काम नहीं ह। मेरा काम सबन जानन ही जानन है। केवल जानन ही इस भूम आत्माका काम है। मैं कहूँगा क्या। अरे इस आत्मस्वरूपको उपयोगसे खोल लो इसको देख ला। देखोगे कि यह आत्मा तो केवल जाननका ही काम कर रही है। जानन सबन रहता ह। केवल जानन ही मेरा काम करता रहता है। यह काम बठिन हो रहा है। मैं सब ओरसे जानता हू सबन ऐसी ही पद्धति जाननस्वरूपकी है। समुराल जाने वाली बड़त-सी लडकियाँ हँसी खुशीसे जाती हैं, मगर रोना पडता है। भीतरसे तो यह होता है कि चूल्हा ठीक करना है, श्रृ गार करना है, यह करना है वह करना है कुछ हँसी खुशी होती है, मगर यह जानती है कि रोना चाहिए यही ठीक है। इसी तरह दूकानपर मुनीम ग्राहकोंसे ये बात करते है कि तुमपर मेरा इतना दाम गया है, मेरा तुम्हारा मेर पास इतना आया है। इस तरह मेरा भी वह रहा है, परनु श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नहीं, यह तो मेठना है। अरे मेरा तो यह काम नहीं, मेरी यह द्यूटी नहीं। यह तो सेठका काम है। और भी देखो विवाह इत्यादिमे पडोस की स्त्रियाँ बाजा बजानेके लिए आ जाती हैं, गान गानी है—“मेर घना सरदार, राम जसी जोडो” आदि मा ता ठीक है। अगर वही दूल्हाकी घाडोस गिरकर टाग टूट जाय ता उनको कोई दद नहीं हाता। और अगर दूल्हाकी माँ को दसका पता लग जाता है तो वह कितना दुख करती है? उसके दुखका टिकाना नहीं रहता है। सो भैया! अगर परपदार्याका मान लें कि य मेर ह तो दुख होगा और अगर यह समझमे आ जाय कि ये मेर नहीं हैं ता दुख न होगा। मेरा काम केवल जाननमात्र है। ऐसे जाननमात्र स्वरूप वाले आत्माका काम ही केवल जानन है। ह प्रभो! मैं जाननके आत्म ही सतोप पाऊ और अपनेमे अपने लिए अपा आप स्वय सुखी हाऊ।

प्रहा हा! यह सारी दुनिया, यह मेरा सारा ससार केवल मेरे सबलपुम ही उत्पन्न-हो गया व कल्पना मितते ही नष्ट हो गया। यह मेरा है क्या? ससार केवल कल्पनाओरुप

हो बना हुआ है। वस्त्रनामि यह उत्पन्न हुआ और यहाँमि मरकर भवेले ही चला जायगा। जब तक मैं इस शरीरमे हूँ तब तक यह मेरा है, यह उसका है, इस मक्त्वमे ही मैं बन गया हूँ। केवल मक्त्व ही हो गए ह, यह मेरा काम है, यह मेरा परिवार है आदि। जब य जुदा हो जावेंगे तो फिर दुनियाभरका पता चल जाय। नाम्बरूप आत्मा इस दशसे निवृत्त जाता है। यह तो सबसे न्यारा है, पर महसूस यह करता है कि यह मेरा ही है। यही तो मक्त्व है। यह सारा समार सक्त्वोमे ही बैठा हुआ है और सार मक्त्वा जान होनेम ही नष्ट हो जावेंगे।

एक बुढियाका छोटा बेटा मर गया। उसी छोट बेटको ही वह सबसे प्रथिम प्यार करती थी। जब छोटा पुत्र मर गया तो वह बुढिया उसे जला नही देती। उसको अपनी छातीमे नगाए रही। उम बुढियाको एक जगह माधु मिला। माधुमे बुढियान बताया कि महाराज मेरा पुत्र मर गया है, जिन्दा कर दीजिए। माधु बोला कि जिन्दा हो जायगा, मगर एक काम यह करो कि जिम घरमे कभी बाई मरा न हा, उम घरमे पापभर गस्तोके दाने ने आओ। बुढिया जल्दी जल्दीसे दूसरेके घर गयी बोली कि हम एक पाव मरमोक दाने दे दो। घर वाले बोले—हा, हाँ एक पाव नही। सेर ले लो। बुढियान पूछा—मगर यह तो बतलाओ कि इस घरमे कोई मरा तो नही है। घर वाले बोल—माँ इस घरमे तो बहुत लोग मर गए—दादा मर गए, भाई मर गया, बहिन मर गयी आदि। बुढिया बोली—तो हमे ये सरसो नही चाहिए। अब बुढिया तीसर घर गयी। बोली—पाव मरमा चाहिए, बोने—हाँ हाँ १० सेर ले लो। मगर यह तो बताओ कोई घरमे मरा तो नही है, ये बोने अरे यहाँ तो बहुत मर गए है। इसी तरहमे बुढियाने १०-१२-१४ घर ढूँढ निग, सभी जगह यही एक उत्तर मिला। इतना पूछनेके बाद उमने जान जगा कि अरे मारी दुनियामे यही ज्ञान है। इतना ज्ञान जब बुढियाके जग गया तो प्रसन्न हो गयी। बोली—अरे ये तो सब न्यारे-न्यारे पदाय है। अब तो उसके ज्ञान जग गया। बुढिया प्रसन्न भित्त साधुके पाम गयी, साधुमे नमस्कार किया। साधुने पूछा—माँ तुम पम्न दिखतो हो क्या तुम्हारा बच्चा जिन्दा हो गया। बुढियान उत्तर दिया कि हाँ हमारा बच्चा जिन्दा हो गया। आपने मुनाया था कि सारी बानोमे ३ प्रकार हुआ करते हैं—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र और ज्ञान पुत्र। मगर शब्द पुत्र हो तो वह यह है जो केवल पुत्र शब्द लिखा हुआ है। अर्थपुत्र वह है जो दो हाय पैर वाला है और ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमे ज्ञान होता है।

बुढिया बोली कि मेरा तो ज्ञानपुत्र था, ज्ञानपुत्रकी ही मृत्यु हो गयी थी, वह अब तक जिन्दा है। वह अपने आपमे है वह जीवित हो गया है। सो भाई इस सार विश्वमे मेरा कुछ है नही। यह बात पक्की मानो, नही तो धावा हो घोखा रहगा। जगतकी व्यवस्था यह है कि कोई किसीकी चीज छुडाना नही, पर सोच लो कि अरे ये कुछ मेरी नही है। इतना सोच

लेने स नया बिगाड हो जायगा ? जमे बुद्धियाको ज्ञान जग गया कि यह मेरा पुत्र ज्ञानपुत्र है, बोली महाराज मेरा ज्ञानपुत्र जिन्दा हो गया है । अरे मे तो ठीक हू । मेरा ठीक बरने वाला कोई इस जगतमें नहीं है । यह ध्यान अपने आपमें रमना चाहिए कि मेरा मात्र म ही हू ये जगतके सारे पदार्थ हमसे छूट जावेंगे । यह विश्वास बनना चाहिए कि मरा कोई इस जगतमें नहीं है । यह मं सदा ज्ञानमात्र स्वन परिपूर्ण हू, मं जसा हू तसा ही हू ।

अपने आपकी छोडकर बाकी जगतके जितने भी पदार्थ हैं वे पदार्थ क्या आपके आधीन हैं ? वे आपके आधीन नहीं है । वे तो स्वयं सत् है । उनके चतुष्टयमें उनका परिणमन होता रहता है । वे तो आपके आधीन हों ही नहीं सकते हैं । यदि कुछ आपके इच्छाक अनुकूल हो गया तो वह नाकनालीय पाय है । जैसे कोई नारियलका पेड है, नारियल टाग हुए हैं, एक कौवा नारियलके पेड पर उडता है, उसके उडते समय ही अगर एक नारियल नीचे गिर पडे तो एसा लोग सोचते हैं कि कौवे ने नारियलको गिराया । अरे वह तो अपने आपमें ही गिर गया है, कौवेके गिरानसे नहीं गिरा है । एव वार अगर ऐसा समय आ गया तो आ गया, वार वार नहीं आता है । कोई कभी आपके मनके माफिक काम बन जाय आपके मित्र जन आपके अनुकूल हो गए, आपके परिवारके लोग आपके अनुकूल हो गए, ऐसी बात तो शायद ही कभी हो जाय, नहीं तो सबथा आपके अनुकूल कुछ नहीं होता । देखा भाई उस नारियलके गिर जानेमें क्या कौवेकी बरतूत थी ? नहीं, वह तो स्वयं ही गिरा था । मगर लोग बहते हैं कि कौवेने चले जानेसे नारियल गिरा । सो भाई परपदाय स्वयं परिणामते है, जितने भी परपदाय हैं, वे किसी दूसरेके आधीन नहीं है, बरिक् स्वयं ही अपने आधीन हैं । बडो बडाके भी ऐसा नहीं हो पाता कि जैसा वे चाहें वसा अन्यत्र परिणमन हो जावे ।

राम और सीताका जितना बडा भारी स्नेह था, कोई प्रमाण द सकता है ? राम जानते थे कि सीता निर्दोष है । धोबीके द्वारा कही बात फल गयी थी । जब रामने वह बात सुनी तो फिर लोकमर्यादा की बचानेके लिए सीता जी को जगल छुडवा दिया । राम यद्यपि जानत थे कि सीता निर्दोष है फिर भी बहते हैं कि लोकधर्मकी मर्यादा रखनी चाहिए । लोग कुछ अतीति न ग्रहण करें—यह सोचकर ही उन्ह जगल भेज दिया था । तो भाई दखो सीता के आधीन राम भी नहीं हुए । सीताका इतना स्नेह था, फिर भी सीताके मनमाफिक कुछ न हुआ ।

जिन लडको बच्चोसे तुम प्रेम करते हो वे आज्ञाकारी भी हैं, फिर भी वे अपने विषय कपायो को लिए रहते हैं । वे अपने स्वाथके लिए ही आज्ञाकारी बने हुए हैं । वे मेरे आधीन नहीं है । भाई कोई किसीके आधीन नहीं है । वे स्वयं ही परिणमते रहते हैं । वे मर

अनुकूल नहीं परिणामते, वे मेरे आधीन नहीं है। मेरे आधीन तो मेरा ज्ञानस्वरूप है। मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जानू तो मेरी स्क्वाबट करने वाला कोई नहीं है। हम ही स्वयं विषय कपायोम पकर अपने ज्ञानमें स्क्वाबट पैदा करते हैं, अन्य कोई दूसरे पदार्थ मेरे ज्ञानमें स्क्वाबट नहीं पैदा करते। बाहरी पदार्थोंमें पड़ने से ज्ञानकी स्क्वाबट होती है। कभी किसी चीजकी इच्छा हो नावे कि अमुक चीज खा लें, अमुक चीज पी लें। न जाने कानमा विघ्न आ जाय वह चीज कही न मिले।

भाई परपदार्थोंके सयोगमें तथा अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें नाना विघ्न नहीं होते हैं। अपने आपके स्वरूपका अनुभव करें तो करें और अगर न करें तो न करें। पर बाह्य-पदार्थोंके ब्यालकी भुत्ता देवें, विश्रामसे बैठें तो अपने ज्ञानका अनुभव सुगम हो जायगा। मेरे काममें दूसरे पदार्थ कोई बाधा नहीं डाल सकते हैं। हम स्वयं अपने कार्योंमें बाधा डाल लेते हैं। जड़ वायु वाला पुरुष खुद ही खटियासे उठकर बाहरको भागता है, इसी तरह विषय कपायोकी वेदना से हटकर बाह्यमें भागते हैं। बाह्यके उपयोगसे ही ये विषय कपाय बन गए हैं और दूसरी कोई बात नहीं है।

अर तू तो अत्यन्त स्वाधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव तो कर। लोभके व्यवहारकी सारी बातें पराधीन हैं। स्वाधीन तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव है। लेकिन देखो जो स्वाधीन बात है, सरल बात है, सुगम बात है, निर्विकल्प बात है उमकी ओर तो दृष्टि ही नहीं जानी। जो पराधीन है, दुगम है जिनमें विघ्न ही भरे होते हैं, ऐसे बाह्य पदार्थोंके सयोगके लिए कमर बन्धे ह। भैया अपनेको जानान-दमय स्वयं सबवैभवसम्पन्न समझकर बाह्यपदार्थोंकी अपने उपयोगमें न लेकर, अपने आपमें ही विश्राम पाकर, अपनेमें अपने लिए अपने लिए स्वयं सुखी होओ।

देखा राज्यमें महान क्लेश हैं। राज्यका मतलब केवल राज्यसे न लो। राज्यका मतलब दुकानसे, व्यापारसे, आजीविका इत्यादि से है। ये सब बाहरी बातें हैं इनमें पड़नेसे क्लेश ही क्लेश ह। भाई करोड़ों रुपयोंका धन एकत्रित कर लें तो उममें भी क्लेश ही क्लेश है। धन कमाने में, रोजिगार करनेमें, राज्य करनेमें, हुक्मत करनेमें देखो कितने क्लेश ह ? अनन्त क्लेश उड़ हो जाया करते हैं। अत्र योगी सन्ध्यासिंघी भिक्षावृत्ति देखो—कोई पुरुष शाम उत्पन्न करने अंतरणमें विरक्त हो जाय अपने ध्यानमें लीन हो जाय वह योगी सन्ध्यामी है। उसे कभी धुंरा लगे तो उमें क्लेश नहीं होत। क्योंकि जब भूय लग तब वह बच्चेकी भाँति रोपणाको निश्चलता है। वह किसी गाँवमें निकल जाय। यदि कोई आदरसे बुलाये, कुछ खानेकी मिल जाए तो खा ले नहीं ता सतोप कर यही भिक्षावृत्ति कहलानी है। भिक्षा वृत्तिमें प्रेयस क्षणमात्रका यत्न है। इन दोनोंमें अन्तर देखो तो बरबादी दोनों ने की।

बड़े बड़े महाराजा २४ घट बलेश ही उठाया करत ह पर एक सयामी मुश्किलम  
 मोन घटामे ही अपना काम कर लेता है, उगे कोई बलेश नहीं होते ह । ऐसा काम तो वे ही  
 कर सकते ह जिनके पाम हिम्मत है । आहार न मिने तो ठीक है और मिले तो ठीक है ।  
 दोनोंमे राजी होवे तो काम चलेगा, नहीं तो नहीं चलेगा । भाई भिक्षावृत्तिमे तो बलेश नहीं  
 होंगे, पर बड़े बड़े धन वैभवके होनेमे तो बलेश ही रहेंगे । परतु परमाथमे शांति न तो  
 भिक्षावृत्तिमे है और न धन वैभवमे है वरन् अपने ज्ञानस्वरूपके दशनसे है । नाई जब पान  
 का अनुभव हो तभी स्वाधीनता है । जब इच्छा हो तब ज्ञानका अनुभव कर लो—य प्रत्यक्  
 पदाथ अग्र तुम्हारे मयोगमे ह तो यह पराधीनता है । मैं किसी भी धन-वैभव, परिणाम  
 इत्यादिके साथ न रहूंगा, क्योंकि य सब मिट जावेंगे । आज न तो राम ही दिखते ह न  
 तीर्थङ्कर ही दिखते हैं और न कृष्ण दिखते ह । ऐसी ही जगतकी स्थिति है । जो इस समागम  
 मे रहत ह, समागममे ही मस्त ह, उह यह सब नहीं रहती कि इस बलेश होंगे । एन  
 समागममे अचानक वियोग होता है । इन समागममे ही बड़े-बड़े बलेश उत्पन्न कर लेत ह ।  
 और हमे यह सोचना है कि सब पन्था जुदा जुदा ह उसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । कुछ भी  
 तो गुंजाइश नहीं कि कोई पन्थाय मेरा हो जाय । मैं ता जाननस्वरूप ह । जितनी भी चीजें  
 हैं वे सब अपने प्राणमे हैं । मेरा किसी भी पन्थाम सम्बन्ध नहीं है । यदि मेरा उपयाग  
 बाह्यमे होगा तो मुझे कुछ नहीं होगा । देखो भैया ! यदि हा समागमके बारमे यह विश्वास  
 हो जाय कि इनका वियोग होगा ही तो उनके वियोगस तुम न होगे । जम कोई मित्र ऐसा  
 हो कि जिकके प्रति यह म्याल आ जाय कि रह तो धोखा देने वाला है एसा म्याल उमका  
 पन्थे मे ही बन गया है । यदि वह मित्र उमे धोखा न दे तो उसके प्रति ज्यादा दुख नहीं  
 होंगे क्योंकि पन्थे ही मानूँ या कि इसमे हमें धोखा मित्रका और अग्र जिसके प्रति कोई  
 शका न हो और यह अचानक ही धोखा देवे तो उममे बहुत बलश होगा । बाहरी पदार्थोंका  
 जो समागम है वह भिन्न है, अहित है विनाशीक है, ऐसा जानू ता बलेश न होगा । वस्तुत  
 मैं तो केवल अपने आत्माके अन्दर गिस्त तत्वको जानता ह । सो मैं जानमात्र आत्माका अनु  
 भव करने स्वयं गुणी हूँ । देखो यह आत्मा स्वरूप बड़ा महार है ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमे  
 ही इसकी रक्षा होती है, महजस्वरूप अनाद ही इसमे भरा हुआ है । इसमे कोई अपराधन  
 नहीं है । ज्ञानका नाम ही आत्मा है, अनादमय ही यह आत्मा है, परमात्मा है । कोई पिंड  
 रूप चीज तो मैं नहीं ह । जो पकड़कर दिखाया जा सके । भैया ! जो मेरा ज्ञानस्वरूप ह  
 वह जानत है, इसीके माने आत्मा है । जानमात्र भाषाको छाड़कर अग्र हम बाह्यम मुझे  
 तो दुख ही मित्रोंग । हम तो विद्वान ठीक है, हमारेमें कोई कमी नहीं है । मामला बिल्कुल  
 तैयार है । खाना बिल्कुल तैयार है, खाओ चाहे न खाओ यह तुम्हारे विद्वानकी बात है ।



साग मामला तैयार है, मगर तुम इस अपने आत्मस्वरूपको नहीं देखते हो। अरे ये बाह्य पदार्थ जो मेरे बुद्ध नहीं है, जिनसे मेरा कोई ताल्लुक नहीं है। अरे अपने स्वरूपको न देखकर जिन बाह्यमे ही दृष्टि लगानेसे बरजादी ही बरजादी है उन्हीकी ओर झुकना यह अपने प्रभुपर अन्याय है। अगर अपने स्वरूपको देखना चाहो तो देखो और अगर न देखना चाहो तो दखो, यह तुम्हारे विवेककी बात है। अधूरापन तो बुद्ध है नहीं। मामला तो पूरा अनादिसे ही है। जिन पदार्थमे यह जीव अपना उपयोग देता है वही पदार्थ इसको मिल जाता है। कभी बड़े बड़े अनुभव किया होगा कि कोई नीबू बड़ा हो, मानो आनेका एक वाला। उसकी छोटी-छोटी फाके करो, ऐसा उपयोगमे सोचो और उसके स्वादकी कल्पना करा तो नीबूका खटास गलेमे उतरता है। जिसे पहले कि मुँहमे पानी आ जाता है। तो क्या आपने नीबूका रस का स्वाद लिया इन्जिन गलेमे खटास आई ? नहीं, नीबूके प्रति ज्ञान किया गया, ध्यान किया गया तो उससे गलेमे खटास आती।

बाहरमे से इस आत्माको कुछ नहीं मिलता स्वयमे ही कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा जो सोचेंगे वह मिनेगा। वह अपने नाकी चीज है, पदार्थोंमे लोग मान लेते हैं। पर-पदार्थोंके उपयोगसे कुछ नहीं मिलता है, केवल अपना ज्ञान परपदार्थोंके जाननेमे लगना है सो उसने जगतेसे स्वयमे ही कुछ मिलता है। मेरी आत्मामे किसी चीजका प्रवेश नहीं है। परपदार्थोंके उपयोगमे तो पर स्थान ही प्राप्त होता है और निजके उपयोगसे परका अभाव होता है। इसने तो बाहरी पदार्थको सोच लिया कि मेरा है। अरे अगर बाह्यको सोच दिया तो खुदका उपयोग नहीं रहेगा। अपने आपको यदि सोचो तो परिणाम अच्छा रहेगा। अब यह विवेक कर लो कि कहीं उपयोग लगाना चाहिये ? मुझे इज्जत नहीं चाहिए। अगर इज्जत चाहोगे तो मोहमे फसे रहोगे। मोहमे फसनेसे पराधीन रहना पड़ेगा। परमे लगनेसे दख लो लाभ है क्या ? भैया ! परपदार्थोंमे कोई लाभ नहीं है। अरे अगर उन समागमोंमे फसा रहा तो पराधीन होना पड़ेगा। सब अपनी अपनी भावनाओंसे परकी आधीनताका विकल्प करके रहतेसे अपने अपने आधीन हैं। ये सब एक ही जगहपर न जाने किस किस गतिसे आकर इकट्ठा हो गए हैं ? किसी दिन ये सब यहाँसे चल जावेंगे। इस भवमे जिनमे जन्म लिया है, क्या यहाँ कोई रह जावेगा ? नहीं, इस जगते प्राणी अपने अपने सतमे है, अपने आपमे ही परिणमते रहते हैं, उनमे किसीका रच भी सम्बन्ध नहीं है। व सब इस जगतेमे म्यय ही आए हैं और स्वय ही मिट जावेंगे। दखो यह पर्याय ही मिटेगी। सत् तो शाश्वत ही रहता, मगर उसे जानता बिरला ही कोई है। इस जगतेमे कोई किस गतिसे आया है, कोई किस गतिसे आया है। कितना समय इन पाणिपोंका यहाँपर गुजर गया ? इस ससारमे प्राणियोंने अपने विवेक को भुला दिया है, इस ससारके समागमोंको इमने अपना लिया है। अपने को

समागमने ने जानेमे कीड विवेक नहीं है। इन सब समागमोसे हटकर मैं अपने उपयोगका अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायनस्वरूपमे लाऊंगा—यही विवेक है। मैं त्रिज ज्ञाननम ही रूमी, यही प्रभुका दशन है। अपने सत्यका आग्रह ही तो सत्यका दशन होगा ही।

एक कथानक है कि एक पति जी थे। उनसे पाम कुछ गायें भर्से भी थी। पति जी ने उन गाय भर्सेको चरानेके लिए एक ग्वाला रख लिया। ग्वाला भगवानका भक्त था। एक दिन उसने एकादशीका व्रत किया, भगवानका भोग लगानेके लिए अपने मालिकम कुछ घाटा माँगा। पति जी ने उसे आधा सेर घाटा दे दिया। ग्वाला सोचना है कि इतनेमे हम खावेंगे और भगवान खावगे तो दोनो ही भूखे रह जावेंगे। उसने सोचा कि क्या करें पति ने इतना ही दिया। अचछा आधा मैं खा लूंगा और आधा भगवानको खिला दगा। अब उसने उस ग्राधे आठकी चार बाटियाँ बना ली। अब भगवानको वह देखता कि आते ही नहीं। देखो भाई उनसे सोच लिया था कि जब तक भगवान नहीं खावेंगे तब तक मैं नहीं खाऊँगा। बोना कि भगवान जल्दी आवो हमें तो भूख लगी है। सो भैया! व्यन्तर देव कीतूहल करते फिर ही करते है, सो कोई व्यन्तर पूवचारिककी चर्चाके भेपमे आ गया। बोला, भगवान यह तो खाना इतना ही है आधा ही तुम्हें मैं दूंगा। अपना आधा हिस्सा मैं ले लूंगा म भूखा क्या रूगा? खाकर जाते समय भगवानवेशी बोले कि अब हम दो जने आवेंगे। अब दूसरी एकादशीको भी पति जी ने वही आधा सेर घाटा दिया। उसने तीन बाटियाँ बनाईं। वे दोनो आ गये। ग्वालने कहा कि आज तो इतना ही है, सो जो हिस्सा बँटे सो खा लो। मैं अपना तिहाई हिस्सा लूंगा और दो तिहाई तुम दोनोके लिए रहगा। खया, जाने समय भगवान वेशी कह गये कि अबकी बार २० जने आवेंगे। ग्वाला बोला, किन ही आओ जो हिस्सा बँटे सो हो मिलेगा। तीसरी एकादशीको खाना बोना कि अब २० जने आवेंगे सा काफी भोजन रख दो। पति जी ने कि हम तो रोज भोग लगाते कोई नहीं आता। उन्हें हमके पास कैसे आन? पति जी ने २५ सेर मिठाई दे दी। ग्वाला जगलम आग्रह करके बठ गया। लगभग २०-२५ सेर का मायात ग्वालने तयार कराया था। सो बोला भगवान जल्दी आकर खाओ खूब चकाचक काम है। वहाँ तो २० आदमी आ गये। ग्वालने वह दिया कि आज तो भरपेट खावो, हम भी सब खा लेंगे। पति जी छुपकर दगते रह। सब लोगो ने खा लिन और अत्यान हो गए।

देवो भाई ग्वाला सत्यका आग्रह ले करके बठा था, इसीलिए भगवान ने न सही तो किसीने भी उसे प्रत्यक्ष दशन दिए।

मैं अग्र सत्यका आग्रह करके रह कि मैं ज्ञानस्वरूप एक सत् पदार्थ हूँ म ज्ञायक हूँ, मग प्रभु मैं ही हूँ, मरा अग्रमे कोई वास्ता नहीं है, म यथाथरूप हूँ, नाना रूपाम म

नहीं हूँ, मेरा तो काम केवल जाननका है। मैं अपने जानतत्वमें रहता हूँ, ऐसा यदि सत्यका आग्रह होगा तो यही उठे ही अपने प्रभुका दर्शन होगा अ यथा अपने प्रभुके दर्शन होना अमम्भव है। मैं अपनेमें यह विश्वास न करूँ कि मैं बाल-बच्चो वाला हूँ, परिचार वाला हूँ, नष्ट हो जाने वाला हूँ, पराधीन हूँ। ऐसे विचार यदि होंगे तो ये तो खोट विचार हैं, खोट परिणाम है, मोह है, मिथ्यात्व है। इस प्रकारका असत्यका आग्रह करनेसे अपने निज प्रभुका दर्शन नहीं हो पायगा। आजीवन क्लेश ही नजर आवेंगे। इस प्रकारके विचार यदि रहें तो ससारमें रुलना ही बना रहेगा।

भाई ! अपना दृढ़ आग्रह करो तो भना होगा, नहीं तो भला नहीं होगा। परपदार्योंका आग्रह करने पर अशांति प्राप्त होगी, अपने आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं हो पायगा। अपने उपयोगमें नगने से ही भलाई है। मैं अपने ही आपके स्वरूपमें ही अपना उपयोग ठहराने की कोशिश करूँ तो मेरा कल्याण होगा अ यथा कल्याण नहीं होगा। जैसे कहते हैं ना कि वहाँ न जाओ, यहाँ पर वनेश ही क्लेश है। ऐसे ही परपदार्योंमें न जाओ वहाँ विपदा ही विपदा है तो मैं आत्मा अपने आपके मृत्युके आग्रहका ठहराने की कोशिश करूँ और अपने में अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

मैं केवल सक्लप विकरपोको दूर करूँ तो मेरा कल्याण होगा अ यथा नहीं। जैसे कहते हैं ना कि बीबे के कौसने से टोर नहीं मरते। जम बीबा मास खाना चाहता है तो कौबेके कौसनेसे क्या गाय मर जायगी ? इसी प्रकार मेरे मोचनेसे क्या परका वमा परिणामन होगा ? नहीं। मो मैं अपनेको अपने उपयोगमें लगानेकी कोशिश करूँ तो शांति प्राप्त हो सकती है। इस आत्मामें किसी बाह्य चीजका प्रवेश न हो, मेरा आत्मस्वरूप ही मेरी दृष्टिमें रहे और मैं अपनेमें अपने लिए अपने आपमें स्वयं सुखी होऊँ।

प० दीनतराम जी कहन है कि मैं "भ्रम्यो अपनतो विमग्निं आप । अपनाये विधिक्रम पुण्य पाप ॥" मैं अपने आपको भूलकर पुण्य और पापको अपनाना फिरा। मैं क्या हूँ, इसका कुछ ज्ञान नहीं किया। किन्तु जो पुण्य और पापका उदय है उसको ही अपनाना फिरा। यह शरीर घन वैभव आदि पुण्य और पापका फल है। इसके कारण भी सुगमतासे पुण्य और पापका हुमा करते हैं। इस शरीरादिकके ही कारण मक्लेश हुआ करते हैं और इसके ही द्वारा हप हुआ करता है, ये घन वैभव पापके भी फल हो जाते हैं, इमीकी वजहसे जान चली जाती है और इसीकी वजहसे चीन आती है तो यही वैभव पुण्यके फल हो जाते हैं। इस अपनको छोडकर बाकी जिनने परपदाथ हैं उनको मानो वह सब पुण्य और पापका फल है। जब केवल कल्पना से पुण्य पाप बनते हैं तो पुण्य और पापके फलको बनाना अपनी हाथ ही तो हुआ है। जो शुद्धस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है, केवल ज्ञातादृष्ट है, ऐसा जो चैतन्यस्वरूप है उसको न

अपना पाना । फिर क्या अपनाया, कुछ नहीं । जम कहते हैं कि अपने बच्चेको अपनाओ तो कुछ मिलेगा और गैरको अपनाओगे तो कुछ नहीं मिलेगा । गैर तो गैर ही है । ऐसा नोन में कहते हैं । इसी तरह यह जो तरा स्वरूप है उसको अपनाओ, इसीसे लाभ मिलेगा । पर जो गैर है, पुण्य पापके उदयके फल हैं उनको अपनानेसे ह आत्मन् तू क्या लाभ पायगा ?

इस आत्माना यथाथ ज्ञान न होनेसे उस जगतका प्राणी यह जानना है कि पर ही सब कुछ हैं, शरीरादि ही सारी सारभूत श्रोज हैं । वह बढवाई अपने शरीरकी चाहता है परकी ही मवस्व समझना है जिमका फल बुरा होता है । देखो जीवका नाम ब्रह्म है । ब्रह्म उम कहत है जो उत्कपसे रहे । अब जिमने शरीरका मान लिया कि यह मं हू तो वह शरीरकी बढायगा जिमने इज्जत को मान लिया कि यहां मैं वह इज्जतकी बढाएगा जिसने आत्मतत्त्व को ज्ञान दशनको मान लिया कि मैं यह प्रभु हू तो वह अपना ज्ञानदशन बढाएगा । इस अज्ञानी जीव ने इस पुण्य पापके फलको अपना मान रखखा है इसीलिए उनको ही अपनाता, इससे दुखी ही होता । यह नहीं पता कि मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र, जो पकडा नहीं जा सकता, छेदा नहीं जा सकता, घेरा नहीं जा सकता, आँखोंसे दखा नहीं जा सकता ऐसा ही मैं एक चतय वस्तु हू । मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है । मैं पृथक हू, सबसे न्यारा हू । जिसकी इस प्रकारकी दृष्टि नहीं होगी उसको शांति नहीं प्राप्त हो सकती है, क्याकि एकमात्र हितका माप नहीं मिला । तू नाना प्रकारके अहितके मार्गोंमें अपने आपको खलता फिरता है । यहाँ शांति मिलेगी, वहाँ शांति मिलेगी । जगह जगह तू दूढता फिरता है परतु फल कुछ नहीं मिलता है । फलनी जगहमें ठोकर खाना है । अपने आपमें ज्ञान, अपने आपको जान । दुनियामें कुछ भी हा उमसे मेरा क्या बनता बिगडता है ? बिगडता तो केवल अपनेमें कल्पनाए बनाने से है । कल्पनाया पर ही तो यह मारा खेल जमा है । इसका फल क्या मिला ? क्लेश ही क्लेश । भावात्मक यन्न किण तो भावत्मक ही फल पाया । और हुआ क्या कल्पनाओके द्वारा ही क्लेश उठाया । देखो कल्पनार्ये भी भावात्मक हैं और क्लेश भी भावात्मक है ? इनमें अन्तर दखो क्या है कुछ नहीं । क्या पाया, कुछ नहीं । कल्पनार्ये की यानी भाव बनाया । भाव किया फल भी भाव हो गया । बात कुछ नहीं मिली । और यदि शुद्ध भाव कर दिए जायें अर्थात् ज्ञानमात्र अपने अनुभवकी अनुभवा जाय तो कोई विकल्प न आए । केवलज्ञानका अनुभव ही । कही बाहर ख्याल न जाए । ज्ञानमें एक रस हो ऐसे भाव भर जाए तब शुद्ध ज्ञानदका भाव प्राप्त कर जावोग । मैं भाव ही करता हू और भाव ही भोगता हू । जमा भाव कराने तैमा भाव होगा और कुछ करतूत नहीं । बाकी और करतूत माना ता वहा सब अंधेरा है, माया है । ऐसी इस आत्माका जिसे पता नहीं, जो स्थूल हू उह वे सम ऊठे हैं कि यह मैं हू । जरा और बुद्धि यानी, कुछ गहरायी तब पहुच गयी तो मैं रागद्वेष,

मोह, माया हूँ और अंतरमे कुछ पहिचानने चला तो जो रागद्वेषकी सतान है वह मैं हूँ । ये व्यक्तिगत रागद्वेष तो मिट जाते हैं उसे आपा नहीं कह रहा । इस रागद्वेषकी जो सतान है उसे मान गया कि यह मैं हूँ । इस तरह अनात्मस्वरूपकी तो यह पहिचान गया कि सबसे निराला, ज्ञानमात्र, सारभूत जो आत्मवस्तु है उसका स्पश नहीं होता, जिसमे सतोप प्राप्त होता । सतोप बाहर वही नहीं प्राप्त होता है, पर सतोप वही न वही तो नेगा ही । यदि यहा सतोप नहीं मिलता है तो बाहर सतोप लेगा । ऐसा अनुभव कर कि जगतमे मेरा कुछ नहीं है, मैं अविचन हूँ । तो तुम्हें शांति मिलेगी और जो माना कि मैं कुछ हूँ वहाँ दुःख मिलेगा ।

देखो भगवान् अविचन है । उसके पास न स्त्री है, न पुत्र है, केवल एक आत्मा स्वरूप ही सामने है । उसके साथ शरीर भी नहीं होता कम भी नहीं होते, क्लेश भी नहीं होते, बोलता भी नहीं, दृष्टि भी नहीं करता है । जानना तो है सब पर वह मेरी रक्षा नहीं करता है । वह केवल निराला अविचन है । ऐसे अविचन प्रभुकी उपामनासे तो बड़ी-बड़ी आशायें सिद्ध होती हैं परन्तु जो सर्किचन बन गया, जिसके वाग बगीचे, जमींदारी भी हुए, जिनमे भी वह आनन्दमग्न हुआ, परिवार, मित्रजन, इज्जतवा बढावा इत्यादि भी उसके पास हुआ, ऐसा यह सर्किचन है । उनकी सिद्धिसे, उनकी भक्तिसे, उनके लगावसे वह कुछ नहीं मिलेगा । मैं अविचन हूँ प्रभु । फिर भी उन बाह्यपदार्थोंकी भक्तिसे हमें पाप और पुण्य प्राप्त हो गया ।

देखो पहाड़ निजल है, उनपर पानीकी बूद नहीं दिखती है, पर बड़ी बड़ी नदिया पहाड़ोसे निकलती हैं पर देखनेमे एक बूद नहीं है । और जिनमे बूद नया, बहुत पानी भरा हुआ दीखता है, ऐसे जो समुद्र हैं उनसे वही भी एक नदी भी नहीं निकलती । हे प्रभो ! तू गजबका अविचन है, ऐसा मेरा स्वरूप भी अविचन है । उस अविचन स्वरूपकी भावनासे ही राग, द्वेष, लगाव, मोह इत्यादि मिटते हैं, क्योंकि ऐसी अविचन्य भावनासे भाव निमल होते हैं । ऐसी निमलताके होते हुए कम बधता है तो पुण्यकम बधता है । जो सर्किचन है जिसका परिवार विशाल है उसकी उपासनामे पापकम बनता है । क्योंकि जो सर्किचन भाव लिए है, जिसने राज्य, धन वभवसे लाभ समझ लिया है उसकी दृष्टि मनीन हो जाती है और दृष्टि मलीन होनेसे परिणाम भी मलीन हो जाते हैं । ऐसी यह जो जगतकी दृष्टि हो गई उससे ही कम बनते हैं । जब भावसे ही पाप और पुण्य कम बनते हैं तब निराय कर लो कि ऐसा क्यों है ? अरे अपना स्वरूप तो अविचन है । मैं अविचन स्वरूपकी भावना करूँ तो शुद्ध दृष्टि है और यदि सर्किचन स्वरूपकी भावना करूँ अर्थात् जगतके बाह्य पदार्थोंकी मानता फिर तो अशुद्ध दृष्टि है । जिन सारी बातोंमे हम गरवाये होते हैं अर्थात् घमंड करते हैं वे मेरी कुछ नहीं हैं । वे सब भूमे भ्रममे डालने वाली बातें हैं । जिनमे हम इतगठ हैं वे ही हमें धोसा

दती है ।

एक नगरमें एक सेठ जी थे । उन्होंने ७ खर की सुन्दर नई टिजानकी एक हवेली बनवाई । उद्घाटन करानेके लिए उन्होंने बहुतमे निमंत्रण भेजे । लोग आए । उद्घाटन हुआ । सेठ जी के यहाँ पर बहुत बड़ा जन्मा था । यह जल्सा सेठ जी के ही निमित्तमे हुआ । सेठ जी खड़े हो गए, बोले कि भाई यह हवेली जो हमने बनवायी है, जो आप लोगके सामने है उसमें जो गन्ती हुई हो बताओ, गल्ती मुधारवाऊँगा । चाहे आधी हवेली गिरवानो सड़े तो भी बोनसो बात है, उसे बनवाऊँगा अवश्य । एक व्यक्ति मत्त होकर बोला, मानो कोई जैनी हो । कहा कि सेठजी दममें दो गतिनियाँ हैं । यह मुनवर सेठ जी चौकन्ता हो गए । अपने इजीनियरों को बुलाया । इजीनियरसे कहा कि देखो यह जो गलतियाँ बतावें उनको अवश्य मुधारना । स्पयोकी परवाह नही । इजीनियर लोग बोले कि क्या गती है यह तो बताओ । यह जानी बोना कि एक गन्ती तो यह दीखती है कि यह हवेली मत्त पनी नही रहगी । सेठ जी मुनवर दग हो गए । इस गल्तीको कसे मुधार जाय । और बोला कि दूसरी गन्ती यह है कि इसके बायाने वाला भी सदा नही रहगा । सेठजी फिर मुनवर दग हो गए । बोले कि यह दो गलतियाँ कैसे मुधारी जावें कि न तो यह हवेली ही मदा रहगी और इसके बनवाने वाला भी मदा रहगा । सच है, घर कुछ नही रहेगा । जिनमे तुम इतराने हो वे तुम्हें छोखा देंगे । हजार वष पहले की बनवाई हुई हूँदेलिया तुम्हें क्या दिखाई पन्ती है ? क्या वे उम समय मजबूत नही बनवाई गई होंगी ? उनमे खूब ममाते भर भरकर बनवाया गया होगा तब भी वे हवेलियाँ नही रही । सो ये भी हवेनियाँ अवश्य बरपाद हो जावेंगी मिट जावेंगी । इन हवेनियाँके बनवाने वाले लोग भी मिट गए होंगे । तब फिर इन हवेनियामे क्यों इतराएँ ? मरा कोई जरण नही है । कोई कुछ नही है । केवल मोहके कारण जो कुछ मान स्वप्ना है वह सब मही दीखता है कि ये मेरे रक्षक हैं, वह मेरा रक्षक है । जिम प्रकारमे स्वप्नमे देखी जाने वाली बातें सही लगती है उसी प्रकारसे ये मायावी बातें भी सही मालूम होनी हैं । यदि हम स्वप्न देखते है तो सब सच लगता है उसी प्रकार मोहवा देखा आनन्द सच लगता है । अरे मेरा नही कुछ नही है । सब मिट जावेंगे । अरे जो मत्त दीखता है उसका नामो निशान भी नहीं है । उनमे विक्ल्पोको छोडकर कही कुछ नही है । राग, द्वेष मोह इत्यादिमे तो विश्वास न करो । वे सब मिट जावेंगे । ये बाह्य पदार्थ मेरे कस ही मकत है ? प्राणे का बियोग किया जाने पर बीने हुए समयको देखा जाय तो क्या इच्छाओं की पूर्ति दिखाई पन्ती है ? नहीं । जो राम हमने बल, परमों आजके लिए सोचा था क्या उसकी पूर्ति हुई है ? नहीं । जो अच्छाई हाती है क्या उनकी पूर्ति होती है ? नहीं ।

जैसा मयोग होगा वैसा ही होगा । जो कुछ हम विचार करने हैं वह नही हो पाता

है। बाह्य पदार्थों की रचना यह सब करने उद्योगी काम है। फिर क्या चाहिए कि ज्ञान द हो जाय ? अरे ज्ञान द नहीं होगा यदि तू बाह्यमे दृष्टि लगाए रहा। हृ जगतके प्राणी। यदि तुम्हें ज्ञानद प्राप्त करना है तो तू अपनी जिदको छोड़ द। जिद करना तो अच्छा नहा होता है।

एक बड़ी जिद करने वाली स्त्री थी और अपनी जिदके कारण अपने पतिको बमब किए हुए थी। जो चाहती थी सो करवाती थी। एक दिन उस स्त्री का मन ऐसा आया कि पतिकी मूछ मुडवाऊंगी। पति साहब तो मूछ मुडवाता नहीं चाहते थे। इसलिए वह पेट दद का वहाना करके बीमार बन गई। बहुतसे डाक्टर पतिने बुलाये, डाक्टरने दवा की, फिर भी दर्द नहीं मिटा। तब पति बोला कि कैसे मिटेगा दर्द ? स्त्री बोनी कि एक दवता आया ह वह कहता है कि बल मुवह तक मृत्यु हो जायगी। मृत्युसे बचनेना सिफ एक उपाय है। जो तुम्हें प्यार करे वह यदि मूछ मुडवाकर मरने आए तो ठीक हा जायगी। पतिने मूछ मुडवाली। अब वह स्त्री गेज चक्की पीमत समय गावे कि अपनी टेक रखाइ, पतिकी मूछ मुडवाई। पति बड़ा दुखी हुआ कि इमने मरी मूछ मुडवाई और अब ताना मारती है। उसने अपने ससुरालको जल्दी ही पत्र भेज दिया कि तुम्हारी लडकी मरत बीमार है देखना हो तो दख जावो, वह बच नहीं सकती। एक देवतान बचनेका उपाय बताया है कि इसका जो प्यार करते हो यदि व मूछ मुडवा करके आवेंगे ता ठीक होगी वरना ठीक नहीं होगी। अब क्या था ? पत्र पात हो उम स्त्रीका पिता, भाई, चाचा, बाया सभी अपने अपने बाल सया मूछ जिसके पाम जो था मुडवा करके रातको ही वहाँमे चल दिय। लगभग ४ बज के करीब जब कि वह स्त्री पीम रही थी, अपना नित्यका गीत गा रही थी कि अपनी टेक रखाई पतिकी मूछ मुडवाई नभी वह सब लोग वहाँ पहुँच गए। वह स्त्री बार बार वही गीत गा रही थी—अपनी टेक रखाइ, पतिकी मूछ मुडवाई। अब उस पतिने पीछे मे आकर कहा कि पीछे देख लुगाई, मुण्डाकी पल्टन आई। अर जिद करना क्या ह ? जिद किया तो क्या, न किया तो क्या ? उससे तुभ लाभ नहीं प्राप्त होनेका है। बताओ जिद करने से क्या मिलता है ?

भाई अपने परिणामोंको शुद्ध रखना चाहिए। शुद्ध परिणामोंके रखनेका उपाय यह है कि अपनेको आँकन मानो। यह समझ ना कि मेरा जगतमे कुछ नहीं है। जो कुछ भी जगतमे दीखता है सब जजाल है। अर तू अपने विषयकपायोको भूल जा तो तुम्हें ज्ञानद प्राप्त होगा। नहीं तो आजीवन बलश हो रह्य। यदि तू इन मायामयी मूर्तियोंमे ही फसा रहा, इन बाह्य पदार्थोंकी ही अपनाता रहा तो तरे परिणाम बुर हा जावेंगे और जीवनमे कभी सुख नहीं प्राप्त होगा और यदि तू इन बाह्य पदार्थोंमे न फसकर अपने आत्मचित्तमे समय व्यतीत किया तो तुम्हें सुख सवाको प्राप्त होगा।

आप कहोगे वाह क्या करें जब भूख लगती है तब भोजनका म्याल तो आता ही है । घर भाई जब भूख है तब भोजनका म्याल कर लो, किन्तु जब भरपेट है तब तो कुछ अपनी भी मोचो । बाह्यमे दृष्टि करनेमे बाह्यही ही म्याल ही जानी है और जहाँ उन बाह्य वस्तुओं मे फसा नहीं वनश उत्पन्न हा जात है । अरे उन बाह्य पदार्थोंका म्याल करनेमे आत्माका हित नहीं होगा । कभी कभी तो तू अपने निजस्वरूपका चिन्तन कर । ५ मिनटका समय तो कमसे कम आत्मचिन्तनमे दो । तू बाह्य पदार्थोंको अपना सबस्व न मान क्योंकि तूने तरा हित नहीं होगा । तू अपने आत्मस्वरूपका म्याल कर, गार विकल्प जो बो धूप हैं उनको भूला तो तेरा हित होगा । तू उन विकल्पोंका स्मरण कर जिनको पहिले किया उनके फलमे क्या कुछ अब रहा है ? नहीं तो विकल्प कहाँ है ? विकल्प कही दिखत नहीं है और यदि दिखत हो तो दिखा दो । इनका रंग बँसा होता है किम रूपके होने हैं ? अरे विकल्पोंकी शकल मूरत नहीं होनी । केवल कल्पनाएँ बना लेनेमे विकल्प हा जान है । एक समय जब कि बूँदें पड़ रही थी, झापडीम पानी सू रहा था, झोपडीके पास शेर खडा था । झापडीम एक व्यक्ति बोला कि इतना तो शेरका भी डर नहीं जितना टपकेका डर है । जितना टपका परेशान करता है उतना तो यह शेर नहीं परेशान करता है । पासके शेरने समझा कि टपका कोई मुझम भी बहादुर है । उसो समय एक कुम्हारका गधा खो गया था । वह रातमे दँड रहा था । जात-जाते जहाँपर शेर खडा था वहाँपर पहुँचा । वह शेरको गधा समझ गया था । भट उमे गधा समझकर उमका वान पकड लिया । अब शेर यह समझता है कि टपका घा गया । उसन उम शेरके ऊपर डडे भी चलाए । शेरने सत्र सह लिया । उमन शेरको बाडीमे बाँध दिया था । जब सवेरा हुआ तो दगा कि यहा तो टपका बपका कुछ नहीं है । तब शेरने छनाग मारी और चन दिया । उम शरने विकल्प बनाकर ऐसा भाव बनाया कि घर यह तो टपका आ गया, डर गया । इसी तरह यह विकल्प कुछ नहीं है । य विकल्प पकडम नहीं आत । कुछ कनेश नहीं करत, फिर भी विकल्पोंके आधीन होकर यह विकल्पोका दास हो गया और वँमे ही परिणाम हो गए । और जब विकल्पोके द्वारा इस प्रकारके परिणाम हो जाते है ता शांति नहीं रहती है, चन नहा आती है । इस प्रकार यह जीव अपने आपमे विकल्प बनाकर, कर्माँ फलोको अपनाकर व्यर्थ ही दुःखी हाता है । तो अच्छा यह है कि जितना अधिक ज्ञानका उपयोग मिन, आत्मचरित्रका शिपण मिले उतना ही अच्छा फल है । ह आ मन् ! तू अपनी वतमान अवस्थाको मायारूप मानकर, अपनी आत्माको पहिचानकर सत्ता स्वाधीन हो और स य सुखी हो ।

एक राजा और रानी थ । राजाका मन धम करनेम कम था । रानी बहुत सम-



भाया करती थी कि राजा धम करो, मसारके वंभवमे गव न करो । तब राजा कहते कि-हम क्या करें ? धमका फल हमको मिल चुका, हमे अब धमकी क्या जरूरत ? रातों एक दिन कह दिया कि तुमने राजाजी सकल मुख किए पर धम नहीं किया, इसलिए जब मरोगे तब उठ बनोगे । कुछ दिन बाद राजा मरे और उठ बन गए । वह एक बादशाहके घरमे ऊट पंदा हुए । थोड़े दिन बादमे रानी भी गुजर गई और वह उमी बादशाहकी लडकी हुई । अब जब लडकी विवाह योग्य हुई । थोड़े दिन बादमे विवाह भी हुआ । अब उस लडकीकी मा ने यह सोचा कि इसके दहजमे कोई अच्छी चीज दू ऊट बडा सुन्दर है उमे मे दहजमे द दू । बादशाहरा भी विचार ऊट दहजमे देनेका हो गया । दहजमे उठ दे दिया । अब ऊट भी बागनके साथ जा रहा था । बारात वालीने सोचा कि ऊटमे कुछ मामान लाद ले जावें । नटकीवा लहगा, साडी तथा अय कपडे इत्यादि मूख्यवान चीज ममभकर लाद दिये, जो कुछ वे वे सब ऊटपर लाद लिये । अब रास्तेमे ऊटको अपने पिछने चमका स्मरण होता है और दुखी होता है । हाय ! अपनी स्त्रीका लहगा, साडी इत्यादि अपने ऊपर लादा है । इस प्रकारसे वह मनमे विचारकर दुखी होता है उसमे चला नहीं जा रहा है । नीकर डंडे भी चगाना है पर दुखी होनेके कारण उसमे चला नहीं जाता है । अब लडकीकी भी स्मरण हो गया कि यह ऊट तो मेरा पूज जाममे पति था, परन्तु अब धम न करनेके कारण ऊट बन गया है । यही कारण है कि दुखके कारण उसमे चला नहीं जा रहा है । लडकीने नीकरसे कहा कि भाई मारो मत । हम उसे समझा देंगी तब चलेगा । ऊट भी पहचान गया । लडकी भी पहचान गई । स्त्री कहती है ऊटम कि देखो पूज जामोमे तुम हमारा पति थे और धम न करनेके कारण तुम ऊट बन गये हो । परन्तु यह मर पति है ऐसा कहनेम तो मुझे शम लगती है सो मैं तो कहूंगी नहीं । अब तो चलनेमे ही कुशल है । चलना तो पडेगा ही अथवा उडे लगेंगे । यही हान यहाके समस्त प्राणियोंका है कि वे धम नहीं करने समारमे वही ऊट वही कीड मक्कोडे, कही कुठ वही कुछ न ना प्रकार जीव हो जाने हैं । देखो ना, राजान धम नहीं किया था इसलिए ऊट बन गया था । तो ऊटकी ही बात नहीं, कुछ भी अटमट बन जावें ।

ह ध्यात्मन्, जो धम नहीं करता वह मरकर दुगतिका पात्र होगा । इस जीवमे दुनियाका बाह्य कुछ नहीं है । सब भिन भिन पदार्थ है । वे एक दूसरेका कुछ नहीं कर सकते हैं । इन कारण यह मनुष्य भव पाया है । इस मनुष्य भवमे सब तरफके रास्ते खुले हैं । यदि य मनुष्य चाह तो वीचे मवाडे बन सकत है, पगु पभी बन सकत हैं, दव बन सकत है, मनुष्य बन सकत हैं । मार रास्त इस मनुष्यभवम खुले हैं । नारकी मरकर नारकी व देव नहीं हो सकता, दव मरकर दव व नारकी नहीं हो सकता । पर इस मनुष्यभवमे जो चाहे

वसा ही बन सकता है। तो धमके लिए करना क्या है? धमके लिए दान करना है क्या धम करना है क्या? अर भीतरमे यह ज्ञान बनाना है कि यह तन धन मेरा नहीं है। मैं तो सभमे निराला हूँ, ज्ञानमात्र हूँ, पायकस्वरूप हूँ। अय मैं कुछ नहीं हूँ। मेरा किसी अय मे सम्बन्ध नहीं है। मैं अपने आपको सबसे निराला ज्ञानमात्र हूँ। यही धम है और धम वह नहीं है कि मेरे मित्र भी मिल जावें, मेरे कुटुम्बके लोग भी मिल जावें मेरा धन भी मिल जावे। इसी उद्दृश्यमे व धम करते हैं तो धम नहीं कहा जाता है। दखो अपने आपमे यही धमका पालन ह, यही तप और समय है। धम पालनके लिए ब्राह्म तप और मयम दोनो करने पडते है जिससे कि, हमारा उपयोग स्वच्छन्द न हो जाय, हमारा उपयोग विषय वषायोम न हो जाय।

आज देखो बहुतसे लोग उपवास किए हैं। शरीरको बष्ट द रट हैं। बडी तक्लीफ मट रट है किसलिय कि वम हो। धम है विषय वषायमे छूटना। सो यह उपवासात्मिक उमम महायक हैं। अर धम करलो। धर्म केवल धममे है, निज स्वभावमे है शुद्ध ज्ञानमे है। बाह्य की केवल जानकारी कर लो। परपशय पूरे है। वे अपनी सत्तामे हैं। मेरा गुण पर्याय मेरमे है, उनका गुणपर्याय उनमे है। एक का दूसरमे रच भी मवध नहीं है। एक दूसरका कुछ नहीं करेगा। हाँ दूसरका निमित्त पाकर अपना विभाव कर लेव। मगर किसी को कुछ नहीं करता है। ऐसा स्वय आजादस्वरूप मैं वन पदार्थोको देखू। ऐसा अपने आप को दखो तो वहाँ क्या घट जाता है। एसा मनमे भाव न रहना चाहिए कि यह मेरा है, यह उमका है। यथाय स्वतंत्र वस्तु स्वरूपका पान कर लेना ही परमायमे त्याग है।

जमे दो आदमी है। अपनी-अपनी चादर धोबीके बोनेके लिए देत है। दो तीन दिन बाद एक आदमी धोबीके घर चादर लेने चला गया तो धोबी ने दूसरे व्यक्तिकी भूलम बदल करके चादर दे दी। उस व्यक्तिने तो मोचा कि हाँ यह मेरी चादर है। वह अपने घर गया और चादर तान कर मो गया। अब वह दूसरा व्यक्ति जो अपनी चादर लेने गया तो वह जब धोबीके पास आया तो धोबी ने जो चादर निकाल कर दी उस उमने कहा कि यह मेरी नहीं है। यह तो किसी दूसरकी है। धोबी ने कहा कि अरे वह ता बदल गई है। तुम तो उम न्यक्तिको जानते हो जो साथ आया था उसीके पाम वह चादर चली गयी है। सो वह व्यक्ति उमीके घर जाता है जिममे चादर बदल गयी थी। जब वह वहाँ गया तो दखा कि चादर ताने वह सो रहा था। बोला कि आपमे मेरी चादर बदल गयी है मा अब मेगे चादरको दे दीजिए। यह जाग जाता है और देखता है कि मेरी चादरमे कोई निशान है कि नहीं। कोई दाग हो या फटा हो। चादरमे दखा तो कोई निशान नहीं। म२ चादर मेरी नहीं है, एसा माचते ही उसका चादरना त्याग हो गया। भीतरमे ज्ञान हो गया कि यह मेरी

चादर नहीं है। देखो भीतरसे ज्ञान उसका मही बन गया। मही ज्ञान बन जानेसे यह ज्ञान हो गया कि य मेरी नहीं है उपयोगमे चारखा त्याग कर दिया। इसी तरह गैर पदार्थ जिन पदार्थोंमें मोही रत हो रह है। कुटुम्ब, परिवार इत्यादि जो सामने हैं, उनको भि न ममत्त कर निश्चय कर लो कि तेरा कोई नहीं है। तेरा मित्र तू ही है।

तू अपने आपको देख, अपने आपको पहिचान, तब तो तेरा गुजाग चलैगा, तही तो तेरा गुजारा नहीं हो सकता है। तू ऐसा ममत्त कि यह मेरा नहीं है। जब तू ऐसा ममत्तैगा कि ये मेरे नहीं है तो तेरा मोह और क्लृप्त खत्म हा जायगा। और यदि तू भून करके अपने कुटुम्ब परिवार इत्यादिमें ही पडा रहना है तो तेरेमें विपदाएँ समाप्त नहीं होगी। तू अपने आपमें सच्चा ज्ञान जगा कि ये सब कुछ मेरा नहीं है तो वही त्याग होगा। अपना घर परिवार बच्चे इत्यादिमें ऐसा भाव बनाओ कि ये मेरा नहीं हैं मैं तो सबमें निराला हू, नानमात्र हू। इतने भाव यदि अपने मनमें बना लिया तो मही भाग पर अपने को समझे। अथवा कितने ही धमके नाम पर काम करने पड़े तो भी कुछ नहीं हागा। अपना ज्ञान सही बनाओ। सही ज्ञान स्वयं स्वरूप ही है। निजको निज परका पर जान।' अर तू अपने आपका देख। वही तरा सब कुछ है। तेरी रक्षा वही करगा। और जो पर है उहे तू पर ही जान। उनसे तेरा कुछ हित नहीं होनेका है। धमके नियम वाचन वाय कृत काम धम भावकी मददके लिय हैं। सो सामायिक करो या भक्ति करो या स्वाध्याय करो उन सब प्रसंगोंके बीच अपना ऐसा ध्यान हो कि अपने आपको निराल' मान लो। यह विचार मन बनाओ कि दस लक्षणमें धमकाय करनेमें ज्यादा धम होना है, अन्य दिनोंमें धम करनेसे कम होता है। कमको यह पता नहीं है कि जनोके अब दम लक्षण चन रहे है। कम इस बात पर बंटे हैं कि परदृष्टिके भाव हो तो हमाग वश बढे। सो भैया धम तो बारहो महीना करने की चीज है। अभी पूजा करो, भक्ति करा, ठीक है क्योकि धमका कुछ लेश किये बिना कम भी नहीं छूटते। परन्तु दम लक्षणमें धम करोग तो कम अधिक मेहरबानी रवेंग, ऐसा नहीं है। कमोका पता नहीं है कि जनोके य दम लक्षण है। कमका तो विभावसे निमित्तनमित्तिक सबव है। १२ महीने सदा इस तरहसे सही परिणाम बनानेमें आत्माका पूरा पड जायगा। इस आत्माके विभावके कारण कम बन जावेंग। चाह दम नक्षण हो, चाह और दिन हो उसे कुछ पता नहीं चलता है। तो सतोप न करो कि हमने तो धम कर लिया। अरे ये बात तो १२ माहो चलनी चाहिए।

दस लक्षणके बाद क्षमावणी आती है। यह क्षमावणी भी मेरी दयावै लिये है। अपने आपमें दूसरेके बारेमें द्वेषका भाव आता है तो भाई उस द्वेषसे खुद की हिंसा होनी है। भई द्वेषको छोडकर आत्ममिलन सबमें होना चाहिए। खुदको कलकित जीवनमें रखनेसे

दुःख होना है, कत्रकरहित रहनेका जिस स्थाल होता है उसे शांति प्राप्त हो जाती है । यदि अपने आगमे शांति प्राप्त हो जाती है तो समस्त पाप धुल जाते हैं । कोई किसी दूसरे पर दया नहीं करता है । यदि अपने आपमें अपनी दया हो तो टीक रहता है । यदि अपने आपमें दया नहीं है तो धम याने सवर गिजरा रही होती है, कर्मोंका मकय चलता रहता है । ह मातनन् ! तू अपने आपपर सच्चे दिलम क्षमा कर दे । यही है मरुत जीवन, यही है मयम । जो जो ये जीव यहाँ पर गाए हैं उन्हें तुम नहीं जानते हा कि किस गतिमें आए ह ? जा-जा य जाव है उन्हें तुम बता नहीं सकते कि किनो दिनोके लिए गाए हैं ? इसका च भी पता नहीं है फिर आग चलो ता य जगन्के प्राणी सब कपाय भर हुए हैं इनसो किसीमें रैर, ईप्या रखनेका क्या प्रयोजन पटा है, इसलिए सबको क्षमा करो । ऐसा न करो कि जो दाम्त हैं उनम क्या भिटाते हुए चला घोर जिसे जग सी सटपट है उनस बात भी नहीं करो । इस तरह से अपनेम जो अहंकार भरा हुआ है उगीमें यदि बने रहते हैं तो हम दूसरो पर क्या खुद पर भी क्षमा नहा करते हैं, क्योंकि स्वपर दया करने भी अपने आपका हम क्षमा करने वाल हैं । क्षमावली अपने आप पर दया करनेके लिए है । अपनेमें अगर दयाका भाव आना है तो अपने हृदयमें क्षमा कर लेना चाहिए । यही अपनेम धूरना है । दूसरोको क्षमा कर देनेमें क्या हरज है ? अरे इसमें लेना देना कुछ नहीं है । वमें तो यही भी कुछ नहीं लेने देने पटन है । केवन माय बना लिए जात हैं । अरे केवल इतना क्षमाका भाव बना लेनम ही तिरतर आन द प्राप्त होता है ।

एक नगरम दो मेठ थे । मान लो कि एकके पास दा लाखका धन था और दूसरके पास २० लाखका धन था । दोना ही एक दूसरेका ईप्याकी दृष्टिमें खन थे । दानोमें कपाय बन गई थी । दोनो ही एक दूसरेसे बोलत प थे । एक दिन ऐसा हुआ कि एक ही साथ दोनोके मनमें आया कि हम नितना कपाय भरे हुए हैं, यह कपाय हमारे लिए बुरा है ? कपाय नहीं करना चाहिए । इस प्रकारका अनुभव दानोम एक ही माय हुआ । अब दोना ही एक दूसरेके मिलनेके लिए और अपनी कपाय भावना से निवृत्ति प्राप्त करनेके लिए अपने अपने घरम चल पडे । एक सेठ अपनी कारस चला और दूसरा तांग से चला । दानो ही रास्नेमें एक दूसरेका मिले । कुछ भी दोनोसे बाला नहीं गया । व तो दोना ही एक दूसरेसे मिलकर गद्गद् हो विचारने लग कि देखो हम लोग नितने कपायमें थे ? हम दोनो एक दूसरेसे बन तब रही करत थे । अब हम परस्पर मिलकर रहना चाहिए और कपाय भावना का निरस्कार कर देना चाहिए । अब दोनो एक दूसरेसे चोने लग और दानो ही मिलकर रहने लग । ह जगन्के प्राणी ! तू अपनेमें दयाका भाव ला । यदि दयाका भाव रही लाता है, क्षमाका भाव रही लाता है तो तुम्हे जन्म मरणक चक्कर लगान पडेंगे । अरे तू तो अपने

आपको भूल गया है, तेरे मे तो भूलने का कोई काम ही नहीं है। तब फिर तू अपने को क्या भूत रहा है ? तू अपनेमे दया और क्षमाभाव ला। दया के दोनो सेठ अपने आपमे दया और क्षमाका भाव लाए, इसलिए परस्पर बोलचाल हो गई। इतना ही नहीं दोनो ही शान्ति से जीवन बिताने लगे।

है आत्मन्। किसी दूसरेसे ईर्ष्या भी भावना नहीं करनी चाहिए। अपने आपमे कपाय किंचित् मात्र भी नहीं लाना चाहिए। अपने को जान लो कि मैं सबसे गिराना हूँ, नानस्वरूप हूँ। मुझे अपने आप पर तथा दूसरा पर धमा करनी चाहिए।

पदार्थोंके जाननेके प्रसंगमे तीन बातें हुआ करती हैं। 'एक तो शब्दपदाथ, दूसरे अर्थपदाथ और तीसरे ज्ञानपदाथ। जैसे यह चीनी है तो यह तीन तरहकी होगी। शब्दचीकी, अर्थचीकी और ज्ञानचीकी। घरमे भी शब्दघर, अर्थघर और ज्ञानघर—य तीन हुआ करते हैं। शब्दचीकीके माने चीकी ये दो अक्षर। मुझसे जो बोना जा रहा है कि यह तो चीनी है या किसी कागजपर लिख दिया जाय कि 'चीकी और अगर आपमे पूछे कि यह क्या है तो क्या कहोगे ? यह चीकी है तो यह हुआ शब्दचीकी। यह काम करने वाली चीकी नहीं है। जैसे रोटी है, उसमे भी शब्दरोटी, अर्थरोटी और ज्ञानरोटी—य तीन प्रकारसे समझना चाहिये। रोटी शब्द विसी कागजपर लिख दिया जाय और आपमे पूछें कि बतलाइए यह क्या है तो आप नहोगे रोटी है, यह रोटी किसी कामकी नहा है, इसमे क्या घातना पट भर जायगा, भूख मिट जायगी। वह अर्थरोटी नहीं है, वह तो शब्दरोटी है। अर्थरोटी तो वह है जो बनी हुई होनी है, जिम्को खाने है। अगर ज्ञानरोटीके माने यह है कि रोटीके बारेमे जो ज्ञान होता है। इसी तरह अर्थचीकी वह है जिसपर पुस्तक रचन है और ज्ञानचीकी वह है कि जो चीनीके बारेमे ज्ञान होता है, उस ज्ञानका नाम है ज्ञानचीकी। इस तरह पदाथमे तीन चीजें ह, शब्दपदाथ, अर्थपदाथ और ज्ञानपदाथ। इसी तरह 'नोक' भी तीन तरहसे देखो शब्दनोक, अर्थनोक व ज्ञाननोक। यह जितना भी 'नोक' है, यह दुनिया जितनी है वह है अर्थनोक। क्या अर्थनोक मेरा है ? नहीं मेरा नहीं है। वह तो मुझमे भिन्न है, वह मेरा नहीं है। जो 'लोक' शब्द लिखा है या लोक शब्द बोले तो क्या वह लोक मेरा है, नहीं। यह तो केवल शब्द लिखा है। यह तो शब्दनोक है। यह शब्दनोक मेरा है क्या ? नहीं यह मेरा नहीं है। शब्द भी मुझमे भिन्न है।

दुनियाके बारेमे जो ज्ञान हाता है वह ज्ञाननोक है। वह मेरा पर्याय है फिर भी मेरा नहीं है, क्योंकि वह विकल्प है। यह विकल्प नष्ट तो हो जाता है, पर इस विकल्पके नष्ट हो जानेसे क्या यह 'नोक' भी स्वतन्त्र हो जाता है ? और भी समझ लीजिए। एक चीकीको समझ लीजिए। शब्दचीकी, अर्थचीकी और ज्ञानचीकी होती है, पर आपको दिखनी केवल

एक यह अर्थचोकी है। शब्द एक बोला गया। वह क्या है शब्दचोकी। जिसपर यह किताब रखते है यह क्या है? यह है अर्थचोकी और चोकीके सम्बन्धमे जो पान बन रहा वह है ज्ञानचोकी। उस शब्दचोकीमे क्या हमारा कुछ लगता है? नहीं। वह तो शब्द है, अक्षर है, वह तो हमसे भिन्न है। क्या अर्थचोकी हमारी है, नहीं वह हमारी नहीं है, वह हमसे भिन्न है। ज्ञानचोकीको अपनी कह सकते हो। वह विकल्प मात्र ही तो है। उस कल्पनाके नष्ट हो जानपर क्या यह चोकी भी नष्ट हो जाती है? नहीं। चोकी नष्ट होती है उसकी ही परिणतिमे। इसी तरह यह लोक मेरा नहीं है। लोक अज्ञात है ऐसा भी नहीं है। जाननेमे यह लोक आ रहा है, मगर वह जानना क्या है? विकल्प है। जानना एक पर्याय है। उसके नष्ट हो जानेपर यह लोक नष्ट हो जाता है। क्या यह सब कुछ लोकमे नहीं है, ये मेरा नहीं है, अब मैं क्या रहा? केवल एक ज्ञानमात्र ही रहा है। दखो भगवान को तो। उस भगवान की भी तीन किस्म हैं—शब्दभगवान अर्थभगवान और पानभगवान। मैं मुखमे भगवान शब्द बोल दू या किसी कागजपर भगवान शब्द लिख दू तो वह क्या है? वह क्या भगवान है, कौनसा भगवान है? अरे वह ज्ञानी भगवान नहीं है, वह तो शब्दभगवान है। अर्थभगवान कौन है? सयोगकेवली, अयोगकेवली व गुणस्थानातीत—ये है अर्थभगवान। जैसा भगवान है उस भगवानके बारेमे जितना ज्ञान होता है वह ज्ञानभगवान कहा जाता है। भगवानके बारेमे जो विकल्प होना है, ज्ञान होता है वह जैसा भगवान है? ज्ञानभगवान है। तो आपकी भेंट क्या उस शब्दभगवानसे हो सकती है, अर्थभगवानसे हो सकती है? नहीं। उस ज्ञानभगवानसे ही हमारी भेंट हो सकती है। भगवानके बारेमे हम जान जाते और उसी जाननेमे हम तमय हो जाते तो उस भगवानमे भेंट हो सकती है। शब्दभगवान तो अर्थ पदाय है उसे मैं नहीं जान सकता। मैं तो केवल ज्ञानभगवानको ही जान सकता हूँ, उस ज्ञानभगवानको ही पूज सकता हूँ। मैं ज्ञानभगवानको ही भक्ति किया करता हूँ। मैं शब्द-भगवान तथा अर्थभगवानकी भक्ति नहीं करता हूँ, कर नहीं सकता हूँ। कुटुम्बकी बात दखा। पुत्रमे भी शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र होते हैं। जरा शब्दपुत्रसे कहो कि एक गिलास पानी ला दो तो क्या वह ला देगा? अरे वह तो किसी कागजपर पुत्र शब्द लिखा है या बोला हुआ शब्द पुद्गल है वह कैसे पानी ला देगा? शब्दपुत्रको यदि मुखसे बोल दो कि पुत्र पानी ला दो तो क्या वह पानी ला देगा, नहीं। अब अर्थपुत्रको दखो जो कि घरमे बठा है, दो हाथ, दो पर वाना है, जो पुत्र आपके घरमे जन्मा होवे वह है अर्थपुत्र। ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमे ज्ञान वाक्य, समझ बनाव। आप यह बतलाइए कि शब्दपुत्रमे आप माह करते हैं। अरे शब्दपुत्रमे तो तू मोह करगा नहीं, क्योंकि वह तो भाव व आकार पुद्गलकी पर्याय है, भिन्न चीज है, उसमे तू तमय नहीं हो सकता है। आप तो अपने ज्ञानपर्यायमे तू तमय

हैं। शब्दपुत्रसे तो तू मोह करगा नहीं। तो क्या तू अथपुत्रसे मोह करता है जो घरमे बैठा हुआ है? वह भी अय्यपदाथ है उसमे भी तरी पर्याय नहीं पहुचती, उससे भी तू मोह नहीं करता। क्या उम शब्दपुत्रसे आप मोह कर सकते है? अरं तू शब्दपुत्रसे मोह नहीं करता है और न कर सकता है। क्योंकि वह तो भिन्न पदार्थ है। अथपुत्रसे भी तू मोह नहीं कर सकता। पुत्रके बारेमे जो विकल्प बनाया, जो ज्ञानकी परिणति बनाया उस ज्ञानपुत्रमे ही तू मोह करता है। इस तरहमे आप ज्ञानपुत्रसे मोह करते है अर्थात् पुत्रके बारेमे जो आपको विकल्प होते है वे विकल्प आप मोहसे करते है, उन विकल्पोमे आप मोह करते है, पुत्रमे आप मोह नहीं करते है। यह यथाथ बात कही जा रही है। यह भी मममनेकी चीज है जिससे कि मोह घटता है। अरे मोह करते ही आकुलताए है। बाह्य तो बाह्य ही है। मैं तो अपने ही विकल्पमे तमय हू। मैं अपने ही विकल्पसे मोह करता हू और अपने ही विकल्पसे जला मुना करना हू। दूसरोमे मैं न राग कर पाता न द्वेष कर पाता। मैं तो अपने आपमे ही राग और द्वेष किया करता हू। और इसी कारण मेर विकल्प नष्ट हान रहते है और बनते रहते ह। इसी तरह मेरे विकल्पोके नष्ट होनेसे क्या वे बाह्य पदाथ भी नष्ट हो जाते है या वे बन जाते है। नहीं वे अपने स्वरूप चतुष्टयसे ही आविभूत होते है। वे वे ही है और हम हम ही है। ये सारी बाह्य चीजें कुछ भी मेरी नहीं है। ये धन, पुत्र, मित्र, परिवार यह सब ठाठ बाट मेरा कुछ नहीं है। मेरा तो मात्र मैं ही हू। यह लोक मेरा नहीं है। मैं तो जानस्वरूप हू इसमे लोक अज्ञात भी नहीं है और यह मुझसे पान छिपा हुआ नहीं है। यह पानमे जाननेमे सब कुछ आयगा। जाननेमे आ गया और जानना अगर मित गया तो चीज नहीं मित जाती है।

जितने भी शास्त्र ज्ञान देने है उनका तत्व यह है कि भाई एसी अय्य चीज अन्य ही है और मुझमे मैं ही हू, परमे पर है। व सब अपनेसे भिन्न हैं। फिर खोटी कल्पनाएँ करना कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है? जम बाह्य वस्तुको मुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो, असलमे देखो तो वही निमित्तरूपसे दुखका कारण बन रहा है। कोन से ऐसे पदाथ हैं जो मेरी शक्तिके कारण है।

एक गुरु शिष्य थे। शिष्य गुरुके पास पढ़ने आता था। एक दिन वह देरसे आया। गुरु जी ने पूछा कि क्यों दग्ने आए? शर्मिलि शब्दामे कहने लगा कि सगाई हो रही था। गुरु जी कहने लगे कि अब तुम गावसे गए अर्थात् अब गावसे मोह नहीं रहा। सगाई हुई कि गाव से गए। जहाँ सगाई की वही दृष्टि गई। अब तो तुम्हारा घरसे भी मोह नहीं रहगा। कई दिन बाद फिर वह देरसे पहुचा। गुरु जी ने पूछा कि क्यों देर हो गई? शिष्यने कहा कि, शादी हो गई। गुरुने कहा कि अब तो तू अपने माँ बापसे गया। उनको तू नहीं पूछेगा। इगा

तर्हमे गुरुने कहा कि कुछ दिन बादमे बच्चे होंगे तो तब तो तू अपनेमे भी जायगा । तू उन बच्चोंमे ही नगा रहगा । बमायेगा, खिलायेगा, उनका पालन पोषण करगा । इस तरह तू बाहर बाहर ही रहगा और अपने आपकी भूल जायगा । अरे ये तो बाहरी पदाथ हैं । इनमे तू क्यों पटना है, इनमे ही तेरेमे आबुलताएँ आबेंगी और तुझे ज्ञाति नहीं प्राप्त होगी । अरे यह ज्ञानमे ज्ञान है । मुझमे मैं हूँ और बाह्यमे बाह्य हैं । ये मत्र स्पष्ट भिन्न भिन्न रूपोंमे नजर आते हैं । मत्र अपना भिन्न भिन्न अस्तित्व रखते हैं । यदि ऐसी दृष्टि आवे तो उसे ज्ञान कहते हैं । पान हो और मोह दूर न हो—यह नहीं हो सकता है । पानका स्वभाव ही माहवे आवरणको हटाता है । मूयका जब उदय होना है तो अघवार मिट जाता है । इसी प्रकार भीतर मे जब ज्ञान उग तो मोहका अघवार मिट जाता है । और मोहका अघवार पानके उदयपर मिट नहीं, यह नहीं हो सकता है । यदि मोह अभी मिटा नहीं है तो समझो कि अभी पानका उदय नहीं हुआ है । ज्ञानके होनेपर राग तो कदाचित् हो सकता है पर मोह नहीं हो सकता है । राग और मोहमे अन्तर है । राग बहने हैं उसे जो बाह्य वस्तुमें मुहा जावें और मोह कहते हैं उसे जो बाह्यको यह समझे कि मेरा है । बाह्य वस्तुमे ममत्वको मान लेना ही मोह है और बाह्य वस्तुमें मुहा जानेका नाम ही राग है ।

मोहमे है अज्ञानताका अधेरा और रागमे है परमे लगाव । पान होनेपर परमे लगाव तो हो सकता है पर अज्ञानताका अधेरा नहीं रह सकता है । यह मोह तो उत्पन्न होता है लगावमे, लगाव रखनेसे । लगाव परवस्तुवामे हो जाता है और उन परवस्तुवामे लगाव ही जानेसे विकल्प हो जाता है और उस विकल्पके रहनेसे मोह उत्पन्न हो जाता है । जिस कहते हैं रागमें राग, परवस्तुवामे राग हो गया । अर यह राग मैं हूँ । रागसे ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है, यह हुआ रागना राग । रागमें राग हो जानेका नाम ही मिथ्यात्व है यह महान् अघकार है । मो में परपदाथरूप नहीं हूँ । परपदाथके विषयमे हाने वाला जो सकल्प विकल्प का जाल है उसरूप मैं नहीं हूँ । मैं तो अन्त आनन्दरूप, शैकालिक ज्ञानस्वरूप हूँ । सो मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ । अब मैं क्या हूँ ? इस विषयमे सोचिय—

मैं दहम ठहरा हुआ हूँ फिर भी मैं देहसे नहीं छुवा हूँ, मैं उस देहसे मिला भी नहीं हूँ । देह तो जड़ है, मैं चेतन हूँ, मैं अमूर्त पदाथ हूँ । यह देह तो मूर्त है । तो इस मूर्त पदाथमे एक अमूर्त पदाथ मिल जाय यह कैसे हो सकता है ? अतः यह आत्मा इस शरीरमे रहत हुए भी शरीरमे जुदा है । अरे तूने परिवारको अपना माना है, पुरुषको अपना माना है, यह वत रामो कि क्या वे तेरे हैं ? नहीं, वे तेरे नहीं हैं । अर उनमे तुम किसलिए पसे हो ? य बच्चे जो है उनमे तू क्या है । अच्छा कैसे पसना है ? वे तेरे नहीं हैं अर न कभी तेरे ही सकेंगे । भाई आप तो यहाँ मौजूद हैं । कुटुम्ब परिवार इत्यादि कही का कही बठ है । आप उनस



विम तरहसे बंधे हुए हैं, विम तरहसे फस हुए हैं ? आप उनमें बंध हुए नहीं हैं, अपने घुट्टम्ब परिवार इत्यादिमें आप फँसे हुए नहीं हैं। केवल आपने कल्पनाएँ बना ली हैं और उन कल्पनाओंमें ही मोह बना लिया है, यही कारण है कि तू अपना जो यह समझता है कि मैं परिवारमें फसा हूँ। अरे तू यह म्याल न कर कि मैं फसा हुआ हूँ। किमें फसे हो ? जग बतलाओ तो। अपनी कल्पनाओंको छोड़ दो। तू किसी बंधनमें नहीं है।

एसा नहीं है कि तू कहीं जा न पाना हो, अपने जो बंधनमें खाल न पाना हो। अर मैं तो झपूत हूँ। चैन-यस्वरूप हूँ तो फिर मैं कैसे बंध गया ? मैंने केवल अपने आप ही विकल्प बनाकर अपने आप ही साच मोचकर देहमें स्वयं अपनेको फसा लिया है और जैसे कभी ज्ञान भी हो जाय तो भी कुछ दिन और फसे रहत है पूव वामनाके कारण, पूर्वपरिचयके कारण, निराकुल नहीं हो पाते हैं। उसी तरह यह और आत्मामें भेद भी हो जाय, फिर भी यह आत्मा दहम बँधी रहती है पूव वामनाके कारण पूव मस्कारके कारण। पर इससे छूटने का उपाय भेदज्ञान ही है। किसी कुमिषमें मिश्रता हो जाय तो उस कुमिषमें छूटनेका उपाय भिन्न भिन्न प्रकृति, भिन्न भिन्न वस्तु और परस्पर विरुद्ध ज्ञान कर लेना ही उस मिश्रसे छूटनेका उपाय है। यह हमारे माथ कपट करता है यह हमसे मूट बोलता है, यदि इतना भी जान लेनाका ज्ञान नहीं है तो फिर इसके आगे और क्या हो सकता है ? मैं रहम ठहरा हूँ तो भी देहमें छुवा हुआ मैं नहीं हूँ। दखो इस देहके कारण, इस वाम उपाधिके कारण मेर नाना रूप बन रहे हैं, नाना शरीर बन रहे हैं। कहीं कीड़े मकड़ी बन गए, वही पक्षी बन गए, कहीं और कहीं रूपोंमें बन गए। इस प्रकारमें ज्ञान रूप विस्तार अपने आत्मप्रदेण में भी हो जाते हैं, किन्तु जो आनगरापर दृष्टि रखते हैं वे अपनेको भूल गए हैं। तो मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। हे माई ! अपने स्वरूपकी दृष्टि दो कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। यह मैं ज्ञानमय आत्मा द्रव्य हूँ। इसका आकार है इसका क्षेत्र है। परन्तु इस क्षेत्रकी दृष्टिसे आत्माना परिचय नहीं हो सकता है। आत्माका परिचय तो आत्माके अंतरङ्ग लक्षणकी दृष्टिसे ही सकता है। आत्मा कहने हैं किसे ? जो जाननहार है उसे आत्मा कहते हैं। मैं सबको जान रहा हूँ मगर मैं सब रूपोंमें नहीं हूँ। अभी मैं इतनी चीजें जान रहा हूँ तो क्या इतना जाननेसे मैं इन रूप हो गया हूँ ? मिनेमाके पदोंपर कितने ही चित्र उठ जाते हैं तो क्या पदा उतने चित्रा रूप है ? नहीं। वह पदा तो स्वच्छ है। इसी तरहसे इस आत्मामें सब रूपोंकी भलक आ जाने से यह आत्मा सब रूप हो गया है क्या ? नहीं। मैं तो मैं ही हूँ, ये सब ये ही हैं। अरूप मैं नहीं हूँ।

मैं सबको जानता हूँ, फिर भी मैं इन रूप नहीं हूँ। मैं तो सबसे निराला, जानमात्र अपनेको निरक्षता हूँ। यही ज्ञान है। इतने केवलके ज्ञानके बिना बुद्धि बाहर बाहर घूमती है,

बाहरसे ही बुद्धि फस जाती है और बाहरसे बुद्धि फस जानेसे भावुकताएँ ही जाती हैं। मैं सबम निवृत्त होकर केवल अपने आपसे स्वप्नको देखू तो वहाँ कोई चलेन नहीं हैं। मय है तो सब रहें। मैं तो मुझमें ही हूँ। यह दुनिया तो मोहका स्वप्न है। स्वप्नमें देखी हुई चीजें जैसे झूठ नहीं मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहमें प्रतीत हुई चीजें झूठ नहीं मालूम होती हैं। पर जैसे स्वप्नके बाद जग जाता है तो सब चीजें झूठ मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहमें रह होकर सम्भव हो जाता है और उम सम्भवके ह। जानेसे पपपदाओंके प्रति ठीक ठीक जान हो जाता है। मय और असत्यका निरास हो जाता है तब ये पपपदाय भूट मालूम होते हैं। देखो विचित्रताकी बात कि यह सबको तो जानता है पर इसे अपनी जानकारी नहीं है। यह जो जानने वाला पदाय है यह स्वयं क्या है ? इसका यह नहीं जान रहा है। यदि वह अपने आपको जान जाय कि मैं क्या हूँ, अपनेको यथाय रूपम परिधान जाय तो मोक्षका माग मिल जायगा। इसी तरह सब अन्धोंमें आत्माका जानकी महिमा गायी गई है। मैं अगर अपनी आत्माको ही मयस्व जानकर उसमें ही रम जाऊँ तो पूणतया जान व आनन्द होगा। जैसे लोग कहते हैं कि हे भगवान् ! हे प्रान्ना ! हे खुदा ! तो यहाँपर 'मय' मयुक्तका शब्द है। यह पूजाया धातुमें अहं और अन्त पूजाया धातुमें अल्ला बना है। अल्लाके मायने भगवानसे है। अरहतका अर्थ पूज्य है और अन्याया अर्थ भी पूज्य है। खुदाके मायने खुद अपने आपमें बसा हुआ। खुद तो यह है ही। खुद मायने स्वयं। (मभासे किसीने पूछा कि विसमितला क्या है ? तो महाराजजी ने जवाब दिया कि मैं विसमितलाके मायने तो नहीं जानता) आप बतावें विसमितलाका क्या अर्थ है ? क्या मैं ही सब का । देखो भाई ! एक सेठानी बुद्धिया थी। उमका पति गुजर गया। लोगोंने पूछा कि क्यों राती हो ? उमने कहा कि १०-२० दूकानें हैं उनका हिमाव बोन पैसा ? पचायतके सरदारने कहा—गम न करो। रोती बयो हो, हम सब सम्हाल दें। बुद्धियाने कहा कि अभी ५००-६०० भेस है उनका प्रबध बोन करेण ? सरदारने सब कुछ सम्हाल देनेका वादा किया। सेठानीने फिर कहा कि अभी ५ लाखका बर्ज भी ग्या है तो पचायतके सरदारने कहा कि अब क्या हमी सबरी हाँ करें और लोग भी नोलें। तो भाई ऐसा है। क्या हमी सब बतावें आप लोग भी बतावें। मैं तो विसमितलाका मतलब नहीं जानता हूँ। परन्तु जहाँ तक विसमितलाका अर्थ दिया जाता होगा तो वह मुझसे मतलब निकलेगा। तो भाई यह आत्मा सबको जानता ता है, मगर उन सब रूपोंमें नहीं है। ऐसा मैं गूढ चतयमात्र अपने आपको निरखू और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी जाऊँ।

यह आत्मा देहमें रहता हुआ भी देहमें लुप्त नहीं है। रहना बात और ह और लुप्त होना बात और ह। एक ही स्थानपर पदाय रह, इस कारण लुप्त हो जाय, ऐसी बात नहीं

है। छुवा होना तो प्रथम मूर्तिमें मूर्तिसे हुआ करता है। सो पुद्गल पुद्गलमें छूनेकी बात वह लो फिर भी पुद्गलमें पुद्गल पदार्थ भी परमाथसे अथ किसीसे छुवे नहीं, क्योंकि सभी परद्रव्य अपना अपना जुदा अस्तित्व रखते हैं। जब किसी चीजमें किसी चीजका प्रवेश नहीं है तो छुवे हुए कैसे हैं ? परमाथसे तो पुद्गलमें पुद्गल भी छुवे हुए नहीं है। फिर मूल से मूल कैसे छुये हुए है ? यह आत्मा शरीरमें है अवश्य, पर शरीरसे अछूता है। जैसे किसी को टाडम दे रखें कि ८ बजे इस हॉलमें आप मिलिएगा। आप आ गए, और प्रवचन मुनते हुए आप उस व्यक्तिकी बात जोह रहे हैं तो आप उस पुग्गसे बच गए शरीरमें नहीं बध गए क्योंकि अपने आप भाव करके पराधीन बन गए। घर वैभवस कोई बधा नहीं होता। घर वैभवमें जहाँ अपने भावोंको लगाया तो अपने आप ही बध गए। जब वह स्वयं नहीं हो सक्ता तो समझो कि बध गया। दूसरोंमें वह नहीं बधा है। वह अपने आप ही बधा है। देहमें रहते हुए भी यह आत्मा छुवा हुआ नहीं है। न ना आकारोंमें यह आत्मा चलती है, फिर भी यह आकाररहित है, निराकार है। क्योंकि आत्माकी पहिचान ज्ञानलक्षणसे होती है। और ज्ञानलक्षणका कोई आकार नहीं है। ज्ञानका क्या आकार ? जैसे अग्निका लक्षण गर्मी है उसका कोई आकार नहीं, केवल गर्मी ही उसका आकार है। इसी तरह आत्माका लक्षण है ज्ञान। चानका क्या आकार ? चाननका क्या आकार ? आप पकतको जानें तो जानन बडा नहीं और आप सरसोको जानें तो जानन छोटा नहीं। जानन चाहे जैसा हो, छोटा बडा नहीं होना। तिसूटी, चौसूटी चीज जाननेमें ज्ञान तिसूटा, चौसूटा नहीं बन गया। ज्ञान ही ज्ञानका आकार है और चान ही आत्माका लक्षण है। इसलिए आत्मा निराकार है। जो लोग इस ब्रह्मकी ज्ञानस्वरूप सबव्यापक एक मानते हैं और उस ब्रह्मकी ये समस्त पर्यायें हैं, ऐसी मान्यता जिनकी है उतना काम क्या है कि भाव पकडा, द्रव्य, क्षेत्र, चानको भावमें जकडा। जीवका भाव है ज्ञान और ज्ञानका लक्षण द्रव्य, काल, क्षेत्र नहीं है। चानभावमें वह एक स्वरूप है और वह कृपा है, सबव्यापक। वह ज्ञानभाव एक है, सब व्यापक है। वह कहा है ? ऐसा स्थान देखनेमें नहीं आता है। वह ज्ञान तो सबव्यापक है, मगर उस भावमें क्षेत्र और काल जोड दो ता ब्रह्मवार बन गया। द्रव्य, क्षेत्र और काल है व्यवहार तथा भाव है निश्चय। ये चारोंके चारो व्यवहार होते हैं और निश्चयसे होते हैं। फिर भी ऐसे अंतरणमें छूने वाला कौन तत्त्व है ? ऐसा मोचनपर प्रतीत होता है कि द्रव्यके लक्षणको बताने वाला भाव तत्त्व है।

द्रव्य, क्षेत्र काल है व्यवहारकी चीज। कोई व्यवहारको छोडकर, व्यवहारकी चीजको छोडकर भावको ले और उसमें व्यवहारकी चीज लगा ले तो मान्यता यह बन जाती है। मात्र भावदृष्टिमें देखो तो केवल चानज्योति है वही ब्रह्म है। आत्माकी पहिचान ज्ञानभावमें

है। एक यह भाव बैठ जाय कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, जाननस्वरूप हूँ। जाननस्वरूप क्या है ? शुद्ध जानन ही जाननस्वरूप है। इसका क्या स्वरूप है ? इस ही लक्ष्यमें लग जाँ और जानकर केवल अपनी आत्मामें जिमें कहते हैं 'जानज्योति', उसमें ही लग जाँ तो जानानुभव हो जाना है। जब अपनेको जानरूप न मानकर अय अय रूपोंमें माने और अपना म्याल परम लगावें तो वहाँपर आकुलताएँ, व्याकुलताएँ आ जाती हैं। वैसे तो देखो मय बाह्य चीजें ठीक हैं, पर उनमें हमका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आत्मतत्त्व अपना ब्रह्म चतय-मात्र है, अमृत है। इस जीवके पास कोई आपत्तियाँ नहीं, कोई आकुलताएँ व्याकुलताएँ नहीं, पर यदि यह अपने आपमें सोच लें, सबल्प बना लें, विकल्प बना लें तो आकुलताएँ व्याकुलताएँ आ जाती हैं, दुःख आ जाने हैं। इस जीवमें तो जानमयताकी कोई कमी नहीं है। यह तो चतयस्वरूप है। शुद्ध हो गया, शांत हो गया अपनेमें अपनेका समा लिया। जो यह अनुभूत आत्मतत्त्व हो गया। तो हम और आप तो पूरिपूरण हैं स्वतन्त्र है, आनन्दघन हैं, सबस्व है, कोई कमी नहीं है कोई विभाव नहीं, कोई सबट नहीं, कोई अशांति नहीं। पर यदि अपने आपमें सकल्प विकल्प बना लें, बाहरमें दृष्टि हो जाय तो अशांति हो जायगी और अशांति हो जानेमें दुःख प्राप्त होगा। ऐसा दुखी बनने का कारण क्या है ? कारण यह है कि परको अपना मान लिया है, परको ही निमित्त मान उपयोगम सबस्व कारण बना लिया है। यही कारण है कि उसे दुखी होना पड़ता है। यदि वह परको ही वर्ता बनाएगा, परमें ही अपनी दृष्टि लगाएगा तो उसके दुःख मिट नहीं सकते हैं। और उसके दुःखोंमें मिटानेका सरल उपाय यह है कि वह परमें दृष्टि न लगाये। जब यह जीव परको ही निमित्त बनाकर अपना मान लेता है तो वह उनमें फस जाता है। देखो उसने ऐमी वामना बनाई है, ऐमें सस्कार बनाए हैं कि उसे परमें फसना पडना है और दुखी होना पडता है। यदि वह इस अनाननाकी रस्मी को काट दे तो वह किसी भी बंधनमें बंध नहीं बंध सकता है। किसी भी परपदाधमें वह फस नहीं सकता है। यदि वह अपनी इस अज्ञानता को दूर नहीं करता है तो उसे ही पुरपार्थहीनता कहते हैं। जो जैसा है उसको वैसा मानना ही पुरुषार्थ होता है। जो जैसा है उसे वैसा न मानें तो वह मसारी है। एसा पुरपार्थ करन में लेना-दना कुछ नहीं है, नुषमान कुछ करना नहीं है। केवल जो जमा है उसे वसा ही सोच लें। पोजीशन वाले लोग क्या कहेंगे, जल्से वाले लोग क्या कहेंगे, जनता क्या कहेंगी इन सब बातोंमें आ करके वह परमाथसे विचलित हो जाता है। और जो जमा है उसे वैसा ही मानने वाला जा पुरुष है वह अपने आपको ही मुख्य देखता है। वह उज्रत पोजीशन आदि को कुछ परवाह न करके आत्मकल्याणका धुनमें रहता है। एक वेदात्के बथानकका मग्रह है। उसमें लिखा है कि एक गुर शिष्य थे। वे एक पहाड़ीपर रहत थे। एक दिन उहाँ

देखा कि एक नगरका राजा कुछ समूहके साथ दशनके लिए आ रहा है। गुरु जी ने सोचा कि अगर उमका मन मेरी ओर आ गया तो बहुतमे लोग यहाँ दशन हेतु आवेंगे। बहुतसे लोगोंके आनेके कारण हम ध्यानसे विचलित हो जावेंगे। गुरु जी ने जब देखा तो अपने शिष्य से कहा कि देखो बेटा राजा आ रहा है। अब हम तुमसे रोटिया खानके विषयमें लड़ेंगे। और जब हम दोनोंको रोटियोंके विषयसे गड़ता हुआ वह देखेगा तो वह हमें तुच्छ समझेगा। फिर यहाँ न आवेगा और इसके न आनेमें यहाँ कोई न आवेगा। फिर हम अपने ध्यानमें लगे रहेंगे। अब राजा आ गया। गुरुने कहा अपने शिष्यसे कि हमने तो दो ही रोटिया खाई हैं, आपने कसे ज्यादा खा लिया? शिष्य बोला कि महाराज कल आपने १०-१२ रोटियाँ खा डाली थी, हमने तो केवल दो ही खायी थी। इसलिए आज मैं ज्यादा खा गया। राजा सोचन लगा कि अरे य तो महातुच्छ है, रोटियोंके विषयमें भगड़त है। राजा चला गया। शिष्यने तीन चार दिन बाद गुरुने पूछा कि क्यों आपने उम दिन रोटियोंके विषयमें भगड़ाया। गुरुने कहा कि देखो भगडासे राजाका दिमाग बदल गया है वह हमें तुच्छ समझकर नहीं आता और उसीके न आनेसे भीड़ भी नहीं लगती। जिसको अपने कल्याणकी बात मनमें है वह अपनी बात करता है। वह अपनी इज्जत धूनमें मिना करके यदि अपनी रक्षा करना है तो कर ले। खैर जैनसिद्धान्तमें इतनी बात तो नहीं कही गई है कि अपनी बात बिगाड़ करके अपनी रक्षा करे। पर उपक्षा करके अपनी आत्मभावनाको शुद्ध अवश्य करे। एक कविने एक कवितामें बताया है कि अगर तुम कम जानते हो तो तुम घमडी हो, अगर ज्यादा जानते हो तो तुम वाचाल पागली हो। अगर विनय करत हो तो तुम पुशामदी हो, अगर विनय नहीं करते हो तो तुम जिद्दी हो, अगर खूब ज्यादा करत हो तो तुम धन खूब उड़ा रहे हो। यदि मितव्ययी हो तो कड़म हो ऐसा लोग कहेंगे। सो किम किसको प्रसन्न कर सकते हो बताओ। कुछ भी करनेकी कृपा क्यों करें? कुछ भी करें, सब मिट जायगा। और यदि भगवानका केवल चातुस्वरूप उपयोगमें हो तो भगवान मिल जायगा। यदि परमें दृष्टि होगी, परमें लगाव होगा तो लोग ज्यादामें ज्यादा यह ही तो कहेंगे कि इनका बड़ा बन्धव है। कह लिया, पर यह तो बताओ फलमें कौन? मरगा कौन? अविवेकका फल भय का है। तू स्वतंत्र होकर भी परतंत्र मानता है। इसलिए हूँ भाई ऐसा विचार तो कर लो कि तू अपने आपमें ही दृष्टि रखके ऐसा निणय कर मैं किसीसे क्या हुआ नहीं हूँ। ये जगत्के जितने भी पदार्थ हैं मेरे नहीं हैं—यदि ऐसा निणय तू कर ले तो तू प्रसन्नचित्त रहगा। तेरे घर वाले लोग, दण्डके लोग तुम्हमें प्रमत्त क्या होंगे? चिन्ता न कर, आत्मघममें चल। जैसे कहत हैं—कुंवा मत छानो, अपना लोटा छानो। हम बाहरके पदार्थोंको छानते हैं, पर अपने आपको नहीं छानते। अपनेको देखो कि मैं जानमात्र हूँ, चतन्यमात्र एक वस्तु हूँ, इसके

आगे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। एष दूसरेको मान लें कि यह मेरा है, यह उसका है, यह गैर है इत्यादि तो यह मोह है। मैं तो सबसे निराला हूँ, फिर भी यह छटनी करना कि यह मेरे लिए, यह परिवारके लिए है—ऐसी छटनी करना मोह कहलाता है। ऐसी छटनी करना बहिष्पुखना हुई, बाह्यदृष्टि हुई, मिथ्यात्वदृष्टि हुई। मिथ्यात्वमे मिथ्य धातु आती है, मिथ्यका अर्थ सम्बन्ध करना है। मिथ्यात्व उसे कहते हैं जिसमें कि ही बाह्य चीजोंसे सम्बन्ध हो, परसे सम्बन्ध दोख रहा हो, इसीका नाम मिथ्यात्व है। जैसे पदार्थ ही वसी ही दृष्टि बने तो सम्यक्त्व है। अपने आप स्वयं मैं हूँ, ऐसी दृष्टि परपदार्थोंम आ जाय तो यह सम्यक्त्व हुआ। जो बाह्य पदार्थ हैं उनको उनके अपने स्वरूपमें देखना सम्यग्दर्शन है। अभी यह काम करनेको पडा हुआ है। यह पहला काम है जो कि आपको करनेके लिए पडा हुआ है। वह क्या कि जो जसा है (स्वतन्त्र है) उसे वैसा ही भिन्न-भिन्न परिपूर्ण स्वतन्त्र निरखो। मैं भी अपने स्वरूपमें स्वयं क्या हूँ ? यह देखना। वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र है यह देखना अभी पडा हुआ है। फिर उस दृष्टिको देखकर केवल अपने आपको ही निरखना, यह मेरा दूसरा काम पडा हुआ है। बस इस स्वल्पण दृष्टिसे ही हमारा पूरा पडेगा। जन्ममरणके चक्रमें पहनक जो ये काम है उनसे छुटकारा पाने का यही उपाय है। स्वल्पण दृष्टि बन जानेसे जन्ममरणका चक्र बंद हो जायगा। ह आत्मन् ! परमे दृष्टि न रक्खो। परमे दृष्टि रखनेसे तुम्हें दुःख हागे।

तू अपने उपादानमें ऐसे कपायें भर हुए हैं, ऐसा उपादान है, ऐसी विषयवासना बनाए हुए हैं तो तू चाहे जहा रह, चाह घरमें रह, चाह जगलमें रहे, चाह मंदिरमें रहे, तुम्हें दुःख हागे। जब तू कपायोंको पकड़े हुए है तो ऐसी अवस्थामें तुम्हें प्रत्येक जगह दुःख ही दुःख नजर आवेंगे। जैसे जिम पुरुषमें क्रोधकी वामना है और जरा जरासी वानाम ओच आता है, चिडचिडा जाता है तो वह सदा दुःखी होता रहता है। जस बार्ड गीकर रखता है वह नोकर यदि ठीक काय नहीं करना है तो गुस्मा आ जाता है। यह सोचकर कि दूसरा रखेंगे, उसको वह निकाल दता है। इसी तरहमें और और भी नोकर रखता है तो काम ठीक न करनेकी वजहमें उनपर भी गुस्मा आता है और उनको भी निकाल दता है। नोकर न रखनेमें ठीक रहेगा, यह सोचकर मार नोकरोंको निकाल देना है अक्रेला रह जाता है। केवल अक्रेला वह व्यक्ति रह जाता है तो उसे बहुतसी अडचनें पडती हैं, व्याधिया पडती हैं और उमें दुःख होने हैं, क्लेश हाते हैं। देखा कात्रके उपादानमें हर स्थितिमें क्रोधो बन रहा है। जिनको कपाय करनेके योग्य क्रोध हानेकी प्रवृत्ति बनी हुई है वे किसी भी परिस्थितिमें हो, परका निमित्त बना करके अपनेमें ब्राध बना लेते हैं और क्रोधसे उत्पन्न कपाय के द्वारा उमें दुःख होते रहने है। जिनको मात्र कपाय भरा हुआ है वे अपना माय चाहने हैं तो हर जगह अपना गपगान महसूस करते हैं। अपना महसूस होनेसे कष्ट महसूस हाता है।

जैसे बोर्ड दम आदमी रास्तेम चले जा रह है, अर्थात् धुनमे चले जा रह हैं। मानमे रहा वाले किसीने मनमे यह विचार बना लिया कि अर देखो इन लोगोने हमसे राम-राम नहीं किया। ऐमा विचार करनेसे मनमे कषाय आ जायगी और दुख होंगे। अरे वे तो स्वतंत्र ह। उन पर बिगड़नेमे उनपर क्रोध करनेमे तुम्हारा क्या बन जायगा और उनपर बिगड़ने का अधिकार क्या? व तो मस्त थे। अपने आप भूमते हुए चले गए।

कल्पनाए ऐसी मरी हुई हैं कि मैं सबसे बड़ा हू, ये मूझने छोट है। ऐमा होनेके कारण उनकी प्रशंसा ऐसी बन गयी है कि उह अनेश महसूस होता ह। अरे २-४ लोग तेरी प्रशंसा ही कर देंगे तो उसमे क्या हो जायगा? तू अपनेमे यह सोच लेगा कि लोग मेरी इज्जत करने हैं। अर जो तेरी प्रशंसा करते है वे अपने कषायसे, अपने स्वाथक लिए, अपनी शान्तिके लिय अपनी चेष्टा करते हैं। जिसकी मायाचारकी प्रकृति है वह जहाँ आवश्यकता है वहाँ भी मायाका काम करता है और जहाँ आवश्यकता नहीं है वहाँ भी मायाका काम करता है। जहाँ जरूरत नहीं वहाँ भी मायाकी प्रकृति पड गई ना। इसलिए चलनेमे, बठने मे, उठनेमे, बोलनेमें सबत्र मायाकी बात किसी न किसी रूपमे आती रहती है। इस तरह तो है लोकप्रकृतिकी बात। किस कषायकी प्रकृति पड गई है वहा कषाय उठनी है और उठने ही समय वह अपना कुछ न कुछ आश्रय बना लेता है। अब दबो तीन चीजें हैं—निमित्त, आश्रय और उपादान। क्रमके उदय तो निमित्त होत हैं व उन निमित्तोको पाकर विभावमे जब फँचते हैं तब जिन बाह्य वस्तुबोका आश्रय बना लेते है व आश्रय है। जो ज्ञानमे आए अथवा जो मुताब हो उसका आश्रय करके यह जीव उपादान अपने विभावमे पुष्टि करता है। जमे लोग कहते है कि एर गुटर होता है जो छिपवलीम बडा होता है। लोग यह कहत ह कि उमकी आदन होती है कि मनुष्योको बाटता है और काटकर खुद मूत कर उममे लोट जाता है। ऐमा लोग कहते हैं। पर ह क्या कहाँ? बात यह है कि गुहरेको जब मूत्र करना होता है तो उसका मूल इस ढंगमे होता है कि वह किसी चीजकी बाटकर, दाँतोमे चबाकर मूत्र करता है। ऐसा करनेमे ही वह मूत्र कर पाता है। उसका दाँचा ही ऐमा होता है, उसको प्रकृति ही ऐसी होनी है कि उमको ऐमा करना पडता है। वह मनुष्यका ही केवल बाटना हो, ऐसी बात नहीं है। उमके आदनकी यह अर्थ ही बात है। उमका मूत्र उतरता है जब किसी चीजको बाटता है, चाहे मनुष्य हो, चाहे लकड़ी हा, चाहे पत्थर हो वह उमे बाट लेगा, उसे चबा लेगा तभी वह मूत्र करता है। उसका ऐसा प्रकृति व्यवहार होता है। इसी तरह जिस जीवके विभाव उत्पन्न होता ह उसकी यह प्रकृति बनी होती है कि परपदार्थोको निमित्त पाकर वह अपने विभाव करता ह। विभाव करनेका ढग ही अर्थ ह। परपदार्थोके सम्बन्धने विभाव कर दिया हो, ऐमा नहीं है। यह जीव जब विभाव उत्पन्न करता है तो ऐमे ढगसे

ही कर पाता है। उपयोगसे सम्बन्ध कर लेता है और वह विभाव कर लेता है, तब अशांतिका कारण हमारी भूल है, अशांतिका कारण हमारी गलती है।

अपने आँकी दृष्टि मिटाकर बाह्यमे दृष्टि करके खुद हम उलझते हैं। हम गलती करते हैं उसका फल दुःख होता है, अशांति होती है। मुझको अशांति करने वाला दूसरा पदाय नहीं है। मेरी अशांतिका कारण मैं ही हूँ। मैंने ही बाह्य वस्तुओंको सक्त्य करके अपना मान लिया है। बाह्य वस्तुओंको ही मैंने निमित्त बना लिया है और परपदायका बहाना करते हैं, मोह करते हैं। मोह बनाकर ही मैं दुःखी होता हूँ।

कभी घरमे माँ को गुस्सा आ रही हो तो यदि वह कुछ कहगी या उगलेगी तो गुस्सा ही उगलेगी और जो कुछ कहना होगा गुस्सेमें ही कहेगी।

बच्चा मिल गया, बच्ची मिल गई कोई भी बहाना करके वह माँ उस बच्चेपर गुस्सा करेगी। वह उस बच्चा अथवा बच्चीको पीटेगी भी। यद्यपि वहाँ पर बच्चे अथवा बच्चीका कसूर कुछ नहीं है फिर भी माँ उनको पीटती है।

अरे बड़े घरानेम नौकर चाकर चतुर होते हैं। एक बाबूजी थे। वे गुस्सा बहुत हो जाते थे। वह नौकर जब कभी देखता था कि बाबूजी गुस्सामें है तो वह उनके सामने नहीं जाता था। वह जानता था कि यदि हम उनके सामने जावेंगे तो सारा गुस्सा हमारे ऊपर ही उतार देंगे। चाहे बाबू जी किसी दूसरे पर ही गुस्सा हो, पर वह नौकर उनके सामने नहीं पडगा। वह समझना है कि गुस्सेका उबाल आ रहा है। यदि कहीं मैं उनके सामने पहुँच गया तो मारा गुस्सा हमारे ऊपर ही उतार देंगे। पुण्योदयमे कुछ सामर्थ्य पाया तो जिस चाहे पर जो चाहे करनेका प्रयत्न कर देना है मोही।

एक नदीमें एक बकरी पानी पी रही थी। ऊपर भेड़ पानी पी रहा था। भेड़ होना है बकरीका दुश्मन। भेड़ बकरीके बच्चेसे कहना है कि अरे मैं तो पानी पी रहा हूँ और तू पानी पी कर गदा पानी कर रहा है। बकरीके बच्चेने कहा कि महाराज आप तो ऊपर का स्वच्छ पानी पी रहे हैं, मैं तो नीचेके दूनापानी पी रही हूँ। भेड़ गुस्सेमे आ गया और बोला कि अरे तू नहीं पी रहा है तो तेरा बाप पी रहा है। होगा। ऐसा कहकर बच्चे पर घावा बोल दिया व मार डाला। ऐसे ही जब कपाय बढनी है, होती है तब किसी भी प्रसक्त परपदायको आश्रय करके कपाय बन जाती है। तब पदाय कैसे हैं? ये सब तू भूल जाता है। पदाय स्वतन्त्र है, अपने रूपमे हैं, रपाय रखने वाले व्यक्ति सब भूल जाते हैं, कपाय वालोंको ऐसा ही नजर आना है जिसे उनको वह नजर कपायमे बल देती है। जैसा पात्र है उसका वैसा ही उजाल निकलेगा। कहने है कि उसकी निमित्तने किया। अरे निमित्तने नहीं किया उसे करने को था सो किया। यह तो बनना ही था। कर्मोंका उदय





मे तो बिकाराका स्वप्न भी नहीं है। यह परम शुद्ध, निष्कलकी बात चल रही है। इसकी ही बात मान लेवो कोई तो ब्रह्माद्वैत आदि सब अभिप्राय खड़े हो जाते हैं। मैं आत्मस्वरूप कैसा हूँ, यह स्वभावदृष्टिमें ही दिखता है। जिम भाँ का लडका बहुत अच्छा चल रहा है। साल ६ माह बादमे यदि वह जुवारी लडकेके सगमे आस उसके जुवारीका प्रसंग लग गया, तब एन बुद्धिया स्त्री कहने लगी कि देखा तुम्हारा लडका जुवा खेलता है। उस लडकेकी मा न कहा कि नहीं, मेरा लडका जुवा नहीं खेलता है। यह जुवा खेलनका व्यसन ता उस दूसर लडकेका है मेरमे नहीं है। मतलब यह है कि वह अपने लडकेको बसा ही सुशील समझती है जसा कि प्रारम्भमे था। वह स्त्री अपने लडकेक प्रति कहती है कि मेर लडकेको मोहवत में रखकर इस दूसर लडकेने जुवा भिखला दिया है। यह जुवा खेलनेकी आदत उस दूसरे लडकेमे ही है, मेरे लडकेमे नहीं है। इसी तरहमे, विवेकी जीव इस चैतन्य आत्माको राहज स्वप्न, पानमय, पापस्वरूप मानता है इस आत्मामें कोई आकार नहीं है, इसमें पुण्यपाप नही, रागद्वेष नहीं। कोई कहे बाह वतमानमे तो ये सग हैं। अर यह कर्मोकी प्रकृति है, मेरी प्रकृति नहीं। रागकी आदन तो कर्मोमे है। द्वेषकी प्रकृति कर्मोस है। ऐसे निमित्तपर आरोप किया गया है अपनेकी त्वरावियाका। जो अपनेको शुद्ध, स्वच्छ देखता है उसमे कपायभाव और पुण्य, पापका स्पश नहीं है। मो ऐसी वस्तुम्यिति मेरी होवे अथात् अविकार हावे। वही परपदायम, वही नैमित्तिक भावम, वही अपने प्रदेशामे—यह मैं हूँ, यह मेरा है, इससे ही मेरा भन्ना है, इस ही मे रमना चाहिए इस प्रकारके भाव उत्पन्न न हो। मैं ज्ञानमात्रका अनुभव करूँ, नादृष्टिमें रहूँ, इस प्रकारके भाव उत्पन्न होना चाहिए। कहते हैं ना कि "जो बोले सो फगे।" अरे समाजमे कोई काम करत हा तो यदि कोई पूछे कि अमुक काम करत हो जो बोले कि हाँ हाँ मैं करत हूँ सोई फमेगा। घरम समाजमे, दशम जा बोलेगा वही फमेगा। किमीसे पूछा—भैया! स्वप्ननगरका रास्ता कौनसा है? बतावा। वह बालगा कि इस रास्तेसे चने जाओ, स्वरूपनगर मिल जायगा। नहीं नहीं जरा गाग चलकर थोडासा बतानो। इस तरहम यह फंस जायगा और यदि रास्ता बनातातो न फमता। ऐस ही जो पर द्रव्यनि राग करता है सोई फमता है।

मुना हागा कि एक साधु थे। राजा बदना करवे उसके पास बठ गया। साधुने पूछा कि बोसो क्या चाहते हो? राजा बोला, "महाराज मेर कोई बन्ना नहा है, एक बच्चा हा जाय यह मैं चाहता हूँ। साधुने कहा कि अच्छा जावो, एक बच्चा हो जायगा। इस प्रकारमे आशोवाद मिल गया। राता घर आया, घरमे रहने लगा। साधुने १५-२० दिन बादमे ऐसा कि रानीके अभी गभ नहीं है, कोई भरता हो ता उसे गभम लेज दें। उम समय कोई भर नहीं रहा था। फिर साधुने गाँवा कि अच्छा चलो खद ही भरकर रानीके पदमे

पहुच । सुद साधु मर गया और रानीके पटमे पहुच गया । अब साधु गर्भमे पडा हुआ मोचता है कि मैं गर्भसे बँमे निकलू ? साधु परेशान था । वह मनमे विचार करता है कि यदि मैं वचन न दे देता तो ठीक था । वह साधु बार बार विचार करता है कि मैं अब निकलू । साधु गर्भमे बच्चेके रूपमे पडा हुआ है । वह सोचता है कि यदि मैंने वचन न दे दिया होना तो आज यह परेशानी नहीं होती । अच्छा अब मैं जब बाहर निकलूंगा तो बोलूंगा नहीं । बच्चेके रूपमे साधु बाहर निकल आया । सात आठ वषवा हो गया, बच्चा बोलता ही नहीं । राजा परेशान हो गया । बोला कि लडका तो हुआ पर गूँगा हुआ । इसे जो ठीक कर देगा उसे मैं ऋतुमा धन दूँगा । एक दिन बच्चा बगीचेमे घूमता हुआ पहुच गया । दहाँ पर देखा कि एक चिड़ीमार जाल बिछाए हुए बैठा था । और अब यहाँ चिड़िया ही है ऐसा समझकर जालकी तह करके जानेकी तैयारी कर रहा था । इतनेमे ही एक चिड़िया जो कि पेड़के ऊपर बैठी हुई थी, बोल उठी । अब चिड़िया पकड़ने वालेने जाल फँसाया और उस पक्षीकी जानमे फँस लिया । तब राजकुमार एकदमसे बोल उठा कि "जो बोले सो फँसे ।" अब वदा था चिड़ीमारने समझ लिया कि राजकुमार बोलने लगा । वह राजाके पास गया । राजाको खबर दी कि राजकुमार बोलते है । इतना सुनकर राजाने १० गाँव इनाममे दे दिया । अब राजकुमार घर आया । राजाने देखा कि बच्चा तो बोलता ही नहीं है । राजा बोला—अरे पक्षी मारने वाले भी मुझमे दिलनगी करते है । राजाने क्रोध करके चिड़ीमारको फाँसी की सजा सुना दी । अब चिड़ीमारने राजाने पूछा कि तुम्हे जो चोज चाहिये सो बोल । चिड़ीमार बोला कि महाराज हमे कुछ नहीं चाहिए, केवल ५ मिनटके लिए आप अपने बच्चे से मिला दीजिए । राजाने बच्चेमे मिला दिया । चिड़ीमार बच्चेमे बोला कि ह राजकुमार । मैंने कभी जिन्दगीमे झूठ नहीं बोला, पर आज मैं झूठा बन रहा हूँ । खैर, अब तो मेरा जीवन समाप्त ही हो रहा है परंतु तुमसे विनय यह है कि जो शब्द बगीचेमें वहे थे वही कह दीजिए । बच्चेने वही शब्द बोल दिया । १० मिनट तक उस बच्चेने छोटासा भाषण भी दिया । बाद में बच्चेने बताया कि दक्षी पहले मैं साधु था । राजा दशन करने गए । हमने राजाको दशन दिया था । राजासे मैंने बोल दिया था इसलिए मैं फँस गया । इसलिए मैंने बोलना बंद कर दिया था । इम तरहसे मारा रिस्सा बच्चेने सुना दिया ।

देखिए राजामे साधुने बोल दिया तो साधु फँस गया, पक्षीने बगीचेमें बोल दिया तो पक्षी फँस गया और चिड़ीमारने राजकुमारसे बोल दिया तो चिड़ीमार फँस गया । इस लिए इस जगतमें जो बोलता है वही फँसता है । यदि ब्यादा बोल-चाल जगतमें ररते हो तो राग बढेंगे, द्वेष बढेंगे । कितने ही लोग ऐसे होते हैं जो दसो दिन तक बच्चेसे नहीं बोलते हैं । बच्चे पढने लिखने, खेलने कूदने सभी जगह आते जाते हैं, पर उनसे सहज ही

बोलते हैं। उन उन्चमि उनका स्पश भी है। उसे वह अनासक्ति करता है तो पराधीन नहीं होता है और यदि आसक्ति करता है तो पराधीन हो जाता है। अब बताया कि परिवारम जिनने लोग हैं उनसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध है? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ। बापकी आत्माका पुत्रकी आत्मासे क्या सम्बन्ध है? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ। अब दगो कोई सपूत है, पिताका आज्ञाकारी है तो पिताको दुःख है या मुख। दुःख ज्यादा है। पुत्र अगर कुपूत है, अयायी है तो पिताको दुःख है या नहीं। नहीं की बात विशेष है। कुपूतमें दुःख मिट जायगा। वह धन बरबाद करने वाला होता है तो अज्ञानतमें लिख दें कि बच्चेका हममें कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं इसका जिम्मेदार नहीं हूँ। कम दुःख मिट गया। और यदि लडका सपूत है, आज्ञाकारी है, बड़ा विनयशील है, तो उसके प्रति राग बरके बाप अम ही अम तो उठावगा आराम वहाँ पायगा?

अच्छा यह बताया कि यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी होगा तो बाप दुखी होगा या नहीं? दुखी होगा। कैसे? अच्छा देखो यदि पुत्र सपूत होगा आनाकारी व विनयशील होगा तो उम मुन्की करनेके लिये बाप अधिक परिश्रम कर क्लेशमें पडा रहगा और यदि पुत्र कुपूत है तो उमके बात यह प्रसिद्धि करके कि इससे मेरा सम्बन्ध नहीं, छुट्टी पा लेगा। दगो दुःख सपूतमें है कि कुपूतमें है? यदि पुत्र सपूत होगा तो मोह होगा और मोहमें तो क्लेश अवश्य होंगे। और यदि पुत्र कुपूत है तो न तो मोह ही बडेगा और न क्लेश ही हामि। अरे दखो सगीत बजाने जाने चार जने हैं। कोई तबला, कोई सरगी, कोई मजीरा कोई हारमोनियम बजाना है। और सब अलग अलग गाँवक हैं। परिषय भी नहीं है तो भी सगीत विषयके कारण एक दूसरेकी तारीफ करगे। इस तरहमें ४-५ मिनटमें ही उनमें परस्पर सम्बन्ध हो जायगा। उनमें परस्पर दोस्ती हो जावेगी। सबमें आपसमें बोल चाल हो जायगी। अब देखो सगीतके विषयमें ही उनमें बोलचाल हुई ना। अब दखो वे आपसमें फम गए। व एक दूसरे की भोजनादिके लिए भी निमन्त्रित करेंगे। इस प्रकार उनके बीचमें घनिष्ठ सम्बन्ध हो जायगा।

अरे यह सब सम्बन्ध क्या है, यह सब खाव है। ऐसा करनेसे तू मोहमें फमा रहगा, तुम्हें आजीवन क्लेश रहगा। अरे तू तो परमायमें शुद्ध स्वच्छ, नानस्वरूप है, तरेम तो क्लेशा का नाम नहीं, फिर क्यों जगजालमें फूमकर क्लेश प्राप्त कर रहा है। अरुन योग्य काम तो तत्त्वदृष्टि है। मो उसरी हो रुचि कर अपनेमें सुखा होओ। तत्त्वोंम अय अय नाना मत है। कहने हैं कि मुस्लिम तत्त्व यह है, जैन तत्त्व यह है, बौद्ध तत्त्व यह है। अरु यह क्या है? व्यथमें नाना प्रकारके विवाद बढाते हैं। कोई किसी प्रकारके विचार मानता है, कोई किसी प्रकारके। कोई कोई हनुमानकी को बदरक मुख जाला व पूछ वाला मन्त्र हैं। जन लोग कहते हैं कि हनुमान इतने मुन्दर थे कि उनके ममान मुन्दर उस समय नाई नहीं था।

जैनमिद्धातमे तो बताया गया है कि वह एक कामदेव पदधारी अति सुन्दर राजा थे। 'वैर विचारोसे क्या मतलब ? आप अपनेको तो देखें कि अपना स्वरूप कैसा है ? अर्थात् मैं अपने आपको देखू कि मैं कैसा हूँ ? जो मैं हूँ वही समझू, उस इस ही में करयाग है।

अर अन्यको देखनेका कोई मेरा प्रयोजन नहीं है। मेरा प्रयोजन तो अपने आपको देखनेका है। मैं अपने आपको देखू और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं मुखी होऊँ। नहीं चले जाओ सुख नहीं नहीं मिलेगा। जैसे यहाँ आप रात दिन भटकते हैं, फिर रातको ६-१० बजेके लगभग आराम करने घर आते हैं, सोते हैं। इसी तरह बाह्यपदार्थोंमें कितना ही भटक लें, फिर अतमें अपने घरमें, अपने आपके स्वरूपमें ही शांति मिलगी। बाह्य बाह्य ही तो व्यवस्था करते हैं पर अपनी व्यवस्था नहीं कर पाते हैं।

देहातोमें तो भया हृष्टमें एक दिन हाट लगती है। सो नहीं देहातमें कोई अघबूढा आदमी था। वह आदमी एक दिन हाटमें साग भाजी खरीदने लगा। पढीसकी बहुवोंने भी साग खरीदनेके लिए दो दो पैसे दे दिए। दो दो पसोरी सब्जी खरीदना जाता था। पहले पढीसकी बहुवोंके लिए खरीदता था। अतमें अपने लिए भी दो पमेकी सब्जी मोल ली। आखिरमें बची हुई सब्जी थी तो वह खराब थी, सड़ी थी। वह सब्जी लेकर भोलीम डालकर घर गया। जब घरकी बहूने देखा ता कहा कि अर यह खराब सब्जी क्यों लाए ? बोना-पढीमकी बहुवोंके लिए पहले अच्छी भ्रच्छी खरीद दिया फिर बादमें जो बची वह मैं खरीद लिया। बहूसे कहा कि देखो मैं परोपकार करता हूँ। बहूने कहा कि अर पहल अपने लिए भ्रच्छी भ्रच्छी खरीद लेने, बादमें फिर दूसरेके लिए लेते। पहले अपनी रक्षा करो बादमें दूसरेकी। अपनी रक्षा अपने आत्मस्वभावकी उपासना करना है, उसकी दृष्टि रहते हुए परोपकार किया जावे तो वह महत्त्वकी बात है।

भाई अपने स्वरूपकी तो खबर नहीं है और दूसरेकी ओर आसक्तिसे देख रहे हैं। हे आत्मन् ! पहल अपने स्वरूपको देखो, बादमें फिर अन्यको देखो। अपनेको भूलकर द्वन्द्वको देखा इसे आचार्योंने विवेक नहीं बतलाया है। बाहरमें क्रिया कलापमें भी रहो, पर उनमें कोई अपना स्वरूप मत समझो। यदि कोई समस्त मतोंके विक्ल्पको छोड़कर अपने सत्यका आग्रह कर ले कि मुझे जो अपने आप बिना किसी अन्य जल्पके आश्रयके अनुभूत होगा सो होओ, मैं स्वयं ज्ञानमय पदाय हूँ। अत जानकी बात स्वयं ही प्रकट हो जावगी ऐसे सत्यका आग्रह कर ले निःशब्द हाकर तो उसे स्वयं सत्यका दर्शन होगा। जो सत्यका दर्शन ही फिर उसीका लक्ष्य रखना सो ही शान्ति मुखका माग है।

मूल तत्त्व तो आत्मा है। इस आत्माके बारेमें ठीक ठाक निरण्य जब नहीं हो पाता तब उस आत्माके बाबत व अन्य बातोंमें नाना मत बन गए। तत्त्वोंमें जो मत मजहब बन

गए। उसका मूल कारण यह है कि यह जिन्हामु अपने आपकी आत्माका यथाथान नही कर पाया। आत्माका यथाथान न हो पानेसे ही अनेक मत बन जाते हैं। यह दशनका एक गहरा विषय है। वस्तुको जाननेका उपाय स्याद्वाद है। किसी वस्तुका सर्वांग निणय करा तो स्याद्वादसे ही कर सकते हो।

जैसे किसी मनुष्यक सम्बन्धमे जानकारी करते हो तो कितना कितना जानते हो ? यह पिता है, यह पुत्र है, यह भाजा है यह धनी है, यह पटित है अनेक प्रकारकी बातकी जानकारी करने हो। जानते हो अपेक्षा लगाकर कि यह अमुकका पिता है, यह अमुकका लडका है, यह अमुकका भाजा है, यह अमुकका मामा है— ये सारी बातें तो अपेक्षा लगाकर जानते हो। इस प्रकारसे यदि अनेक बातें जानत हो तब उनकी सागे याताकी जानकारी होनी है। इसी तरह आत्माके विषयमें जब सबप्रकारसे दृष्टि दोग तभी आत्माका पूरा रहस्य समझमे आयगा। जब जीवके पर्यायमें तथा आत्मस्वभावमें दृष्टि दागे तभी दोनामें अन्तर समझमें आयगा। जब जीवक मात्र लक्षणमें दृष्टि दोग ता तुम्ह पता चलेगा कि जीवका लक्षण है चैतन्य और यदि इस चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दो तो नानारूप इसमें नही नजर गाते हैं। यदि अपने इस चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दो तो अद्भुत समझमें आवेगा, व्यक्तिव नजर नही आयगा। अरे यह चैतन्यस्वभाव तो अद्भुत है। इसमें कि नी दूमरेका प्रवेश नही है तब फिर इसका नाना रूपमें अमुक कयो है ? पत्येन जीवका अपना स्वरूप यारा यारा है। यह वान तो तुम्ह तब समझमें आवेगी जब कि अपने आन दस्वरूपमें दृष्टि दा। इन तरहमें जीवक चारने नाना बातें स्याद्वादसे विदिन होती हैं। पर उनमें किनी एकरो पण्ड लो या किमी अपेक्षा किमी अय अपेक्षाका मिलान कर दो तो दरो कि नाना मत बन गए ह। और उन नाना मतोंके विवादमें पढ़नेमें केवल कलह ही मिलता। उनसे आत्माको शांति नही मिलेगी। आत्माको शांति तो अपने आपके दशनमें हीनी है। और यदि शांति नही मिलती है तो समझो कि उसरा निमित्त कोई अय है, क्योंकि आत्मा तो स्वयं स्वयकं लिय अनाकुन स्वरूप है।

यदि अपनेम कल्याणकी भावना है तो अपने अतरणमें श्वित ज्ञानके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके कल्याण प्राप्त कर सकत हो। एक व त प्रसिद्ध है कि शिवभूति नामके एक मुनि थे। उनको पहन गुरु महागजने यह विखाया कि "मा तुप मा रप।" इसका अर्थ यह है कि गग द्वेप मत करा। कुछ समय तक शिवभूति मुनि मा तुप, मा रप रटते रहे। वे और सब शब्द तो भूल गए पर तुप माप शब्द ही केवन याद रह गया। तुप माप कापमें सूधय प है। मा तुप, मा रप, तुप माप रटते रहे, पर उह ज्ञान नही हो पाया। एक दिन चा जा रट थे। मागम एक महिला मिली। वह महिला उरदकी दाल धो रही थी। तो उरद की दान तो जानत हों तो महीन पीमी जानी है, उन दालमें मसाले डाले जात ह। उस दानकी

पिट्टी करते हैं। तो पिट्टी बन नेके लिए जो वह उरद धो रही थी वह रुफेद रुफेद रह गई थी। जब शिवभूति महाराजने उस रुफेद रुफेद दालको अलग व उरदके छिलकाको अलग देखा तो ज्ञान हो गया। उन्होंने देखा कि ये छिलके तो सब प्रकटमें अलग अलग हैं, पर जब दालमें भी लगे थे तब भी ये अलग ही थे। इसी तरह यह वह तो छिन्नेके मानिन्द है और आत्मा दालके मानिन्द है। देहमें रहता हुआ भी यह आत्मा देहसे अलग है। शरीर व राग द्वेषके बीचमें कमा हुआ यह आत्मा है, फिर भी आत्मा तो दालके मानिन्द स्वच्छ है और यह सब उपाधि उरदका छिलका है। इन समस्त कर्मोंके बीचमें यह आत्मा कमा होनेपर भी उन सबसे न्यारा है। ऐसा जिन्होंने "यारा अपनं आपको नहीं समझ पाया है उनकी बड़ी कुण्ठिता होती है। मैं आत्मा क्या हूँ और क्या हूँ ? इसका पता जिन्हें रहना है उन जीवों के विषयवपाय समाप्त हो जाने है। इस जगतमें जो अपने आत्मतत्त्वको भूल गये हैं उनकी दुःखकी यह कहानी है। सो यदि कोई ज्ञानके साहित्यिक मागमें नहीं पड़ा और यदि अपने आत्मतत्त्वको समझ गया है, अपने आपको समझ गया है, तो उसे जीवनमें बनेरा नहीं होगा। उसकी जीवामें दुःखकी कहानी नहीं बनेगी, सदा प्रसन्नता और आनन्द रहेंगे। किन्तु इसमें सत्यका पूर्ण आग्रह करना पड़ता है। हे भाई, ऐसा आग्रह करनेके लिए निष्पक्ष भावकी जरूरत है। अंतरमें शुद्ध आत्मकल्याणकी भावना हो तो उस आत्माके दशा अपने आप हो जाते हैं। मुझे करना क्या है ? मैं स्वतः सिद्ध परिपूर्ण पदार्थ हूँ, स्वल्पतः कृपा हूँ। अतः अब यह मैं आत्मा अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि करके अपने आपमें रमूँ और सत्यस्वरूप बन जाऊँ।

यह अन्तजगत, इस जगतकी बात नहीं यह रहे है जो मुझसे "यारा अपनी सत्ता लिए हुए है, किन्तु अपने आपमें उठने वाले जो बल्लोल है, रागद्वेष आदि जो परिणाम हैं उनकी कह रहे हैं कि यह जो जात है, यह जो मेरी दुनिया है यह हर्षादिक वासनासे उत्पन्न होता है, यह अन्तजगत राग है, यह विषयवपाय स्वरूप है। मोही लोग कहते हैं ना किसीका इष्ट गुजर जाय तो कि मेरी दुनिया मिट गयी। देखो केवल पुरुषके बारमें, यत्किने बारमें कल्पनाएँ बनाकर दुःखी होते हैं। और कहते कि मेरी दुनिया मिट गई। बाहरमें इसका कुछ है ही नहीं, मिटेगा क्या ? हा जसी कल्पनाएँ करता था पहिले, अब वे नहीं हो पाती, यही उसकी दुनियाका मिटना कहलाना है। जो पहिले कल्पनाएँ थी वह तो अब नहीं रही। अब तो केवल उस इष्टको ही अपना सबस्व मानकर दुःखी हो रहा है। इससे वह अपने इष्टके मिट जानेसे ही यह समझना है कि दुनिया मिट गयी। क्या मिट गया ? कोई किसीके शरीरसे प्रेम करता है क्या ? अरे उन मर जाने वालेका घरमें कुछ रक्खा रहगा क्या ? चाहे वह खूब भ्रमाता था, अच्छी तरहसे परिवारका पालन करता था। खूब धन दौलत एकत्रित कर ली

थी, पर ह भाई वह ड्रष्ट यदि मर गया है तो उमके शरीरमे भी कोई प्रेम नहीं करता । अरे देखो यदि कोई मर जाता है तो मुर्दाको उठानेके लिए कभी कोई पच लाग जात है तो घरके बच्ची स्त्री इत्यादि सब रोने है । रोते हुए कहते हैं कि अर इस मरको कहा लिय जा रहें हों ? यदि वे लोग वह दें कि अच्छा नहीं लिय जाते तो फिर वे घरके ही सब हाथ जोड कहेंगे कि कृपा कर अब ले जाइयेगा । देखो, न तो किमीका नेहमे प्रेम है और न आत्मासे प्रेम है । और फिर ये रोगा धोना क्या है ? इससे क्या लाभ ? इस मिट जाने वाले शरीरमे कौन प्रेम करता है ? तुम्हे इस शरीरमे प्रेम करनेसे कोई लाभ नहीं । तुम्हें तो आत्मासे प्रेम करना चाहिए । सो आत्मासे भी प्रेम कौन करता है ? यह आत्मा तो चतन्यस्वरूप पदार्थ है सबसे निराला है । जैसा यह ह तमा ही जगतके अन्य चेतन पदार्थ ह । उस चेतनस भी कौन प्रेम करता है ? इस जीवकी दुनिया तो अपना अपना अतर्विकल्प है । ह आत्मन् ! यह दुनिया कही बाहर नहीं है, अपनी कल्पनाओसे ही यह बात उठनी ह कि दुनिया कही अर्थ है । कल्पनाओके उठनेसे ही पहिले उठने वाली कल्पनावकि न हानेपर कहत है कि हाय दुनिया लुट गई ।

एक मनुष्य लखपति है, उसको यदि एक हजारका नुससान उठाना पड गया तो उसकी शकल मुरत देखो तो वह उदास, दुखी, लुटा हुआ नजर आघगा । और जिस मनुष्यकी गाठमे केवत एक हजार ही रुपये हैं, अधिक नहीं है और अगर एक हजारका लाभ हो जावे तो वह प्रसन्न होता है । वह तो प्रमत्त चित्त रहता है खुशियाँ मनाता हुआ रहता है । देखो उसमे लगभग ४६ गुना अधिक धन है फिर भी वह अधिक दुखी, व्याकुल परेणान हो जाता ह और जिसके पास बिल्कुल थोडा साधन है वह हमना हुआ, खुशियाँ मनाता हुआ रहता है । तो भाई कल्पनाए जहाँ जैसी जगी वहा उसकी वही दुनिया है । अरे भाई व्यथकी कल्पनाए न करो । देखो २४ घट व्यथकी कल्पनाओमे ही पडे रहने हो और दुखी हुआ करते हो ? भाई इन २४ घटामे २ मिनटका समय तो परमाथमे दो । यदि २ मिनटका ही समय पर माथमे दे दो तो जीवन सफल हो जायगा । २४ घट आतव्यानमे ही नगा रहे तो उमका क्या जीवन है ? इस स्थितिमे रहो कि २४ घटमे कुछ मिनट तो अपन आत्मचित्तनमे नगा सरो । सत्य और असत्यका निणय करलो और अपनेको सत्यमे मुरक्षित कर लो । वह सत्य है । दृढ चतन्यमात्र एक वस्तु अपनेको सत्यसे निराना समझो और यह समझो कि मेरा किसीसे कोई भी सम्बध नहीं है । मचमुच मैं कुछ नहीं हू, केवल चतन्यस्वरूप, ज्ञानमात्र, ज्ञानानदधन एक वस्तु हू, ऐसा अपने आपका निरखो तो जीवन सफल हो जायगा ।

अर भाई जिन पदार्थोंस राग कर रह हो, मोह बना रह हो वे कुछ नहीं है । जमे तुम स्वतन्त्र हो वमे ही व सब है । अपने आपमे २ मिाट तक ऐसा अपन आत्मस्व



धितन करो कि बाह्य वस्तुओंका ध्यान न रखो। केवल अपने आत्मरूपको ही अपने सामने रखो तो जितने भी विकल्प हैं, दुःख हैं सम्प्राप्त हो जावेंगे। जैसे पहले बताया था कि प्रत्येक चीजमें ३ बातें हुआ करती है—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। इसी तरह पुत्र ३ होते हैं—शब्दपुत्र (२) अर्थपुत्र (३) ज्ञानपुत्र। बताओ कौनसा पुत्र अपना तुमने इन तीनोंमें माना है? तुम्हारा शब्दपुत्र है क्या, नहीं। अरं पुत्र केवल शब्दोंमें लिखा हुआ है वह पुत्र नहीं है। तो तुम्हारा अर्थपुत्र है क्या? जो दो हाथ और दो पैर वाला है। अरे यह पुत्र तो अपने खुदके कपायमें रहने वाला है, स्वार्थी है। इसलिए यह पुत्र भी तुम्हारा नहीं है, नहीं; मरता है तो उस पुत्रके बारेमें जो ज्ञान बनता है वह ज्ञानपुत्र ही तुम्हारा पुत्र है। यह ज्ञानपुत्र जिग वक्त है उस वक्त ही तुम्हारा है अर्थात् वह भी नहीं है, क्योंकि वह तो नश्वर है, भिन्न-जाते वाला है। और परमार्थमें देखो तो जब ज्ञानपुत्र है तब भी वह तुम्हारा नहीं है—तुम तो मृत हो, ज्ञानपुत्र अमृत है। आकुलताएँ क्यों उत्पन्न हो जाती हैं? ये राग द्वेष आदि भाव कैसे उत्पन्न हो जाते हैं? केवल कल्पनास। उनके मिटनेका उपाय ज्ञानोपयोग है। भैया! देखो जब मंदिरमें पूजनके लिए, स्वाध्यायके लिए, धर्मके लिए, मत्सर्गके लिए आते हैं तो वहाँ पर इसीलिये तो जाते हैं कि रागद्वेषका उपयोग बंदसे, ज्ञानज्ञान प्रयोग हो। यदि रागद्वेषादिकी बातें करते हैं वहाँ तो उन बातोंसे आकुलताएँ उत्पन्न ही होगी, और अचक्षुः प्राणे किमि जगह आकुलता दूर करनेका उपाय बनायगा? मंदिरमें पूजन करने जाते हैं तो मत्सर्गमें, धर्मपालनमें, धर्मव्यवहारमें उनके रागद्वेषादिक विकारोंमें गतर तो कुछ पड़ जाया है। इन रागद्वेषोंसँ छुटकारा प्राप्त करनेके लिए ही व्यवहारधर्मका पालन विना जाता है। मंदिरमें पूजा करने जाना है—इस भावनामें ही प्रायः अहंकारकी भावना सम्पन्न हो जाती है। देखो जिसको जिम कामसे प्रेम है उसको उस कामसे मतलब है, कामके करनेवालेसे, मतलब नही है। व्यवहारधर्मकी परम्परा चलती है उससे ही विवेकीको समाजमें मतलब है। कायकर्मोंको लक्ष्यसे मतलब नहीं। देखो भगवानके दर्शन पूजन करनेके लिए मंदिर आनेके वास्ते स्नानाक्षरते हैं तभीसाधमपालन हो रहा है। मंदिरमें आनेके लिये भक्त नगे पैर मागझर, ललवाग है अगीन निरखर्वन रख कर प्रभुभक्ति करनेसे ईर्ष्या, द्वेष, मोह तथा अहंकार इत्यादिकी भावनाएँ समाप्त होती हैं। लोग ऐसा समझते हैं कि धर्मका पालन करनेसे हम और हमारी सत्संगसममें रहकर अपना कल्याण कर सकेंगे। यही सोचकर वे धर्मका पालन करते हैं धर्ममें रहते हैं। यह तो व्यवहार परम्पराकी बात ठीक है, किन्तु उसमें भी परम्पराकी बने तो वह भी व्यवहार धर्म है।

वास्तवमें भक्तसंगमें प्रयोजन है कि वह रागद्वेषसे बच जावे और आत्माका अहित करनेवाले जो विषयकाम हैं उनको दूर कर देवे। वस पूजा आदि का यही प्रयोजन है।

भक्तिमे जो ध्यान समाया हुआ होता है, उसका अर्थ करने वाले ये विषयकपाय ही होते हैं। उन विषयकपायसे दूर होनेके लिए हमें धर्मव्यवहार करना है। देखा जो मनुष्य भगवानके दर्शन करनेके लिए मंदिर आते हैं वे मंदिर आनेकी तैयारीमें घरपर ही धमका पालन करते हैं। क्योंकि स्नान करते हैं और स्नान करनेके बाद यह भावना बनती है कि हम भगवानके दर्शन करेंगे, धमका काम करेंगे। यह प्रयोजन जो मनमें बसा होता है तो यही धमका पालन वहाँ है।

मंदिरके आदर-गए तो क्या बातें करते हैं कि आज तुम्हारे घरमें क्या खाना बना था, क्या आर्ज हो रहा है, शामको क्या खाना बनाया, मुकदमेका क्या हुआ इत्यादि अनेक प्रकारकी व्यथकी बातें एक-दूसरेसे करते हैं। देखो भाई हम लोग कितने विरुद्ध बन गए? कहीं तो हम शीतराग-भगवानके दर्शन करने, अपने सर्वस्व विकल्प दूर करने और अपनेको स्वच्छन्द करनेके लिए मंदिर गए थे और कहीं रागद्वेषकी बातें करने लग। घर प्रभुपर अगर न्योछावर हो जाओगे तो दर्शन मिलेगा और यदि रागद्वेषोंपर ही पड़े रहें तो प्रभुका दर्शन नहीं हो पायेगा। रागद्वेषोंमें पड़े रहना ही विकल्प है। यह स्थिति औपाधिक है, विनश्वर है। मेरी जो चीज है, मेरा जो परिणाम है वह मेरे स्वरूपके अनुकूल ही होता है।

मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे, यह तो बड़े गजबकी बात है। फिर मेरी चीज कहीं रहेगी? मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे तो मेरी क्से? य रागद्वेष, मान, माया, मोह, विषयकपाय ही मुझे दुखित करते हैं, तो ये सब मेरे नहीं हैं। मेरा तो केवल मैं हूँ, मेरा यह नहीं है जो मुझे दुखी करे तो मेरा वह क्या है? मेरा है वह मेरा स्वभाव। मैं तो केवल स्वभावस्वरूप हूँ और बाकी सब मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ वह अनादि हूँ अनन्त हूँ, अचल हूँ, अपने-आपके ही द्वारा अनुभवमें आने योग्य हूँ। ऐसा मैं तत्त्व स्वभावमात्र हूँ, मैं यही स्वरूप सवस्व लिए रहता हूँ, इसके आगे मेरा कुछ नहीं है। इस आत्मस्वरूपके दर्शन करनेसे सब सत्त्व विकल्प क्षीण हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। हम प्रभुके दर्शन करते हैं कि कहीं हमको दर्शनमात्रसे यह संदेश मिलता है कि हे प्रभो! आप चक्रवर्ती थे, आपके पास बहुत बड़ा साम्राज्य था। आपके ज्ञान द्वारा, आपने धर्म विभूतिको नहीं चाहा। उसको आपने असार समझा। उस वैभव विभूतिमें आप नहीं फँसे, अलग ही रहे और अपने आपको ही अपने उपयोगमें लगाया। आज आप जगतमें पूज्य बन गए। हे प्रभो! मैं आत्मा भी आपके ही सदृश हूँ। जैसे आप हैं वैसे ही मैं हूँ। इस जगतके जीवका असली स्वरूप ही ऐसा है। हे आत्मन्! तू भ्रातृगत समाज अपनेको निरख। तू अपनेको यह समझ कि मैं भगवान सदृश हूँ। इस औपधिक विनश्वर अन्तर जगत्को त्याग करके अपने निर्वाणस्वरूप आत्मस्वभावको निरख ता मेरा कर्तव्य है और बाह्य बातोंमें फसनेसे मेरा बलयाण नहीं है।

आचार्योंका उपदेश है कि मसारका त्याग करो, मसारको छोड़ दो । मसारको छोड़ना कहलाता क्या है और मसार कहलाता क्यों है ? क्या ससार इस दुनियाकी जगहका नाम है ? क्या इस लोकका नाम मसार है ? अगर इस दुनियाकी जगहका नाम ससार है और इस लोकका नाम ससार है तो इसको छोड़कर कहाँ जाओगे ? क्या कोई अलोकमें पहुँच जाओगे ? जगतका नाम ससार नहीं है, किन्तु रागद्वेषकी जो वासना बने, वस उसीका नाम ससार है । ससारका त्याग कर दें, इसका अर्थ यह है कि रागद्वेषकी वासनाओंका त्याग कर दो । प्रत्येक जीव भिन्न भिन्न है, अपने स्वस्वरूपमें हैं, अपने आपमें परिणमते हैं । एकका दूसरेसे सम्बन्ध कुछ है ही नहीं । फिर किसी भी परवस्तुमें राग, द्वेष, विकल्प करना क्या यह अज्ञानता नहीं है ? ज्ञान और अज्ञानका तो यह प्रमाण है कि जहाँपर मूढता है वहाँपर ज्ञान अज्ञानता दीखती है और जहाँपर मूढता नहीं है वहाँपर प्रसन्न हृत्ता दीखता है । जहाँपर मूढता नहीं वहाँपर सम्बन्ध हो जाता है और जहाँपर मूढता है वहाँपर मिथ्यात्व है । तो यह मिथ्यात्व ही ससार है । जब तक यह मसार है तब तक जीवको रक्षण है । यदि ससारका त्याग करो अर्थात् इन रागद्वेष विकारोंकी वासनाओंका त्याग करो तो मारे वलेश समाप्त हो सकते हैं । रागद्वेषकी वासनाओंका नाम ही ससार है । कोई यहाँ कह कि रागद्वेषकी वासनाओंको तो ससार कहा, रागद्वेषकी ही ससार क्यों न कह दिया ? उत्तर इसका यह है कि द्रव्यमें प्रति समय समय एक एक परिणामन पर्याय हो रह है तो जीवमें भी प्रतिसमय एक एक पर्याय होने होते चले जाते हैं । एक समयमें दो समयके पर्याय नहीं होत । दो समयमें एक पर्याय नहीं । तब रागके पर्याय भी प्रतिसमय एक एक चरता जा रहा है । यह सूक्ष्मदृष्टिना जिक्र किया जा रहा है तो एक समयका राग, पर्याय अनुभवमें नहीं आता है और एक समयके राग पर्यायसे ही जीव क्या राग महसूस कर लेगा ? अपने आप ऐसा नहीं होता है, किन्तु बहुत समयकी राग पर्यायोंका उपयोग ग्रहण करता है । इस कारण सूक्ष्मदृष्टिसे रागके सतानका अनुभव होता है । और दूसरी बात यह है कि राग द्वेषमें जो आसक्ति हो जाती है उसको मसार कहा गया है । इसी कारण सम्बन्धज्ञान होनेपर कदाचित् रागद्वेष रहता भी है तो भी उनको गिनती नहीं की गई । वे मिट जावेंगे । इसलिए वासनाको ससार कहते हैं । इस वासनाका विनाश होने पर ही मसारका त्याग कहते हैं । ससारके प्रत्येक जीव ज्ञायकस्वरूप है, परमात्मस्वरूप है । उनका कोई भी जीव न तो मित्र है और न शत्रु है । वह जीव है, ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानमें परिणमते रहते हैं । उपाधिकी विशेषताके अनुसार उनमें विकार भी होत रहत हैं । उनमें विकार उनकी ही परिणतिसे होते हैं, किसी अयकी परिणतिम नहीं होते हैं । ऐसा स्वयं विज्ञानघन जगतके सब जीव हैं । उनको कमें माता जाय कि वे शत्रु हैं ? कोई भी मेरा शत्रु नहीं है । कोई ज्यादा बिगड़ता है तो जो कुछ उसे विकार बनाना होगा वह बनावेगा, वह

अपने आपको ही बनावेगा, मेरा वह कुछ नहीं बनावेगा। तब फिर मेरा दुश्मन कौन ? मान दृष्टिसे देखो तो इस जगतमें मरा शत्रु कोई नहीं है। जिस आत्माना मन ऐसा रहता है कि यह मेरा दुश्मन है तो वह विकल्प उसका दुश्मन बना रहता है, उसका शत्रु बना रहता है। पर परमाधमे दखो तो इस जगतमें कोई विनीका शत्रु नहीं। जो दूसरोंको शत्रु समझता है, वह विकार कर रहा है वह विकार अपनेमें करता है, अपने लिए करता है और अपने द्वारा करता है। मेरा प्रभु तो मैं हूँ, मेरेमे बाहर कुछ नहीं है तो फिर मेरा दुश्मन कोई कौनसे है ? इसी प्रकार जिसको मित्र मान रह हो, परिवारको इष्ट मान रहे हो वह भी तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा सब कुछ हो सकता है। अपना स्वयं मैं हूँ, अपने स्वरूपमें वर्तता हूँ। उपाधिको विशेषताके अनुसार विकार भी करता हूँ, मोहभाव भी करता हूँ स्नेह राग भी करता हूँ। मैं अपने आपमें करता हूँ अपने आपने लिए करता हूँ और अपने द्वारा करता हूँ।

एक गाँव खुरई मागरके पास है। श्रीमत सेठ वहाँपर एक बहुत बड़े आदमी थे। उनके जो लहके हैं वे भी सेठ हैं। वह सठ बड गम (तेज) दिमागके थे। उनकी स्त्री गुजर गयी थी। उनकी दूसरी शादी भी हो गयी थी। जब सठानी शादीके बाद सठके घर आयी तो सेठानीकी सखियोंने, मित्राणियोंने समझाया कि दखो सेठ बहुत गम दिमागके है, अगर वही सेठ जी जिगड जाते हैं तो मुश्किल पड जाती है। सेठानी भी चतुर थी। उसने सेठके बारेमें तो सुन ही लिया। एक दिन सेठके सिरमें दद था। स्त्रीको खबर मिजवाई कि तुरत दवा लावो। सेठानीके मनमें ऐसा विचार आया कि अगर वही मैं अभीमे दव गयी तो जिन्दगी भर दबना पडेगा। इसलिए आज सेठको कोई कला दिवाळ तब तो छूट पाऊगी। बस सठानी ने सिरमें दद बना लिया। बोली घर मेरा सिर दद कर रहा है। मैं क्या करूँ ? सेठ जी को नई नई शादी हुई थी, उनको अपनी स्त्रीकी खातिर तो करनी ही थी। इसलिए वह अपने सिरकी ददको भूल गए और अत्यंत विह्वल हो गए। अब सेठ जी अपनी बात तो भूल गये और मोहमें सेठानीकी सेवा करने लग। मान लिया कि सेठानीके सिरमे दद भी हुआ तो क्या सेठकी वेदनाने उसकी वेदनाको बनाया ? नहीं। उसने तो केवल सेठके प्रति राग कर लिया था। उस रागने ही सेठानीकी वेदनाका बनाया।

कोई जीव कहते हैं कि हम तुमसे राग करते हैं, हमारा तुमसे बड़ा राग है। ऐसा करनेसे वह राग कर तो क्या हमारा रागसे राग कर रहा है ? नहीं। वह स्वयं ही कल्पनाएँ बनाकर एक नया राग और खडा कर देता है। किसी जीवकी परिणामतिसे किसी जीवको कुछ हो जान तो नहीं हो सकता है। जितने ही आदमी ऐसे रागी होत हैं कि वे दूसरोंके प्रति रागी है। तो क्या एकका दूसरेमे राग पहुँच गया ? नहीं। एकका दूसरेसे सम्बन्ध ही क्या ? तो जब प्रत्येक जीव जुद-जुदे है, किसीसे किसीका सम्बन्ध नहीं है तो ऐसा चिन्तन अथ पदायी

का, अथ जीवोका उपयोग बनाकर तत्काल और राम बनाकर रहना, इससे तो मूढता ही बहूमे । और मूढता कहा जाय या मोह कहा जाय—दोनोका शाब्दिक अर्थ एत है । अगर मूढ बहे तो ससारके लोग कुछ बुरा मान जावेंगे और यदि मोही बहे तो लोग शायद बुरा न मानें । बात तो एक ही है । और है भी क्या ? समझना फेर । तां बस इतना ही तो जाल है । यदि इससे जुदा हैं अर्थात् अन्य जीवोको अपना उपयोग न बनावें, बाह्य वस्तुघोषा ख्याल न करें, रागद्वेष न बनावें तो जाल नहीं है । वह मूढ और मोही नहीं कहा जावेगा ।

अरे यह कितना जाल है ? बहुत छोटसा जाल है । केवन ममभना भग है । मं हैं और अपने स्वरूपमे हू—ऐसा न देखकर यह इसका कुछ है, यह इसका कुछ कर नेता है, इस प्रकारकी जो समझ बन गयी है, बस वह समझ ही जगजाल है । इससे बढकर और कुछ नहीं है । जब गृहस्थीका दद फद मिरपर गा जाता है, लडवा बीमार है, अमुक बीमारी है, यह करना है, अभी दूवान जाता है । यो करना है मुवदमा कई ट । इस प्रकारमे बहते हैं कि उडे जगजानमे फमे हुए ह । अरे बाहर कोई जाल नहीं है । न जान दूवानमे है, न लडको बच्चो धर्गराने है, न आत्मनस्त्वमे है, न शरीरमे है, केवल अपने आपके आत्मस्वरूपको शुद्ध सबसे निराला उपयोगमे नहीं देखता है और बाहरमे ही मुख कर लिया है तो यही तेरा जग जाल बन गया ह । अरे तू अपनी बाह्य दृष्टिको हटा दे, अपनी रागद्वेषकी भावनाको मिटा दे तो यह तेरा जगजाल मिट जायगा ।

देखो कितने जगजान हैं और कितने पीरपसे ही वे मिट जाते हैं ? कितना टटिन लग रहा है ? उन सब कठिनाइयोका कारण रागद्वेषकी वासना है । यह वासना अगर मिट जाय तो क्लेश मिट जाएँ और अगर यह वासना नहीं मिटती है तो क्लेश नहीं मिटेंगे । यह क्लेशध वासनासे ही हाना है । जिन कपायाका उदय है उन कपायोमे होने वाली कमप्रकृतियोंमे ज्यादा अनुभाग पड जायगा, पर बध सबको पड जायगा । जिन जिन विचारोकी वासना है ।

ह आत्मन् । क्रोध क्या कर रह हो ? मान, माया, लोभ, क्रोध इत्यादि विकारोकी वासनाएँ क्यों बना रह हो । यदि तू इन वासनाआस दूर है तां क्लेश दूर है और यदि इन वासनाओको अपनेमे बनाए हुए है तो आजीवन क्लेश रहगे । इसलिए इन वासनाओको मिटाने का उपाय करना चाहिए । गृहस्थीके चरित्रना आचार्य गुणभद्र स्वामीने बताया है कि वह तो हाथीका स्नान है । हाथीने स्नान किया और बाहर गया कि धूनको मूडमे भरकर अपने ऊपर डाल ली । इस तरहमे वह फिर गदा हो गया । गृहस्थो भी सीमा उनाकर त्याग करते हैं । दस लक्षणके दिन आ गए तो बहत है कि अर हम काम नहीं करेंगे, दूकानमे नहीं बैठेंगे, घमके काम ज्यादा करेंगे, अब हम पाव बनेंगे, पर यह वासना बनी हुई है कि दस लक्षणके

दिन निकलने तो दो, फिर जल्दीसे जाकर दूकानमें बठेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे। इस प्रकार की वासना मनमें भर लेते हैं।

अरे यह तो वास्तविक त्याग नहीं हुआ। सीमा बना करके त्याग करना ठीक नहीं होता है। मप्तमीको नियम कर लिया, नौमी तक उपवास रहेगा, पर यह वासना बनी हुई है कि नौमीके ८ बजने तो दो। जल्दीसे खाना बनावेंगे, खाना खा लेंगे। यह कर लेंगे वह कर लेंगे, ऐसी वासना बनी होती है। साधुकी चरित्रमें दायी तो ऐसी वामना नहीं बनी होती है। उनको यह पता ही नहीं रहता है कि भोजन करने जायेंगे कि क्या करेंगे? उनको यदि तीव्र भूख लगेगी तो उठेंगे नहीं तो नहीं उठेंगे। इसी तरह अनलचौदमका व्रत है, वहाँ भी गृहस्थी लोग यह वासना बनाए रहते हैं कि अनल चौदसके बाद पूनमके ७ बजने तो दो। यह भोजन करेंगे, वह रसपान करेंगे। पर यह ख्याल साधुकी नहीं होता है। वह साधु तो चञ्चोकी तरह ही हैं। यदि तीव्र भूख लगी तो खड़े हो जावेंगे, नहीं तो नहीं खड़े होंगे पर उमकी वामना रच भी न रखेंगे। गृहस्थ ऐसा नहीं कर पाता है। यही तो गृहस्थ और साधुमें फरक पड़ गया है। साधुके वासना नहीं होती है और गृहस्थ वासना बनाए रहता है। इसका क्या कारण है? गृहस्थके आरम्भ व परिग्रहका सम्बन्ध है। तो इस वासनाका विनाश कैसे होगा? अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिसे कि यह म आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप है, जाननहार है, यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मेरा धर्म है, जानन यह अमृत है अनतानन्त भावकी लिए हुए है ऐसे ज्ञानानन्दपन भावमय यह मैं आत्मा हूँ। इसमें किसी दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है। इसके स्वभावमें विकार नहीं है। रागद्वेषकी वासनाएँ बनाना, इसका काम ही नहीं है। रागद्वेषकी तरफ, यह गडबड बात उठ जाती है। कमे उठ जाती है? उपाधिका निमित्त पाकर हो जाती है।

सिनेमाका पर्दा स्वयं चित्रित नहीं होता है। तो कमे चित्रित हो जाता है? यह देखो मामने फिल्म आ गयी। फिल्म उपस्थित हुआ और फिर वह चला गया। तो पर्दा अपने आपमें उठकर चित्रित नहीं हो गया। पर्देका मात्र स्वतः चित्रित हो जानेका काम ही नहीं है। चित्रित तो फिल्मके निमित्तसे हो गया है। इसी प्रकार यह आत्मा स्वयं रागद्वेष नहीं बनाता। आत्माका स्वभाव ही रागद्वेष बनाना नहीं है। कमउपाधिका निमित्त पाकर यह चित्रण होता है। इन रागद्वेषाका जो संस्कार बनता है वह वासनाओंके कारण ही बनता है और इन वामनाओंके कारण ही क्लेश होने हैं। य सब क्लेश इस आत्मदृष्टिके द्वारा ही नष्ट हो जाते हैं। मैं एक ज्ञानस्वभावमात्र हूँ, ऐसा एकरम हूँ, सबसे निराला हूँ, ज्ञानमय हूँ, शुद्ध हूँ, जुदा हूँ, दशन ज्ञान हूँ, सम्पत्त्व हूँ, मृत पिंडरूप नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त और कुछ मैं नहीं हूँ। परमाणु मात्र भी मेरा कुछ नहीं है। ऐसा उपयोग बनानेसे ही इन रागादिक वासनाओंका

विनाश होता है। और जब वामनाश्रय विनाश होता है तो बलेश मिट जाते हैं।

जब कोई राग होता है तो देखनेमें आता है कि जल्दी जल्दी प्रवृत्ति होती है और जब उमरी वासना होती है तो जल्दी भोगनेकी प्रवृत्ति होती है। जब वामना नहीं होती है तो बाह्यदृष्टि भी समाप्त हो जाती है। जिसके फोडा नहीं है वह मलहम पट्टी क्यों लगाने, जिम्मे बुखार नहीं है वह पसीना क्यों निकाले ? जिसके वासनाएँ नहीं हैं वह आशुताएँ 'याबु-लताएँ' क्यों करेगा ? जब वासनाका रोग होता है तो इलाज करना पड़ता है। जिसकी वामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, फिर इलाज नहीं करना पड़ता है। तो इन वामनाश्रयों का त्याग तो अपने आपकी दृष्टिमें ही होगा। मैं हूँ, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें हूँ। परके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें मैं नहीं हूँ। मैं स्वरूपसंशुद्ध हूँ, स्वयं परिणामनशील हूँ, इस कारण निरंतर परिणामता रहना हूँ। मैं परिणामता ही चला जाता हूँ। इसका दूसरासे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह ज्ञानकी परिणति है तो अपनी परिणति स्वभावके कारण अपने ज्ञानकी परिणति चलती जा रही है। इसका बाह्य पदार्थोंमें कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे चोरी, कमण्डल आदि पदार्थोंका ज्ञान हुआ, तो इसका चोरी, कमण्डल किसी चीजमें सम्बन्ध नहीं है। मेरेमें जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें इस चोरी और कमण्डलों कोई मरी मदद कर दी है क्या ? अरे यह कोई भी चीज मददगार नहीं है। शुद्ध ज्ञानकी परिणति होती रहती है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। हम लोग तो आवरण लिए हैं, इस कारण ज्ञानकी कुछ कमी है और यह आवरण मिट जाय तो ज्ञान सब विश्वका उत्पन्न हो जाय। फिर तो मात्रा विषय अपने आप जाननेमें आया तो इस सारे विषयकी मरे जाननेमें क्या है क्या ? प्रत्येक पदार्थ है, परिणामशील है, परिणामते रहते हैं, ऐसा ही यहाँ जान रहा है। सभी द्रव्योंकी एनी निगाह रहे तो सम्यग्ज्ञान और शांति प्राप्त होनेका यह अच्छा उपाय बनता है और तब सत्कारके बलेश दूर करनेके लिए हमें अपने आत्मस्वरूपकी आराधना करनी चाहिए और आत्मस्वरूपकी आराधना, देखनी आराधना, गुस्ती उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप करना चाहिए। और दसिये मुफ्तका कूड़ा कचरा, बरबट वभव अपने घरमें आ गया है तो उमरा दान किया जाय, त्याग किया जाय। ये ६ कतव्य गृहस्थके बताए गए हैं। देखो भाई कूड़ा कचरा क्या है ? धन वैभव ही कूड़ा कचरा है। उसके प्राप्त करनेमें अपनी कोई वतमान करतूत है क्या ? आपका स्पष्ट है क्या ? अरे वे तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले हैं, अगर एक जगह आ गए तो मुफ्त ही तो है।

आत्माका तो आकार अपने ज्ञानपर्यायमें है। इस वैभवमें क्या तुम्हारा गया ? कुछ गया तो नहीं, इसलिए यह वैभव विभूति मुफ्त ही तो है। इसलिए वह कूड़ा कचरा कह-लाया। धन जब है, जीव चतुष्टयस्वरूप है, मेरा इसमें कुछ नहीं है। यदि यह कूड़ा कचरा

नहीं है तो तीर्थकरोने चक्रवर्तियोने इसे बँसे त्याग दिया ? विभूतिका त्याग देना क्या उनकी बेवकूफी समझना चाहिए । इस आत्माके स्वरूपको देखनेमें और धनके करनेके प्रसङ्गमें शुद्ध नयकी ही बात सामने रखी जाती है और इसमें उनभक्तकी बात सामने नही रखी जाती है ।

दसो भाई २४ घंटे हैं । २३ घटका समय तो विकल्पोमें लग गया, पर एक घटका जो समय बचता है उसमेंसे २-४-१०-१५ मिनटका समय तो आत्मस्वरूपके चिंतन में लगाओ । अपनेको सबसे निराला, शुद्ध, ज्ञानमात्र, विकल्प भावोंसे पर अनुभव करो । यदि इस प्रकारका अपने आपको अनुभव करो तो जीवनमें शांति प्राप्त हो सकती है और यदि अपने को लुटरो खचोरासे मिला हुआ अनुभव कराए तो शांति नहीं प्राप्त हो सकती है । अपनेको ज्ञानस्वरूप, सत्रमें निराला एक विनक्षण चतन्वयमें अपने आपको अनुभव करो और २४ घंटेमें २४ मिनट तो अपने आत्मस्वरूपमें दृष्टि दो तो आवुलताए व्याकुलताए नष्ट हो जावेंगे । हम मूर्तिकी मुद्राया दर्शन करते हैं ता हम शिक्षा मिलती है कि मूर्तिकी तरह ही शांत अपने आपको निरखू । अपने आपका उम मूर्तिकी तरह शांत निरखे बिना शांति नहीं मिलेगी । इस प्रकारसे मानो कि उनकी बीतरागमुद्रासे अपनेको शिक्षा मिली है ।

जहाँ पर वासनाएँ हैं वहाँ दुःख है वहाँ व्यसन है । तो भाई य व्यसन तो जानके द्वारा ही नष्ट हो सकत हैं । मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ ऐसा तुम्हें अपने आप को निरखना है । यही तो इस आत्माका काम है, इस आत्माका इसका आग और कोई काम नहीं है । इसलिए अपने स्वभावमें दृष्टि हो तो वहाँ वासनाएँ समाप्त हो जावेंगी और वासनाओंके समाप्त होनेसे सार बलेश समाप्त हो जावेंगे ।

पुरुषाय चार होत है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । धर्मके माने हैं, पुण्य करना, दान करना, परोपकार करना, दूसरोंका सेवा सत्कार करना । धर्म, अर्थ और कामके माग ही अर्थ तो मिलेंगे, माक्षमाग तो बंद हो गया है । धर्मके माग तो कितने ही हैं । दान करके, परोपकार करके, गरीबोंको खिला पिला करके इत्यादि अनेक प्रकारसे धर्म किया जा सकता है । और अर्थके माने हैं धन कमाना । धन कमाना पुरुषाय करना, इसीको कहते हैं अर्थ पुरुषाय । काम पुरुषायके माने हैं घरवासियोंका पालन पोषण करना, समाज तथा दशके बंधन में कुछ सेवा भाव उत्पन्न करना, विषयभोग सेवना इत्यादिके माने कामपुरुषाय है । और मोक्ष पुरुषाय तो मोक्ष है ही । यह मोक्ष पुरुषाय अन्य तीनों पुरुषायोंसे अच्छा है । धर्म, अर्थ और काम पुरुषाय भी गृहस्थावस्थामें किसी अपेक्षा कुछ अच्छे हैं, मगर सर्वथा अच्छे नहीं कहेंगे । 'दयो अच्छे नहीं कहेंगे ? एक एककी खबर लो । पहले कामको लो । काम निर्वर्ण होता है । कामकी अर्थ पालन पोषण और कामवासना दोनों ही हैं । काम ज्ञानका बंधन



है। जैसे विषयोमे आमक्ति है, प्रीति है तो वहाँ ज्ञानका काम तो नहीं चलता है। कामका पुष्पाथ है ज्ञानका दुश्मन। अथ अथपुरुषाथको लो। धन तो अनथका मूल है। अर्थात् धन से अनथ होता है। इस धनका काम तो केवल अथ है और कोई काम नहीं है। धनके होने पर यदि विवेक है तब तो काम बनेगा और यदि विवेक नहीं है, मोह है तो मोहके होनेमें स्वभाव ऐसा हो जाता है कि पाप करते हैं दूसरोको सताने है, क्रोध करते हैं, छत्र, दम्भ, धोषा इत्यादि करते हैं। धर्मपुरुषार्थ, कामपुरुषाथ व अथपुरुषाथका कारण है। पुण्यका और काम क्या है? खूब कमाई आ रही है, खूब संपत्ति भोगनी मामग्री मिल रही है तो पुण्य परमाथमे यह प्रवृत्ति है कि कामपुरुषाथ और धर्मपुरुषाथम सहयोग द। पुण्यपुष्पाथ का और क्या काम है? यहाँ आत्मधर्मकी बात नहीं कह रहे। उसमें यदि रम गए तो दूसरे अच्छा और क्या काम है? तब तो फिर सारे काम बन गए। यहाँ तो पुण्यकी बात लेना। इस पुरुषाथसे क्या काम बना कि धन-सम्पत्ति मिल गई भागसामग्री मिल गई यही हुई अथपुरुषाथकी बात। और दूसरे पुरुषार्थानी पोलको तो मुत्ता ही लिया। काम ज्ञानका दुश्मन है, अथ अनथका मूल है और दोनों ही दुश्मनका बढावा देने वाले हैं, यह धर्म (पुण्य) पुष्पाथ इन तीनों पुष्पाथोंका सम्यग्ज्ञानी पुरुष आदर नहीं करते हैं। यदि पुरुषाथ करना ही है तो ज्ञानका पुरुषाथ करो। परमपुरुषाथका रास्ता ज्ञान है। यदि ज्ञान है तब तो परमपुरुषार्थ हो सकता है। नहीं तो मोक्षपुरुषाथ नहीं हो सकता है।

अभी देखो शांति, मतोष, मुख आर आनन्द इत्यादि उभी अवस्थामे आते हैं जब कि अपने अंत करणमे विषयनपायोका अनुभव न हो। यदि विषयाका लगव है, वपायाका लगाव है, धन वैभवका लगाव है, कुटुम्ब परिवारका लगाव है तो शांति सतोष, मुग्ध, आनन्द इत्यादि कैसे प्राप्त हो सकते हैं? जिनका लगाव इन सबमे होगा उन्हें दुर्गतिका पात्र बनना पड़ेगा। मनुष्यको सबटोमे बचाने वाला केवल ज्ञान ही है। और इसका कोई शरण नहीं है। घरमे स्त्रीके, पुत्रके हजार मुण हो, पर समझो कि कोई देवता नहीं हमें मित गया है। अपने मामे ही केवल विचार बना लेते हैं कि मेरा अच्छा समागम हुआ, हम लोग सुखसे हैं। देखो भाई इन तरहमे परिवारको देखकर और अपने धनको व्ययकर सुखी हो रहे हैं। व अपने ज्ञानको इन बाह्य चीजोमे ही फमाए हुए हैं। बाह्यमे ज्ञानका फमाना ही आसवका कारण होता है। सो कहते हैं कि धर्म अथ, काम—ये तीनों पुष्पाथ वास्तविक पुष्पाथ नहीं हैं। मोक्षका पुष्पाथ ऐसा है कि जिससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। और यदि अपना उपयोग मोक्ष की प्राप्ति ही बने सा बान उत्तम है। अरे जो तुम्हे जो चार पाँच आदमी मिल गए हैं, जिनको तू अपना सवम्ब समझता है उनसे ही क्या तरी गुजर हो जायगी? उस पारिवारिक बंधनमे पडा हुआ यदि तू मोज करता रहा तो क्या तेरा पूरा पड जायगा? बाहरी ज्ञानने

तेरा पूरा नहीं पड़ेगा, शांति नहीं मिलेगी। बाह्य भागमाधनमे तो यह जीव जहाँ जाना है अपने हितपथमे आगे नहीं पहुँचता है।

एक कथानकम कहने है कि एक राजा थे। मुनिके दशन करनेके लिए गए। राजाने अपने वारमे मुनिसे पूछा कि महाराज मेरा परभव क्या गुजरेगा अथ मैं मरकर क्या बनूँगा ? मुनिने अवधिज्ञानसे सोचा और कहा कि तुम अमृत्व दिन, अमृत्व समयमे, अमृत्व स्थानपर तुम मरकर विष्टाके कीडा बनोगे। अब राजा अपने घर आया। बड़ा उदाम था। अपने लडकेसे वह दिया कि वेटा मैं अमृत्व दिन अमृत्व टाइमपर, अमृत्व स्थानपर मरकर विष्टामे कीडा बनूँगा, सो तुम हम एक लकड़ीसे मार डालना। मैं तो राजा हूँ और कीडा मकीडा बनूँगा तो मैं कीडा मकीडा बनकर इस जगत्मे नहीं रहूँगा। राजा मर गया और कीडा बन गया। लडका एक लकड़ी लेकर पहुँचा। जिस विष्टामे राजा कीडेके रूपमे बसा हुआ था उसी जगह लकड़ीमे लडकेने मारना चाहा, पर वह विष्टामे घुम गया। दखो भाई वह कीडा मरना नहीं चाहता था। इस जगत्मे यह जीव जिस गतिमे जन्म ले लता है वह अन्य गतिमे नहीं जाना चाहता है। देखो नाम प्रकृतिमे गनिया चार मानी गयी हैं—नरक, तियञ्च, मनुष्य और देव। इसमे दो गति, नरक व तियञ्च पाप है और मनुष्य व देव ये दो गति पुण्य हैं तथा आयुकी चार प्रकृति हैं—नरकायु, मनुष्यायु, तियञ्चायु व स्वर्गायु। जिसमे आयुकी तीन गतियाँ हैं—तियञ्च, मनुष्य और देव ता पुण्य प्रकृतियाँ वही हैं केवल नरकायु पाप है। यह फल इनमे कमे आया ? कोई भी तियञ्च या मनुष्य या देव जीव यह नहीं चाहता कि मैं मर जाऊँ। केवल नरकी ही चाहत है कि मैं मर जाऊँ। तियञ्च नहीं चाहता कि मैं मर जाऊँ। तियञ्चकी तो आयु प्रिय हो गयी। तियञ्चकी जो कर्मिया गुजर रहो है उसे वह नहीं चाहता और मरना भी नहीं चाहता। यह जहाँ जाता है वही मस्त हो जाता है। जिनसे ये माह कर लेते उनस पूरा पड जावगा, ऐसा ता है नहीं।

हे आत्मन् ! विवेक ही पूजा है। जिनकी हम भगवान समझकर पूजा करते है मदा ध्यान लगान है, भक्ति करते हैं उनके ज्ञानकी कुछ तरंग ही नहीं उठती। कितना ही हम माया रगडन है पर वह हमारी तरफ देखत भी नहीं। दखो भया ! बहुत दिन भक्ति करते हो गए, उनका ध्यान लगात हो गए, उनकी आराधना करते हो गए फिर भी हमारी तरफ ताकने भी नहीं, देखन भी नहीं। और फिर भी हम पूजन भी करन पाठ भी करते चले जा रहे हैं, फिर भी वह हमे पूजने भी नहीं। दखा भाई अपने दिन भगवानका पूजन करते हो गया उन्होंने कभी यह भी नहीं कहा कि चलो यह लो। कुछ नहीं मिला। वह हमसे बोलत भी नहीं, बहुत दिन बीत गए, १० वष बीत गए, २० वष बीत गए, दुगो बीत गए, हमारे लिए प्रभुने कुछ नहीं किया। अरे थोडासा हमसे बोल दें ता हमारा दिल ता ठका हो पाय।

मगर कुछ नहीं किया। फिर भी हम उनको पूजते जा रहे हैं, उनके लिए हम न्योटावावर होते चले जा रहे हैं। कुछ तो बात है भगवानमें बड़ी तभी तो हम पूजते हैं। उन भगवानमें जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है। सबसे मोह छोड़कर, ममत्व छोड़कर अपने आपमें स्वयं बस गए, अपने आपमें ही आना जान किया, वैभव विभूतिको कुछ नहीं समझा। तो प्रभु निष्कम्प सबन मददगी अनतान दनय है, सर्वोत्कृष्ट हैं।

हे आत्मन् ! य बाहरके पदार्थ भोगसाधन क्या है बतलाओ ? एक तराजूमें सेरभर मेढक तोलो तो क्या तौल मकोण ? अरु वह उछल जावेंग। वही इधरसे उछाल दी तो वही उधरमें उछाल दी। इसी तरह बाहरी पदार्थोंकी व्यवस्था बनाकर कोई चाह कि हम आराम कर लें तो नहीं कर सकते हैं। बाह्यपदार्थोंकी हालत भी ऐसी ही है कि यह आया वह गया, और वरु आया, रह गया। इस तरह बाह्यपदार्थोंमें अपना उपयोग बनाकर हम आराममें नहीं रह सकते हैं और अपनी व्यवस्था बनाकर हम आराम कर लेंगे, यह सुगमतया हो जाता है। ज्ञानदृष्टि बना लें फिर सुखमें रह, आरामसे रह। य धम याने पुण्य अथ और वाम पुरपाथ हमारी विपत्तिका कारण बनत है। हमारी अशक्तिका कारण बनत है। गृहस्थको यह बताया गया है कि धमपुरपाथ, अथपुरपाथ और कामपुरपाथ तीनोंके बिना नहीं चलता है अर्थात् बिना धम किए धन कमाये काम किए और मौज किए बिना काम नहीं चलती है, सो भाई य तीनों पुण्यार्थ गृहस्थको करना पड़ेंगे। परंतु उनको बताया है कि तीनोंमें बराबर का यत्न करना चाहिए। धन कमाना, पुरपाथ करना, धम करना सबसे बराबर दृष्टि रखनी चाहिए। और अगर कोई बराबर नहीं रखता है, केवल धममें ही लगा रहता है, केवल धन कमानेमें ही रगा रहता है या केवल काममें लगा रहता है तो उस गृहस्थका गुजारा नहीं चलनेका है। अगर केवल धम ही धम करते हो तो मुनि बन जाओग तो गुजारा चल जायगा। पर एक गृहस्थका गुजारा नहीं चलेगा। उसकी गृहस्थीका काम ही नहीं चल सकता है। केवल धम को ही खींचकर रह जावें तो गुजारा नहीं चलेगा। साधुका तो केवल धमवृत्तिमें गुजारा चल जायगा, पर गृहस्थका गुजारा नहीं चलेगा।

जैसे साधुबोरो खाना मिल गया तो खा लिया और यदि न मिला तो न खाया, इस तरह उनका गुजारा तो चल जायगा पर त्रिवग बिना एक गृहस्थका गुजारा नहीं चल पायगा। और यदि कोई गृहस्थीमें ही फसा रह, धन ही धन कमानेमें पडा रह, अपने परिवार का पालन पोषण ही करनेमें पडा रह तो क्या उसका गुजारा चल जायगा ? नहीं। और कोई ऐसा है कि काम ही काममें रह, दिपयामें ही मस्त रह, खाने पीनेमें ही आसक्त रह जिनसे मोह है, उनकी सेवा पुशामद, पालनपोषण ही रह और धम परपाथ न कर तो भी उसका काम नहीं चलेगा। इसलिए गृहस्थको धमपुरपाथ, अथपुरपाथ और कामपुरपाथ तीनोंमें

ही ममान समय देना चाहिए । धमके समयमे धम करें, मौज उडानिके समयमे मौज उडावें और धन कमानेके समयमे धन कमावें ।

देखा चार पुग्पाथ बताए गए हैं—धम, अथ, काम और मो । मान पुग्पाथ तो आजकल चलता ही नहीं । केवल तीन पुग्पाथ रह गए हैं । और चौथा पुग्पाथ जो अब चलता है वह आपको बतावें तो शायद मुहा जायेगा । वह पुग्पाथ प्रहिया भी है । आजकल चौथा पुग्पाथ चलता है सोना, नींद लेना, मानसी एवजपर अब चलता है नींद लेना (इमी) । देखो काम चार हैं— धम, अथ, काम और अयन । और घट है चौबीस । प्रत्येक कामसे २४ घटके भाग दे दिया तो ६ घट प्रत्येक कामका हुआ । ६ घटका काम है धम करना ६ घटे धन कमाना, ६ घटका काम है पान पौषण करना और मौज उठाना और ६ घटका काम है नींद लेना आराम करना । चाहे थोडासा अंतर पड जाय पर इस तरह काम चलेगा और क्रम भी इस प्रकार चलेगा । धम सुनह करना, उसके बाद अथका काम, धन कमाने का काम, उसके बाद पालन पोषण करने और मौज उठानेका काम, उसके बाद नींद लेने और आराम करनेका काम । जैसे धम ४ बजे सुनहस १० बजे तक याने ६ घट और पान का काम अर्थात् धन कमानेका काम १० बजेसे शामके ८ बजे तक, और ४ बजेसे १० बजे रात तक पालन पोषण तथा मौज उठानेका काम और १० बजे रातमे सुनह ४ बजे तक नींद लेने और आराम करनेका काम । भले ही थोडा सा परिवर्तन पर ला मगर ये काम बराबर बराबर चलें । ४ बजेसे १० बजे तक नहीं तो एक घटा कम ही मटी । ६ बजे तक ही सही । इमी टाइममे थोडा धम पुग्पाथ भी कर ला प्रात उठत ही बायोस्केमिमे नमाकार मन्त्रका जाप कर लो । उसके बाद हाथ पर घोकर स्वाध्याय कर लो, फिर सामायिक कर लो, सामायिक करनेके बादमे नहा ला, धो लो । दूधो नहाना धाना भी गममे ही शामिल है जब कि यह भाव है कि स्वच्छतादि करना है । फिर धम करा स मा करो इत्यादि ।

अब भी देखो धम ही चल रहा है । घरमे जो रसोई तैयार करणा उसमे भी धमका ही काम है क्योंकि वह ढीठ मसोडेका बचानर खाना तयार करणा और फिर वह किसी मुनि अनिधि धनीको बिनाएगा । ऐसी भावनाएँ होनेपर धम होता है । दूधो रनाईका काम घट डेढ घण्टे हो जाता । यदि रसोईम क्तोरी चीज बगर बनाना है तो ज्यादा टाइम लगेगा । अर रसोई तयार करनेमे भी देखा धम ही चलता है । सोच तो मनन ता सग धम ही धम चल सरता है । धमका अन्तमे ता २४ घटा ही टाइम है, किन्तु मुख्यताकी अपणा वान चल रही है । अर देखो ४ बजे सुनहस ६ या १० बजे दिन तक धम ही धम किया । अर १० बजे शाम तक धन कमानेका समय था गया । धनको यदि ईमानदारास व के भावसे कमाओ तो वहा भी धम है, मध्यमत्वमे तो २४ घटा धम ही धम है ।

मे ४ बजे तक धन कमाया जाय । फिर ४ बजेमे १० प्रजे रात तक लडरो, दच्चाका पालन पोषण करना, मिलना जुलना, मत्सग करना, सभा मीटिंगमे जाग, मीज उडाना इत्यादि । और फिर १० बजे रातमे मुबह ४ वजे तक नीद लेना, आराम करना । इस तरहमे बटवारा करना ठीक है । अब क्या प्राकी रह गया ? कुछ नहीं । जानी योगीके नो तीनो जो पुग्पाथ है धम, अथ और काम ग आदरके योग्य नहीं होते है । धन कमाना और विषयके काम करना तो यह तो सीधे नराव हैं । अथपुरुपाथ करना भी अथसे मिलता है । पुण्य ही यहाँ मदद देता है । पुण्यके कारण ही धन कमा लिया जाता है, भोगनेवन साधन होता है । जानने ही तीनो पुग्पाथोका उपयोग हो तो गृहस्थानस्थामे कुछ ठीक है । गृही तो यह स्पष्ट बात तो है ही कि ये तीनो पुग्पाथ ससरकी बान हैं । आदरके योग्य तो केवल आत्मधम है । कपायकी मदताकी धम कहते ह, किन्तु कदाचित् तपाय मद होन पर धम हो गा न हो । किन्तु अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिरूप धम द्वारा कपाय मद हो जायगी और मोक्षमाग भी चलेगा । उम धमसे सत्य आदर प्राप्त होगा । अरे अपने सहजस्वरूपकी दृष्टि ही धम है । अपने स्वरूपमे दृष्टि अधिकसे अधिक लगे तो वही धम है । धनरो चीज तो यो ही हो जायगी अथवा धन तो यो ही आता है । उसमे कुछ करना नहीं पडता है । अभी कोई समय ऐसा सुयोगका बन जावे तो यो ही कमाई हो जावे । अभी अभी २—४ मिनटमे ही बिना किए हुए ही कमाई हो जावेगी । पर हमें तो सोचना होगा, श्रद्धा करनी हागी, आचरण करना होगा, अपनेमे अपनेको लगाना होगा तभी अपना ठीर रहेगा । धम तो करनेमे ही होगा वानी धन तो यो ही हो जायगा । यदि हम ऐसा ही करें तो यही धमका पालन होगा । सो अब हम अपने पर्यायके आदरको त्याग करके अपने सत्यस्वरूपपर दृष्टि दें और अपने आदरको ही अबनोक कर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वयं मुखी होवें ।

जगनके सभी जीव सुख चाहते ह और जितने भी य यत्न करत है सुख पानेके ही यत्न करते है । धन कमाना, देशसेवा करना, विषयसाधन बनाना, कपाय करना, भोग भोगना, आत्महत्या कर डालना इत्यादि सारके सार यत्न मुयके लिए ये जीव करते है । उन यत्नोसे सुख मिल ही जाय, ऐसा तो नहीं है । यदि वे योग्य काम ह तो सुख मिलेगा और यदि अयोग्य काम हैं तो सुख नहीं मिलेगा । परंतु सभी प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं । सुख होता क्यों नहीं है ? देखो जितने कारण जो कुछ ह उनमे विचार करो तो अतमे एक ही बात मिलेगी, सुखका दुश्मन है दीनताका भाव, दीन परिणाम । दीनता सुखका दुश्मन है । पचेन्द्रियके विषयमे जब इच्छा होती है तब दीनता आती ही रहती है । अपनेमे विषयोकी चाह है तो दीनता होगी । परवा भाव आ गया स्त्रीके आधीन हो गए या नए नए जो साधन हैं उनके आधीन हो गये, समुरालके आधीन हो गए, यही दीनता है । परिणाम

गरीब हो गए। अपने बलका कोई मूल्य वह नहीं करता है। यह दीनता ही तो सुखका दुश्मन है। दसों तरहके भोजन करनेके परिणाम हो गए। अब यह चीज चाहिए, अब वह चीज चाहिए इत्यादि इच्छासे वे पराधीन होते हैं। कोई मनावर भी दसों प्रकारके व्यञ्जन परोस रहे हैं। तो खाने वालेके मनमें आजाय कि यह चीज अच्छी है। बस इतनेसे ही जीव में दीनता आ गयी, उनका गौरव बुझ गया। चाहे ऊपरसे न मागे, मगर आशाके परिणाम आ गए तो दीनता है। और इस दीनताकी वृद्धिमें फिर वह मुखसे मांगने लगता है। यह दीनताका परिणाम ही मूलमें ऐसा है जो सुखका दुश्मन है। इसी तरह मन, शब्दु श्रोत्रके वशीभूत हुए तो दीनता छा जायगी और यदि किसी चीजके वशीभूत नहीं हुए तो दीनता नहीं आती है। जगतके किसी पदार्थकी चाह नहीं है तो दीनता कस आवेगी? एककी न देखो, कितनोके मामने ये जगतके जीव दीन बने रहते हैं। स्त्रीके दीन, कुटुम्बके दीन, धनके दीन इत्यादि जिन जिन बातोंमें चाह है जिन-जिन वस्तुओंमें प्रीति है उन सब पदार्थोंके दीन बन रहे हैं। सुखका अभाव किसने किया? दीनताने। धनहीन होनेको दीन नहीं कहते, किन्तु परवस्तुओंकी चाह करे, भीतरमें लच जाय उसे दीनता कहते हैं। यह दीनताका परिणाम ही सुखका दुश्मन है।

एक बार एक राजा जगलमें निकला तो वहाँ एक सयामी पैदा था। वह राजा सयामीके आगेसे निकल गया, पर नमस्कार भी नहीं किया, बोला भी नहीं और वहाँसे वापिस आया। कुछ धका भाँदा था, सो वह साधुके पास आराम करनेके लिए बैठ गया। राजाने विनय भी नहीं की और न कोई शुश्रूषाकी बात की। राजा गवमें भरा हुआ बैठा था। साधु बोला एक श्लोकके द्वारा कि हे राजन्—“वयमिह परितुष्टा बल्कलस्त्वदुक्कूलं, सम-इवपरितोषो निर्विशेषो विशेष । स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला, मनसि च परितुष्टे काञ्चवान् को दरिद्र ॥

यदि तुम रेशमके वस्त्र पहिनकर खुश हो तो हम वृक्षकी छाल और बल्कल पहिनकर खुश है। तुम यदि अथसे अर्थात् धनसे खुश रहा करते हो तो हम आचार्योंके ऊँचे-ऊँचे श्लोकोंके अर्थ लगाकर खुश रहा करते हैं। तुम यदि बड़े अच्छे अच्छे पलग, वाहन, आसनोमें खुश रहा करते हो तो मैं पारमार्थिक तत्त्वोंके विचारमें रहकर खुश रहा करता हूँ। हममें और तुममें अंतर क्या है? कुछ नहीं। पर राजन् दरिद्र वह है जिसके हृदयमें तृष्णा लगी रहती है। उसका मतलब यह था कि मुझ सयामीको दरिद्र देखकर राजा गवमें आ गया है। तो उत्तर दिया कि दरिद्र वह है जिसके अंदर तृष्णा लगी है। उसे ही दीनता कहते हैं। धनकी वमीसे दीन नहीं कहनाता। मुखका दुश्मन दीनता है। जब जीवको क्रोध आता है तब उसके मनमें दीनता आती है, घमड आता है, मोह करता है, मायाचार करता है, दूसरोंमें

सम्मान चाहता है और दीन होता है। सुखका दुश्मन दीनताका परिणाम है। सो दीनता आती जाती है और सुख चाहता जाता है। तो ये दोनों बातें तो नहीं होती है कि दीनता भी आवे और सुख भी मिले। ये दोनों बातें तो हो ही नहीं सकती है।

यह दीनता होती कैसे है ? मिथ्यात्वके पापसे भ्रमके पापसे। पाप ५ होते हैं। सुना होगा। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ—ये ५ ही पाप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी ये तो लोभदृष्टिसे जो दूसरोंको समझमे आते और जो व्यवस्था बन रही है वह बिगड़े ना। पर अदरमे देखो तो ये ५ पाप हैं—मिथ्यात्व क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोंमे कौनसा पाप छूट गया ? हिंसा, झूठ, चोरी वगैरा किए जात है तो इन्हीं पांचोंकी वजहसे किए जाते हैं। सो उनमे प्रबल है मोह। आप लाख दर्जे चाहते हैं मेरा हित चाहते ह और मुझे भ्रम हो जाय तो आपकी शकल देखकर पाप लग रह ह। मुझे भ्रम हो गया तो मैं मरा जाता हू, जना जाता हू। भ्रम तो पाप है। भ्रम क्या, धोखा क्या ? धोखा एक पापना बाप है। जिसने किसीको धोखा दिया ता धोखा देने वालेको टोटा है कि जिसे धोखा दिया उसे टोटा है। टोटा तो उसे है जिसने धोखा दिया। जिसको धोखा दिया गया है वह यदि जानमे है तो टोटा नहीं है और यदि जानमे नहीं है तो टोटा है। जिसने धोखा दिया उसका ऐसा रद्द परिणाम है कि वह कठोर बन गया। उसको तो विशिष्ट पाप है, उसका कैमे छुटकारा होगा, वह कैसे पार होगा ? जिसने धोखा दिया उसे पाप है। जिसको धोखा दिया उसकी आत्माको कितने क्लेश होने हैं, इमका तो वही अनुभव कर सकता है जिमे क्लेश होते हैं। जिमको धोखा दिया है उसके मनमे ऐसा तब आता है कि अगर साधन हो तो धोखा देने वालेकी अभी जान ले लें। और यह मिथ्या मोह भी क्या है ? धोखा ह। प्रश्न—जिसको धोखा दिया वह इतना सबलेश करता और हिंसाका विचार करता ह तो वह भी तो बड़ा पाप करता है। उत्तर—पाप तो वह भी करता है परंतु अभी यहाँ उसकी बात नहीं कह रहे है। यहाँ तो उसके दुखकी बात कह रहा हू। यह मोह भी क्या है ? यह विश्वासघात है, मोह है, मिथ्या है। जैसी बात है, जैसा पदाथका स्वरूप है वसा विश्वास नहीं बना और उसका उल्टा बना दठा तो यह धोखा है और अपने आपको धोखा दे रहा तो यह कितना धोखा है ? धोखा अपनेको देने वाला मैं खुद हू, कोई दूसरा नहीं है। अपनी कल्पनाओमे ही मस्त रहे। यह मोह कि हम काम ठीक कर रहे हैं, हमारा यो काम चल रहा है, हम मजेमे है इत्यादि, पर वृद्धावस्थामे कुछ खबर और ही होगी। ६०, ७०, ८० वष धोयेमे ही चले गए, कुछ नहीं बिया। जिसके जवानी है, बचपन है उसके ज्ञान विकसित नहीं हो रहा है, पर अतमे उसको धोखा है। जब लोगोको बट होने लगता, दुख अधिक सह लिये जाते तभी ज्ञान होता है। किसी किसीके जवानी या बचपनमे ही विवेक हो जाता है। ये जगत्के प्राणी अपनेको

घोखा दते जा रह हैं । अच्छा खाने पीनेका ही काम है, सतुष्ट होकर खाते हैं । अर इस सुप्त मे ही मस्त होकर अपने आपकी घोखा देते हो । ये सब तो नष्ट होने वाले हैं, मेरी चीजें नहीं है । लोगोका सुखमे मस्त होना अपने आपकी घोखा देना है । अर जो सुख प्राप्त हैं उनके भी तुम जाननहार रहो और जो दुःख होते हैं उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर क्या सुखम मस्त हुए जाने हो और दुःखमे घबड़ाए जाते हो ? यही तो इस समारमे विकार है । अर पर-पदार्थोंमें, परजीवोंमें मस्त न हो । उनमें मस्त होनेमे सुख नहीं होता ।

जिसके लालच है उसके ही दीनता है । और जहाँ पर दीनता है वहाँ पर क्लेश है । जैसे कोई किसी वस्तुमें लालच करे, परवस्तुबोध दृष्टि दे तो वही दीनता है । तो सुखका दुश्मन दीनता है । दीनताका परिणाम है और वही एक बड़ी दुःखति है । उसका कारण पाप है । पाप करें तो सारी बातें उत्पन्न होती हैं इमलिए पापसे दूर रहना, यही मनुष्यकी सर्वो-त्कृष्ट विभूति है । जो पुराणाम लिखे गए महापुरुष हैं उनमें यह विशेषता थी कि वे पापसे दूर रह, धर्ममें प्रीति रही । इसीसे उनके पुराण बन गए । भक्त लोग उनके चरित्रके पत्रा-पत्रा खोलते हैं और उनके चरित्र पढ़न है । उनमें यही विशेषता थी कि वे पापसे दूर रह । तो यह पाप जो है वही सुखका दुश्मन है । तो चाहिए ता यह कि इस पापको छोड़ दें । एक जगह शास्त्रसभा हो रही थी । अनेक लोग शास्त्रमें बठे हुए थे । एक लकड़हारा भी उस दिन शास्त्रमें बैठा था । शास्त्रमें पर्व पत्नी कि ये ५ पाप ही दुःखके देने वाले हैं । उनको त्यागना चाहिए । हिंसा, भ्रूठ, चारी, कुशील और परिग्रह । लकड़हारने सोचा कि कुछ और पाप तो मैं करता नहीं हूँ, केवल जगलमें हरी लकड़ी काटता हूँ । अच्छा उसे भी अब मैं नहीं काटूंगा । मैं केवल सूखी लकड़ियाँ बीन लाया करूँगा या किसी मूखे पदमे ही काट लाया करूँगा । मैं किसीसे भ्रूठ भी नहीं बोलता । केवल ग्राहकसे लकड़ीके ठहरावमें भ्रूठ बोलता हूँ सो यह भी न बोलूंगा । सड़े घाठ घाटाको लकड़ी लाऊँगा और घाठ घाना कहूँगा । चोरी मैं सिर्फ यह करता हूँ कि दा पमेकी चुगी बचा लेता हूँ । मैं चोरी भी नहीं करूँगा । मैंने किसी दूमरेकी स्तोत्र पुस्तिक भी नहीं डानी । अच्छा अब मैं पूरा द्रव्यचय कर लूँ । स्वस्त्रोसे भी ब्रह्मचय रखूँगा । परिग्रह भी क्या करना है ? ठीक है घाठ घानेकी लकड़ी बचता हूँ । दो घाठे धर्ममें खच करूँ, चार घानेमें गुजर बसर करूँगा और दो घाने जो बचते हैं उन्हें विपत्तियोंसे बचनेके लिए, सबटसे हटनेके लिए विवाह आदि कामोंमें लगानेके लिए जोड़ता रहूँ । अपनी बमाईक चार भाग कर लिय । उसके परिग्रहका नाम ठीक हो गया । इस तरहसे वह अपनी गुजर करता गया । एक दिन लकड़हारा जगलसे लकड़ी काटकर एक मेठकी हवेलीके नीचेसे निकला । सेठना नीकर रमोइया निकला बोला— 'लकड़ी बेचोगे ?' हाँ, हाँ बेचूंगा । कितना मे बेचोगे ? ८ घानेमें । ४ घाने लोगे ? नहीं । ६ घाने लोगे ? नहीं । ७ घाने लोगे ?



नहीं। लकड़हारा खल पड़ा। रसोइया बोली देर बाद बोला—अच्छा, लौट आओ। लकड़हारा लौट आया। माँके सात आने देंगे। रसोइयाने फिर वही कहा। तब लकड़हारा बोला—तू किस बेईमानका नौकर है? उपरसे सेठ सुन रहा था। सेठने बुलाया, बँठाया और बोला कि हमें क्यों बेईमान बना रह हो? कहा महाराज, नौकर भी जिस सगमें रहता है वंसा ही सीख लेता है। नौकर पहले तो बुलाकर कहता है कि मज़ूर है, फिर बादमें कहता है कि साँठे गान आने लगे। सेठजी तुम तो रोज शास्त्रमें बैठते हो, हम तुम्हें देखते हैं। हम तो केवल पहिले ही दिन शास्त्रमें बठे नबसे ही मैंने पाँचो पापोका त्याग कर लिया। अब मैं हरी लकड़ी नहीं काटना, चुगी वालेसे पैमें नहीं चुराता, झूठ नहीं बोलता, हम ब्रह्मचर्यका पानन भी करते हैं। अपनी कमाईका एक चौथाई धर्मके कामोंमें, दो चौथाई गुजारेमें लगाता हूँ और एक चौथाई विपत्तियोंके लिए, सफ़्टोंके लिए और घरके काम काजोंके लिए बचाता हूँ। सेठ बोला कि अरे लकड़हारे पुण्यवान तो तू ही है। सेठने उमका आदर सत्कार किया। प्रयोजन यह है कि दुर्गति तो पापोको लिए जिंदा रहने वानेको है। जो पापोको बनाता है, वह आदर नहीं बन पाता है और जो पापोसे दूर रहता है वह आदर सत्कार प्राप्त करता है, सुखी रहता है। सुखी होनेका उपाय है पापोका दूर करना है।

पाप पाँच हैं—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापाके जो वशीभूत है वह शांति नहीं प्राप्त कर सकता है। तो यह दीनता कसे नष्ट हो? जब अपना महत्त्व याद हो कि मैं तो ऐसा प्रभु हूँ तो दीनता नष्ट है। दीनता तब आती है तो जब अपनेको तुच्छ समझना है। दूसरोंमें ही मेरी जिंदागी है, दूसरोंसे ही मुझे सुख है—इस तरहके मिथ्या परिणाम रहते हैं तभी दीनता रहती है और यदि ऐसे परिणाम हो कि मैं आत्मा शुद्ध, चतुर सरूप हूँ जानानन्द भाव मान हूँ, विलक्षण हूँ, सर्वोत्कृष्ट हूँ, मैं ऐसा अपनी आत्माको देखूँ तो मैं सुखी हूँ, परिपूर्ण हूँ, मेरेमें हीनता नहीं है। हीनताका मेरेमें काम ही नहीं है, यह तो ज्ञानमात्र भाव है। इसमें तुच्छता कहाँ बसी है? इस प्रकारसे अपनेको नहीं देखता है और बाहरमें ही मोह लगाए रहता है तभी दीनता आ जाती है। इस दीनताके मिटानेका उपाय है अपने स्वरूपकी दृष्टि करना। जितना भी मुझ सुख मिलता है वह मेरे ज्ञानके विकाससे मिलता है।

एक मनुष्य भोजन करके अपने आपमें सुखका अनुभव करता है तो एक योगी उपवास करके, निराहार हो करके, अपने प्रभुके दशा करके सुख प्राप्त करता है। तब कसे कहा जाय कि सुखका कारण भोजन ही है। जो भोजन करके सुखी होता है वह अपने ही ज्ञानसे सुखी होता है। यदि कोई बहुत बढिया बढिया भोजन भी कराने है और दो चार चोचसे भी करते हैं याने बढिया भोजन प्रेमसे खूब कराते है और खुद भोजन करते जाते

हैं और कहते हैं कि खा लो ऐसा अच्छा भोजन तुमने कभी किया नहीं होगा। तुम्हारे बाप ने भी कभी ऐसा भोजन नहीं खाया होगा। इस प्रकारसे वह विषया बोल उगलते हैं। ता खाने वाला कितना दुःख महसूस करेगा? अरे बाह्य वस्तुने तुमने सुख माना है तो सुख ही उसमें निबलना चाहिए। तो मतलब यह है कि जो भोजन किया जा रहा हो उस भोजनमें सुख नहीं मिलता है, केवल कल्पनाएँ बना लेनेमें ही सुख मिलता है। मन्त्र ही जीवकी ज्ञानसे सुख मिलता है, परवस्तुकोसे सुख नहीं मिलता है। जो सुख महसूस करते हैं वह कल्पनाएँ करके ही महसूस करते हैं। जब भ्रम हो गया कि यह सुख इस वस्तुमें हमें मिल रहा है, बाह्य कितना बढ़िया है तो सुख हो गया। इसी प्रकारसे यदि भ्रम हो जाए तो परकी और झुकाव होगा ही और उसमें क्लेश होगा। यह वस्तु तो कितनी अच्छी थी? इस कल्पना के ही कारण उस इष्टके नष्ट होनेपर क्लेश होता है। सुख और दुःख तानके ऊपर ही निर्भर है। यदि अपनेमें पान है तो यहाँ दुःखाका नाम नहीं है और यदि ज्ञान नहीं है तो प्राजीवन क्लेश है। कल्पनाएँ बना लेनेमें दुःख सुख हो जाते हैं। अभी कोई क्लेश है तो अगर सही पान बना लें कि मैं तो ज्ञानानन्दपानमात्र हूँ, मैं तो सुखी हूँ तो क्लेश दूर जावेगा। एक मनुष्यको कोई अच्छा कौब मिल जाय, उसे यदि कल्पना हो जाय कि यह हीरा होगा। अरे यह तो २०-२५ हजारका कमसे कम होगा। बस समझो उसको ठसक आ जाती। अगूठीमें भीतरमें कोई कौब लगा है, उसमें चमक होनेसे यह भ्रम हा जाय कि यह हीरा है, कमसे कम १० हजारका होगा। इतनेसे ही वह प्रसन्न हा जायगा, सुखी हो जायगा। और यदि हीरा भी हो और जरा देरमें ही यह समझमें आ जावे कि अरे यह तो कौब है तो उसका चित्त बुझा रहना है। बाह्य पदार्थोंसे कोई सुख नहीं है, पर भ्रम ऐसा बन गया है कि बाह्य पदार्थों से ही सुख है—यही समझकर यह परिश्रम करता है और उनका सग्रह करता है। जैसे कुत्ते को सूखी हड्डी मिल जाय तो उसको मुहमें रखकर अकेलमें चलता है। उसके चवानेसे दाँत मसूदे फट जाते हैं, खून भी आ जाता है। अपने खूनका भ्रान्त आता है, पर भ्रम हो गया—उसको कि हड्डी चवानेमें भ्रान्त आता, हड्डीसे स्वाद मिल रहा है। यदि कोई दूसरा कुत्ता उसको दिनानेके लिए दौगता है तो वह गुराता है। उसके मसूदे कटनसे खून आ गया, उसे भ्रम हो गया कि यह हड्डीका खून है इसलिए उसे भ्रान्त मिला। यह दृष्टान्त है।

इसी तरह जगतके जीव अपने स्वयं ज्ञानसे, अपने ही भ्रान्तसे सुखी होते हैं। किन्तु उस समय जिन बाह्य पदार्थोंको उपयोगमें लिये हुए हैं उनसे सुखका भ्रम हो गया, सो कौट परवस्तुकोको पकड़ता और सग्रह करता है और उनके ही पीछे भ्रम चलता है। सही पता हो जाय कि मैं स्वयं ज्ञानानन्दपुञ्ज, अविनाशी तत्त्व हूँ। यदि यह पता पड़े तो इसके दीनता न रह। यह दीन हा जाता है किसी भी वस्तुको दगकर। पचेन्द्रियके विषयाको देखकर-यह

दीन हो जाता है, ऐसा दीन हो जाना ही उसके दुःखका कारण है ।

हृ आत्मन् ! अपने आपको निरखो कि मैं भगवान् सट्ठ ज्ञानमान् हूँ । इसमें दुःखों का काम ही नहीं है । इसके मारे प्रवेशोमे लबालब सुख ही मुख भरा हुआ है, आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है, आनन्दकी मेरेमें कमी नहीं है । मेरा ज्ञान मेरसे बाहर नहीं है और न आनन्द ही मेरसे बाहर है । मैं स्वयं ज्ञानानन्दधन हूँ, यह लक्ष्य ही जाय, ऐसा भीतरसे परिचय मिल जाय, दृढ प्रतीति हो जाय, ऐसी यह उपयोग बनानेके लिए तैयार हो जाय तो उसको भ्रमण नहीं मिल सकते हैं भैया ! पद्मसम्बन्धमें हानि ही हानि है । भ्रमेला है तो बड़ा सुख है और यदि दुकेला हो गया, विवाह हो गया तो क्या मिला कि चौपाया हो गया । दो पैर खुदके, दो पैर स्त्रीके । चौपाया जावर कहलाते हैं । दो हाथ पैर वाला मनुष्य था, चौपाया हो गया । बच्चा हो गया तो छेपाया हो गया । भदरा हो गया । बच्चेका विवाह भी हो गया तो अष्टपाया हो गया अर्थात् मकड़ी बन गया । मब डीका जाल होता है । उसने अपनेमें जाल बनाया और फस गयी । ५० ६० ७०-८० वर्ष तक उनकी ही धुनमें लगा रहा है, चाटू कितने ही सकट भ्रावें ? घरमें बसने वाले लोगोंको मान लिया कि ये मेर है । अरे ये दुनियाके लोग क्या हैं ? ये सब अपने लिए मोहमें विपदाएँ हैं । ऐसा भाव अपने मनमें बने कि मैं भगवान् तुल्य, ज्ञानानन्दधन पवित्र आत्मा सबसे न्यारा हूँ । परन्तु ज्ञान तो यह आता है कि यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है और बाकी तो सब गैर है । वे चाह मर जावें, चाहे जो हो जावे, उनसे मेरा सम्बन्ध नहीं । पर अपने घरके जो २-४ मनुष्य हैं उनको पकड़े हुए है । अरे इन २-४ मनुष्योंका मोह छोडो, य सब तेरे कुछ नहीं है । इनके मोहसे ही तुम्हें ससारमें रलना पडेगा । मगर उहीके बारेमें भक्ति है, भावना है और ज्ञान है । दस लक्षणमें दान नरें, वृत्त नरें, पर मोह न नरें, ऐसी बातका उत्साह तक भी नहीं होता । भैया ! सब कुछ करो, पर मोह न करो । जगतके समस्त बलेश पापोसे आते हैं । तो मैं इन पापोंको अपनेसे दूर करके अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ ।

यह आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है । उस स्वरूपको देखकर जगतके सभी पदार्थोंपर दृष्टि डालते हुए जब निरूप्य करते हो तो विदित होगा कि यह आत्मा सबमें महान है, इसे अमयसार कहा जाता है । समयका अर्थ है—“स एकत्वेन अयते स्वगुणपर्यायान् गच्छति इति समय” जो अपने गुणपर्यायमें तन्मयतासे हो, रहे उसे समय कहते हैं । सभी पदार्थ समय हैं, वे अपने ही गुणपर्यायमें तन्मय हैं । तन्मय होना तो स्वभाव ही है । इस कारण सब पदार्थ समय कहलाते हैं । उनमें सार क्या है, यह आत्मपदार्थ ऐसा अनुभव करना कि जगतमें सब कुछ होता है, धर्म है, अधर्म है, पुद्गल है, काल है, आकाश है, पर एक जीव नहीं है, एक चैतन्य पदार्थ नहीं है तो क्या हो ? व्यवस्थाएँ कुछ भी न होगी, कुछ चल पहल न हो

इन सबको जानने वाला यह जीव पदार्थ, जीव तत्त्व ही व्यवस्थापक हैं, सबको जान। दखने का ही इसका स्वभाव है। कितना भी दूर हो कुछ, सत् हो, इस आत्मामें यह शक्ति है कि उन सबको जान लेगा। सामन हो या पीठ पीछे हो। लेकिन जान सबका रहगा। कोई पदार्थ वही भी रहो। ग्रामना सामना तो क्या है ? जान तो अमृत तत्त्व है। इसमें स्वभाव से ही ऐसी बला है कि जो कुछ भी हो इसके जाननेमें आ जाय। जाननेका जिसका स्वभाव है वह मैं आ मा हू। उम आत्माका महत्त्व क्या होता है ? इस आत्माके महत्त्वको बतानेवा कोई दावा कर तो वह विद्वानोंमें हँसीका पात्र है। जगतके जितने भी जीव हैं सब भगवान्-स्वरूप है। राम, विष्णु ब्रह्मा, हरि और उहे बड़े राजा महाराजा जो महापुरुष हुए हैं जितने भी हैं वे सब क्या है ? वे आत्मज्योति ही तो हैं वह आत्मास्वरूप ही तो है। त्रिगादस लेकर मिद तक जो जितन विकास है वे सब एक इस आत्मामें ही तो है।

यह आत्मा वह है जिसमें अनन्त गुण हैं। या तो बहुतम ४—६ आवेंगे, पर गुण अनन्त है—जान, दशन श्रद्धा चारित्र्य, आनन्द, शक्ति आदि अनन्त गुण हैं। उन गुणोंमें से केवल एक गुणको लें तो इसमें अनन्त पर्याय हैं। उन पर्यायोंमें से एक पर्यायको लें तो एक पर्यायमें अनेक अविभागप्रतिच्छेद है। प्रत्येक अविभागप्रतिच्छेदमें अनन्त रस है। ऐसे अनन्त रस का विड यह मैं महान् आत्मा हू। परन्तु जो अन्न इस आत्माकी दशा हो रही है वह इन्द्रिया के विषयोंके वशीभूत होकर हो रही है। इन्द्रियोंमें इस आत्माका लेन इन कुछ नहीं है फिर भी इस जीवों स्वयं भ्रम करते, अज्ञान करते अपनेको ऐसा बना रक्खा है कि न इसकी इन्द्रियोंमें शांति है, न विषयोंमें शांति है। शांति तो परमात्मतत्त्वमें होती है। अगर हम मान लें कि हमें शांति नहीं है तो हम समझ आयगी कि इन्द्रियोंके विषयोंमें ठग लिया है। दखो तिर्यचोमें हिरन है, हाथो है मछली है, भवरा है, ये जीव एक एक विषयोंमें तमय हाकर मरणको प्राप्त हो जाते हैं। पर इस मनुष्यकी दशा तो दयो—यह तो सबविषयोंके आधीन है। जो समागम पाया, उठका भी उपयोग विषयोंमें लिय किया। इस माही पाणीन वभी धर्मका सेवन भी किया तो भोगके निमित्तसे किया, परिवार मुखर रह, मुत्तदामें विजय हा, पसा मिलने तराआदिकी भावनाए धमसेवनमें हो जाती है। धर्मपालन किया तो भोगके खातिर किया। राग, अज्ञान, मोहम आकर धमका पालन तो किया, मगर वह भोगके निमित्त ही रहा। आत्माके लिए धमका पालन नहीं किया। आत्मामें याने ज्ञायकस्वभावमें ज्ञानदृष्टि रहना तो इस आत्माका स्वभावका काम है। इसका काम धम प्रतिभासमात्र है। जो सत् है, वह भूतक गया बस इतना आत्माका काम है। इसका काम आत्माका काम नहीं है। आत्मामें देखो ता समस्त प्रदशोंमें जान और आनन्दरस ही भूत है, पर उतमें रुचि नहीं है मोहोकी। मोहो जीवका उपयोग बाह्यकी ओर है। शांति न मिल

सकी। अपने आपको देखो, सब पदार्थोंको त्यागकर ऐसी बुद्धि बन जाय कि यह तो मात्र मैं चैतन्यस्वरूप ही हू तो इस आत्माको शांति प्राप्त हो सकती है। यदि इस बुद्धिमें विलग हुए तो शांतिका कुछ मता है क्या? विषयोमें पडकर भोग लिया, मरणके समय क्लेश और विवल्परूप हुए। यो विषयभोगका ही माग लिया, यह तो शांतिका माग नहीं। शांतिका माग तो गुप्त है। शांति अपने ही अंदर अपने आप अपनेमें ही प्रकट होती है। ऐसा यह महान आत्मा इन्द्रियोके विषयोके कारण उगा गया, वंचित रहा। यह इन्द्रियो तो मुन्दर लगती हैं पर आनन्द की जगहपर क्लेश भोगना पडता है। और की बात छोडकर अपनेमें शोध आओ। क्योंकि बडी अवस्था हो जाने पर फिर पछतावा होता है।

अहो, अपना इतना समय गद कर दिया। दुखोंमें, चिंताओंमें समय गुजर गया। जो समय गुजरा वह समय वापस नहीं आना। उम्र १० वषकी हो गई लौकिक ज्ञानकी वृद्धि हुई, बाह्य सिलसिले चलने लगे। युवावस्था आ गई। युवावस्थामें भी ज्ञान नहीं किया वह भी दुखोंमें ही बीत गई। अब वृद्धावस्था आ गई तो पछतावा करते हैं। अरे अब तो सही परिणाम बनाओ, अभी काम बन जायगा। रागमें, मोहमें, विषयोमें आत्माको शांति नहीं प्राप्त हो सकती है। जगतके कौनसे जीव तुम्हारे हैं जो राग करते हो। केवल मायामय मूर्तियों ही तो देखते हो कि आत्माको भी देखते हो। अच्छा तुम राग किसमें करते हो? क्या शरीरमें इस अशुचि पिण्डसे। इससे तो करते नहीं, तब क्या आत्मासे करते हो? आत्मा तो अमृत चैतन्यमात्र है। जैसा एक चेतन है तसे सब चेतन है। अत आत्मस्वरूपके जाननेपर व्यक्तिभेद तब भी नहीं रहता, फिर राग ही क्या करोगे? यहाँ तो मायामय मूर्ति ही तो देखते हो। यह कुछ प्रीतिकी, चोज है क्या? आत्मासे प्रीति करना है तो आत्माके स्वरूपको देख। यह आत्मा एक ज्ञान भावमात्र है। ज्ञानमात्र आकाशकी तरह अमृत, किन्तु एक पान गुणको लिए हुए है। एक विलक्षण पदार्थ है वह तो वह है और ऐसे ही सब हैं। स्वभाव और आत्मामें भेद ही गजर नहीं आता। मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको देखता ही कौन है? और देखनेमें राग नहीं आ सकता है। वह ज्ञातादृष्टा ही रह सकता है। उस आत्मासे कौन प्रीति करता है? ये जितने भी बाह्य पदार्थ हैं वे सब चित्तुन असार है। इनमें हितका नाम ही नहीं है। यदि परपदार्थोंसे अपना हित मानते हैं तो समझो कि हम भ्रममें पडकर उल्टे उल्टे मागपर चल रहे, अरे इन, विषयोके मागको छोडो और अपने स्वरूपमागमें आओ। जिसमें उस सहजस्वरूप ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्वके दर्शन होंगे। वह तो प्रभुमा पवित्र है। जैसा प्रभुका आनन्द है वसा ही आनन्द उसका है। मैं अपने स्वरूपको देखू। बाकी सब व्यर्थ है। जगतका कौनसा ऐसा तत्त्व है जो हितकर हो, फिर कौनसी बातमें अहवार है? अज्ञ दस लक्षणोंका दूसरा दिन है और मार्गधर्म है, जिसका अर्थ हुआ कौमलता, नम्रता।

ऐसी बिनभ्रता ही जो खुद खुदमे ममा गई हो, खुद खुद ही खिली हा गई हा। ऐस आत्मानुभवका रस पी लो। यही शुद्ध आत्महितका माग है। जगतके अय पदार्थोंको तू न माग। कौनसे पदार्थ मेरे हैं ? कोई नहीं। प्रत्यक्ष पदार्थ अपने आपमे ही सत् है और फिर बिनाशोक है, नष्ट हो जाने वाला भी है। कौनसी ऐसी वस्तु है जो सदा रहती हो ?

भगवान स्वामी समन्तभद्रने कहा है—स्वास्थ्य यदात्यन्तमत्र पुमा स्वार्थो न भोग परिभगुरात्मा। तृपोनुपगात्र च तापशातिरितीवमाग्यद्भुगवान् सुपाश्व ॥

कहत ह कि जीवका आत्मतितन स्वास्थ्य क्या है अथवा उसका वास्तविक स्वाथ क्या है, आत्मप्रयोजन क्या है ? सदाके लिए स्वस्थ हो जाना यही जीवका परम स्वाथ है, परमहिन है। स्वास्थ्य कहत किसे ह ? स्वस्मिन निष्ठति इति स्वस्थ, स्वस्थम्य भात्र स्वास्थ्यम अपन आपमे ठहर रहनेकी बातको कहत ह स्वास्थ्य। सदाके लिए अपने आपमे रम जावो, ठहर जावो। ऐसा जो स्वास्थ्य है वह उरट्ट स्वथ है। यह भोगविलाग स्वहित नहीं, यह तो क्षणिक है। भोगकी प्रीतिमे केवल में खोया हुआ हू। देखो माही जन जा कर रह हैं वह सब कल्पनाके समय सस्ते लगत है पर य भोग विषय बडे महग पडेंगे। हाथ पैर मिलन है, मा मिलता है बहुतोमे ह्रूमत चलाई जा सकती है, बहुतोसे बात बनाई जा सकती है। इस प्रकारके विचारो वाल प्राणीका स्वरूप मा सवस्व खोया हुआ रहता है। वह नरक वाली योनियामे भ्रमण करता रहता है, जन्ममरणक चक्रमे पडवर वह कीडा मकीडा हो जायगा और उमे सदा दुख ही दुख हाग।

देवो तो गजबकी बात हमारी यह विविध सृष्टि इनने जीवाक रूपमे कैमे बन गई ? यह सब प्रकृतिकी उपाधिमे चेतन प्रभुकी कृपस्था है। परमाथसे तो मैं एक शुद्ध आत्मतत्त्व हू। यदि बाह्य पदार्थोंमे दृष्टि लगी है तो पतन है और यदि स्वमे दृष्टि लगी तो उत्थान है। जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, बीतराग सधन निर्दोष भगवान आत्मा अरहन्त एव सिद्ध है और ऐमे शुद्ध बननेके प्रयत्नमे जो लगा रहता है वह साधु है। ऐसा जानमय, चरित्रमात्र में सत् हू। अपा आपमे तमय हुआ ज्ञान आनंद आदि प्रकालिक शक्तियां मात्र जा अनत विलासवा लिए रहता है, जो अनेक प्रकारके पर्यायाको धारण करता है फिर भी वहीका वही है, वह चैतन्य प्रभु में हू। इसका ही पूणविकास अरहन्त व सिद्ध भगवान है। ऐसे शुद्ध भगवानकी उपासना करें तो यह हमारे उत्थानकी बात है। मैंने माना कि शुद्धके आश्रयसे शुद्ध होना हू व अशुद्धके आश्रयसे अशुद्ध होता हू। वर्तमानमे तो मैं शुद्ध नहीं, भगवान पर हू ता किसके ल'पसे मैं शुद्ध बनू ? स्वरूपको लक्ष्यमे लू तो मैं शुद्ध हो सकता हू। मैं शुद्धता लक्ष्य कर से आत्मा शुद्ध हो गई और अशुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा अशुद्ध हो गई। अब क्या पसंद न करोग कि अशुद्ध आत्माके तो आत्मा अशुद्ध हो। अब देखो शुद्ध आत्मा क्या है ? रागी दुपी

है, जो विषयकपायोमे भरा हुआ है, जो घूम रहा है ऐसी आत्माको अशुद्ध कहेंगे। उसके लक्ष्य में शुद्ध नहीं होगा तथा भगवान पर आत्मा है परका लक्ष्य परमाथसे होता नहीं। उनकी भक्तिसे उनके ध्यानसे उनके आश्रयमें आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती है। परमाथसे देखो तो इस आत्माके लिए यह आत्मा शुद्ध द्रव्य कहलाता है। कहते हैं कि मैं प्रत्यक्षसे यारा अपने आपमें तमय हूँ। आत्माके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंपर मेरा अधिकार नहीं है। मैं ही वह हूँ, मैं ही उपास्य हूँ, मैं ही परमात्म तत्त्व हूँ, इस प्रकारका तू मनमें विचार कर। तू उन बाह्यपदार्थोंका ध्यान न कर। तू उनकी ज्ञानका विषय न बनाकर अपने ही ज्ञानका परिणामन कर अर्थात् अपने ही भावोंका ध्यान बनाकर तू परमात्मोपयोगी बन। परद्रव्योंमें ध्यान देकर कोई परमात्मा नहीं बन सकता है सो एक तो यह बात, दूसरी बात यह है कि वह अपने शुद्ध परिणामनको छोड़कर लटोरे घमीटोको हाथ पकड़ मोक्षमें ले जाय ऐसा हो नहीं सकता। अपने आपको ही देखो कि मैं आत्मा शुद्ध हूँ, सबसे निराला हूँ। अपने शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिमें तू पार होगा तो परमें दृष्टि लगाकर माया, मोह आदिसे पिसा जा रहा है तो ऐसा करनेसे क्या हम शुद्ध बन जाएँगे ? नहीं। हम आत्माकी श्रद्धा करके शुद्ध हो सकेंगे। और अगर इस आत्माकी श्रद्धा न कर सके तो शुद्ध न हो सकेंगे। तब फिर शुद्ध होनेका उपाय क्या है ? अरे इस आत्माका जो शुद्ध सहजस्वरूप है, शुद्धस्वभाव है, वह स्वतः सिद्ध आत्मतत्त्व है। मैं शुद्ध आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करनेसे शुद्ध हो सकता हूँ। हमारे इस कूड़े कचड़े शरीरके भीतर जो चैतन्यस्वरूप है, जो ज्ञानमें आ रहा है उस निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी लक्ष्यमें लें तो यह गदगी, कूड़ा करकट नष्ट हो जाता है।

हम अपनी आत्मा तथा ज्ञानदृष्टिके बहुत भीतर चलकर शुद्ध तत्त्वको जान सकते हैं। वह कोई एक पिण्ड जैसी चीज नहीं बल्कि ज्ञानको लिए हुए है। ऐसा यदि अपना ध्यान नहीं करेगा तो इस जगतमें तेरा कोई शरण नहीं है। बाहरमें जो शरण मागा है वह तेरा कोई नहीं है। वे सब स्वार्थी हैं। वे सब अपने अपने विषयोमें लगे हैं। वे सब अपने ही प्रयोजनमें लगे हैं। वे मुझसे बात ही नहीं करते हैं, वे मेरा बुद्ध नहीं करते हैं तो हम किस की शरणमें जावें ? अरे वह तेरे लिए सक्त है, उनसे तुझे शरण नहीं मिलेगी तेरी शरण तेरी प्रभु आत्मामें ही मिलेगी। मैं अन्तर्दृष्टि करके देखू तो वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है, शरण तो सही में वह हमारा प्रभु है, भगवान है, परमात्मा है। वही हमारा रक्षक है। तूने परको निज समझ लिया तो वे तेरे नहीं हो गए। वे तेरे ही नहीं सकते हैं। अन्य में दृष्टि करने से हम बहुत गलत रास्तेमें बह चले जा रहे हैं। तो लौटना भी हमें उतना ही पड़ेगा। जैसे यदि हमें बलवत्ता जाना है और हम पश्चिममें चले जावें तो हमें वहाँसे लौटना ही पड़ेगा। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि अग्रमें बढ़ती चली जानी है तो हमें उतना ही उन

मन्त्रे निवृत्त होकर निजस्वरूप की ओर दृष्टिको लाना पड़ेगा। यदि हम बाहरी तत्वोंको उपयोगमें लाने लगे, अपने परिवार तथा मित्रजनोकी सवस्व मानें तो मुझे मेरा प्रभु नहीं मिल सकेगा। यदि हम विषयभोगमें आसक्ति न करें, अन्य तत्वोंको अपने उपयोगमें न लें, कुटुम्ब, परिवार तथा मित्रजनोकी अपना सवस्व न मममें तब तो हमारा प्रभु हमें मिलेगा। जैसे कोई मुसाफिर भूलकर ५०० मील आगे चला गया हो तो उसे उतना ही तो लौटना पड़ेगा सही भागपर आनेके लिये, इसी प्रकार हम जीवकी जो अपने आपकी भूलकर परम दृष्टि लगाए हुए है उसे भी सब परमे निवृत्त होकर अपने निजस्वरूपको पहिचानना होगा।

देखो—अपने घन, वैभव, कुटुम्ब परिवारसे सबकी प्रीति है पर अपने ज्ञानस्वरूपमें प्रीति नहीं है। ज्ञानस्वरूपमें प्रीति करनेमें तो वही रखावट नहीं है। तू अपने ज्ञानस्वरूपसे प्रीति कर। एक दुकान मालिक यहाँ बैठा है। बलपना कर लें कि मैं अपनी दुकानमें गया, दुकानकी तिजोरी खोली। तिजोरीमें सडूब है, सडूबमें डिब्बा है और उम डिब्बेमें कपड़ेम क्या हुआ हीरा रक्बा है, उसमें अगूठी रखी है तो वहाँ तक ज्ञानके पहुचनेमें कमरा कोई बाधा नहीं डालता है, तिजोरी बगैरा कोई भी बाधा नहीं डालते। अरे तू अपने ज्ञानकी रखावट न कर। ज्ञानकी रखावट तो विषयकपायसे होती है, ज्ञानके आ जानेसे बाधाएँ नहीं पँतती हैं। भाई इन विषयोंमें पड करके ज्ञानको खोये हुए हो। इन विषयोंमें पडनेमें तरा कोई रक्षक नहीं। तेरी रक्षा करने वाला, रखावट करने वाला तू ही है, तेरमें ज्ञान है। जरा अपने अन्तरमें दृष्टि तो दो। यथाय विनायाके बिना तेरेको बड़ा बौन कर सकता है? इन विषयोंमें यह दम नहीं कि तुम्हें बड़ा बना दें। हं आत्मन्! तेरी रखावट करने वाला तू ही है तेरी ही मैन पाकर कम व विषय प्रबल होते हैं। जैन मालिकके साथ कुत्ता हो। यद्यपि कुत्तेमें कुछ दम नहीं, परन्तु मालिकके छू छू करनेसे ही कुत्ता दूसरोपर आक्रमण कर देता है, मालिकने उम छू छू न ही कुत्ता बलिष्ठ बन जाता है। यह नहीं देखता है कि यह युवक पुरुष है, इमसे न जीत सक्गा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कपायकी सन पाकर ये इन्द्रियविषय दुखदाई हो जाते हैं। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह बाह्यकी इच्छा नहीं करता है और अपने निजस्वरूपको उपासना करता है। इस निजस्वरूपके पहिचानमें ही आत्मा बलिष्ठ हो जाता है। अत यदि हम निज स्वरूपमें दृष्टि दें तो मम मुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमें दृष्टि न द सका, मेरा बाह्य पदार्थोंमें ही मयोग रहा ता जीवन भर ही दुखी रहना है, यही पहिलेसे सोच लो। अन्य किसीमें ऐसी सामथ्य नहीं जो हमें मुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दुखी होते हैं। यदि वह विषयोंमें आसक्त है तो उसे दुख होते हैं। यदि विषयोंमें आसक्त न रह



तो विषयोमे कोई ताकत नहीं जो उसे दुखी कर दें। सुखी होना तथा दुखी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोंके सुखी बननेसे सुखी नहीं हो सकता और दूसरोंके दुखी करनेसे दुखी नहीं हो सकता। मैं दूसरोंके दुखी करनेसे दुखी होऊँ तो इसका अर्थ है कि आत्मामे बन, बुद्धि नहीं है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओंको पराधीन आत्माएँ कहते हैं। हम बाह्यमे दृष्टि न करें तो हम पराधीन नहीं होंगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दुःख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि बाह्यमे लगा दूँ तो मुझे दुःख होता है। बाह्यमे मेरा कुछ नहीं है। मेरेको बाह्यसे कुछ मिलता भी नहीं है। पर मैंने मन बना लिया है कि पर मेरे सब कुछ हैं, उनसे हमें बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दुःख होता है।

अरे बाह्य पदार्थोंमे तुम्हें गौरवके लायक कुछ मिलता है क्या? शरीर है तो वह भी असार, धन वैभव है वह भी असार है। वह किसीके लिए भी सार न हो सकेगा। तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दने परिणमन कर रहा है, बाहर कुछ नहीं है। तू अपनेपर वृषादृष्टि रख तो तू शाध्यात्मिक चक्रवर्ती बन जाय। तू बाह्यसे अपनी बुद्धि छोड़ दे। तू अपने बाह्य उपयोगोंको छोड़ दे और अपने आन्तरिक उपयोगोंमे आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगोंमे आया तो सुख होंगे और यदि बाह्यमे तू अपना उपयोग बनाया तो तुम्हें दुःख होंगे और पागल बनना पड़ेगा। भाई देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है? यह आत्मा निरंतर विषयोंसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमे स्वभावमे ठगी नहीं गई। तू अपने शुद्ध आत्माका अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जायेंगे। यदि तू अपने आत्माका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायगा, तुम्हें क्लेश होंगे। तू ने यह कल्पनाएँ बना रखी हैं कि विषयोंसे सुख है इस लिए तू उन विषयोंमे ही अपना समय लगा रहा है। हाय विषयोंमे तू पड़ रहा है। अरे विषय ही तेरे दुःखोंका कारण बना देते हैं। अगर मोह, राग माया बनी तो यह भी एक विषय है इनसे भी तू पराधीन हो जायगा। तू पराधीन मत बन। दृष्टि ऐसी बन गई कि यह मेरा है, यह पराया है। इससे अहंकार प्रतीत होता है। अरे मेरा कुछ नहीं है, मैं तो सबसे न्यारा हूँ। यदि यह उपयोग बन जाए कि मेरा प्रभु मैं ही हूँ, मैं जगतके सब पदार्थोंसे न्यारा हूँ। यदि ऐसा उपयोग बन जायगा तो तेरा उत्थान होगा और यदि ऐसा उपयोग न बन सका तो तेरा पतन होगा और समारमे रचना पड़ेगा। यथाथ बात तो यह है कि सुख दुःख अपनी समझपर ही निर्भर हैं। तू अपनी आत्मामे ही विश्राम कर। वही तुम्हें शरण मिलेगा। और यदि तूने अपनी आत्मामे विश्राम न किया तो समारमे भटकना पड़ेगा, सहारा कोई नहीं दगा। यहाँ तक कि मरणके समय भी तुम्हें सहारा नहीं मिलेगा। तेरा शरीर भी तुम्हेंसे मिला नहीं रहेगा। परिवारके लोगोंको सूब खिताया पिलाया। अपने सब

सुख दुःख भूलकर परिवारके लोगोकी सेवा भी करी, पर अतमे कोई किसीका नहीं होता है। तेरा साथी तू ही है और कोई दूसरा नहीं। चक्रवर्तियाके साथ भी कोई नहीं रहगा। यह जो बाह्य पदार्थ हैं वे भी हमारे नहीं होंगे। यह जो ससारका नृत्य है वह आप निजके स्वरूपकी भूलसे ही होता है। अतः बाह्यदृष्टि छोड़कर अब अपने आत्मस्वरूपमें दृष्टि दूँ और अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ।

सिद्ध आत्मा, पूणदशन पूणानान, पूण सुख और पूण शक्तिसे सम्पन्न है। यह मैं आत्मा एक दश, दशन, एकदश ज्ञान, एकदश सुख और एकदश शक्तिमें युक्त हूँ, किन्तु मैं बसा ही पूण वैसा ही सवज्ञ होने योग्य हूँ। मेरी और प्रभुकी जानि एक है। हम और वे सिद्ध वस्तुमें एक हैं। मैं चैतन्यमात्र हूँ। जैसा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानान दघन प्रभु है वसा मैं हूँ। केवल जरामा आविर्भाव तिरोभावका अंतर है। वह अंतर कैसे किया? हमने अपन अपराधमें किया। निमित्त कुछ भी हो मगर अपराध हमी करत हैं और उसके ही करनेमें मुझमें हैरानी होनी है। यह तो स्वभावसे ही असंभव विक्रम वाला है। इसका अपराध मैं ही तो करना हूँ, अथ अपराधका कारण नहीं, किन्तु प्रभु पूण है इसका कारण नहीं। जैसे कभी बच्चोको मेढकका खिनाया दिया जाता है। मेढकका खिलौना टोना बना हुआ है। उसमें पत्ती नीचे लगी रहती है और पासमें चिपडा लगा रहता है, जिसे वह चिपक जाता है। मेढकको पत्तीमें कभी चिपकाकर रख देते हैं तो वह छूटकर छिटक छिटककर उसी जगह पर उछलता है। उन्ने उछलनेके माने यह नहीं कि उसका कुछ यत्न किया जाता है, वह छूटना स्वभावसे ही उछलता है। उसमें कुछ करना नहीं पड़ता है। एक विवाह अपने आप लग जाते हैं। किवाड खोनेमें तो यत्न करना पड़ता है, पर लगानेमें कुछ नहीं करना पड़ता है। छोटा और बग गए। जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसने किए यत्न नहीं करना पड़ता है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पड़ता है, क्योंकि उसमें कारण है। हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सार विश्वमें विकसित है उसका कोई कारण नहीं है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह भीचमें नहीं पँदा है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख हाँगा, फिर सुख होगा इसमें कारण चरता है, पर आत्मीय ज्ञान है तो इसमें कोई कारण नहीं है। आत्माका स्वरूप ही है कि वह अनन्दमें रहा करे। भगवान पूण ज्ञानमय हैं, पूण दृष्टिमय हैं, पूण आनन्दी हैं पूण शक्तिवान हैं। इस शुद्ध विकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है। क्यों कारण नहीं है? क्योंकि वह स्वभाव ही अपने आप जैसा स्वरूप है तसे वे है। सबत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बढ़ा है और किसी का छोटा है। इस ज्ञानकी हीनाधि कताके तो कारण है, पर किसीका ज्ञान पूणविकसित है तो उसमें कुछ बाह्य कारण नहीं है। जैसा स्वाभाविक ठग है वह अपने आप है। उसमें कारण क्या है? यह मोटा दृष्टान्त दे रहा हूँ।

हू। जलको अग्निपर या धूपमें रख दें तो उष्ण हो जायगा, उसका कुछ कारण है। आत्मा शांत रहे इसका कोई बाह्य कारण नहीं है।

आत्मा सवज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है, क्या कमाल है ? अरु उसका तो यह स्वभाव ही है। तारीफ तो उन समारमें रहने वालोंकी है जो तिर्यञ्च बन जाते हैं, बीड़े मकौड़े बन जाते हैं। भगवान की हालतमें क्या कमाल है ? ये तो स्वयं ही शुद्ध हैं। कमाल तो इसमें है जो स्वभावतः कसे ये और पेड़ हो गए, पत्तियाँ लग गईं। वाह रे आत्मा कमाता तो तेरा हू। भगवान तो एक पदार्थ है शुद्ध है, अकेला रह रहा है। भगवानका जो अंतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमें थे, जब तक वह शरीरमें रह आए तब तक कर्मोंका उदय कारण था। जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ। अंतिम समयमें जो मिला उस शरीरमें आत्मा थी। पहले तो यह हुआ था कि आत्मा फैलता है तो कर्मके कारणसे, आत्मा मिकुडता है तो कर्मके कारणसे। जैसे कर्मोंका उदय है उस ही प्रकारका आत्मामें सिक्कुडना और फैलना होता है। अब अंतमें शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामें क्या होना चाहिए ? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरमें आत्माको फैलाकर बड़ा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए ? यदि बड़ा बनाना चाहते हो तो क्यों बड़ा बनाओगे और यदि छोटा बन जाय तो क्या बनाओगे ? यह बड़ा और छोटा तो कर्मोदयके कारण हुआ करता है। जब नामकर्मसे मुक्त बन रहे हैं तो न फलनेका कारण है और न छोटा बननेका कारण है। इसी तरह मिद्ध भगवान जिस शरीरको छोड़कर मुक्त होते हैं वह जिनमें प्रमाणमें थे उतने प्रमाणमें उनके प्रदेश रह जाते हैं।

मैं एक शुद्ध निराला पदार्थ हू। जसा स्वरूप भगवानका है तसा ही मेरा है। तो जैसा उनका स्वरूप है तसा ही मेरा है, अब यह रंग नहीं बदलता है। दखो यह स्वरूपकी भक्ति है। यह प्रभुकी भक्तिमें ऐसा दीखता है कि यह प्रभु क्या है ? हम जो हैं सोई रह रहे हैं। जैसा स्वरूप है तैसा सिद्धका विकास हो गया। अब प्रभुमें रगबाजी नहीं चल रही है। क्षणमें कुछ, क्षणमें कुछ, ये लीलाएँ समारी प्राणी रचा करता है, पर मालूम पडता है कि ये प्रभु प्रभुताकी ऐसी विचित्र लीला करके थक गया है इसलिए प्रभुने लीलाएँ बंद कर दी हैं। यहाँ दखो वाहरे समारी प्राणी ! तेरा से चकनेका काम ही नहीं है। तू तो अनेक कल्पनाएँ करना है समागम करता, संयोग त्रियोगके विकल्प तथा अनेक कल्पनाएँ करता है। आजसे ५० वर्ष बाद तू किस योनिमें रहा होगा ? वहाँ क्या कोई कर्म कल्पनाएँ थी कि यह घर द्वार मेरा है, यह धन वैभव, कुटुम्ब परिवार मेरा है। और अब यहाँ क्या कल्पना करने लगा ? जब मैं यहाँसे जाऊंगा तो यह कल्पनाएँ रहगी क्या ? कितना थम कर यह ससारी कार्य कर

रहा है। तू कितना बमंठ बन रहा है—विकल्प निरंतर विकल्प, यह छोड़ा वह छोड़ा। अरे यह क्या है? यह सब सांसारिक आपदाएं हैं। जसे किसी बड़े मयामम बड़े सिपाही को चैन न हो, छिप छिपकर खेल खेलकर गोली चलाये, दीड़े भाग। इस प्रकारसे दुनियाके लोग भ्रम कर रहे हैं। इसी तरहसे यह प्रभु इस ससारमें नाना खेल कर रहा है। आँख मिच गई कि आगे उसका कुछ पता नहीं। आग गया और ढगका बन गया और आगे बढ़ा तो कल्प नाए करके और ढगका हो गया। क्यों कल्पना करके दुखी होना? कोई भी इसका कुछ हो तो बतला दो। क्या है इसका? मगर कल्पनाए इतनी बड़ी बना लेता है। सो हे प्रभु! आपने भी यह सब भारी काम किया। बड़ी कमठतासे ८४ लाख धीनियोमें चक्कर लगाए। अनेक सीलाए खेली। अब मालूम होना है कि उन बलाघोसे तू थक गया है और थक करके ही अब तूने उन अपनी सीलाघोको छोड़ दिया है।

हे प्रभु तुम गुद्ध पदाथ हो, शुद्ध आत्मा हो। अरे अगुद्धिको मेटा तो शुद्ध हो गये। अगुद्धि मेटा तो उसका परिणामन अच्छा हुआ है। क्या गजब हो गया, हाँ महान् जरूर हो, यहाँपर क्या स्त्री, बाल बच्चे हो गए। अरे हो गए तो इनसे तुम्हें क्या मिला? वे तो तुम्हारे हैं नहीं। उह तो छोड़के ही जावोगे। उनके लिए ही सब कुछ किया, सारा परिश्रम उनके लिए ही किया। उनसे तुम्हें क्या मिला? लाखों और करोड़ों रूपयोंका धन उनके लिए जोड़कर भर दिया। अरे वह कुछ सायम तो जाता नहीं फिर क्यों इतना माया मोहके चक्रमें फँस रहे हो? इस तरहसे यह प्राणी माया मोहमें रहकर ही धर जाता है, अपने आत्मस्वरूपको भूल जाना है और बरवाद हो जाता है। इन बाह्यपदार्थोंमें कहाँ सुख है? सब बाह्यपदार्थोंको ही देख रहा है, परसे ही सुखकी बातें सोच रहा है। अरे यह बाह्य सब भ्रम है। अपनी दृष्टिको ठाक ठीक अपने स्वरूपमें ही डालो तो भ्रमट तुम्हें नहीं मालूम पड़ेगे। प्रभु पूज्य अबस्या तो यह तुम्हारी ही है। इस प्रभुने जमा आनंद किया है वसा ही आनंद इस मेरी प्रभु आत्मामें भरा है। बस अगुद्धि मेटने लगे, मिल जायगा। जैसे परके आगे पैर रखकर चलें तो हम मजिलपर क्यों नहीं पहुँचेंगे? चलनेसे ही हम आगे पहुँचेंगे और बैठेसे हम बैठे हो रहेंगे। यदि तूने बैठने का स्थान किया तो बैठा ही रहगा और यदि चलने का स्थान किया तो आगे बढ़ जायगा। अपने भगवानके पास कैसे नहीं पहुँचोगे? अरे पर भी थक जावें तो सोचो कि अभी मेरे पास ही तो है। यदि थक भी जाओगे तो हिम्मत तो बनी रहेगी। इसी तरह अशुद्धिको मिटा दो अभी यह काम बन जायगा। मोक्षमें पहुँचनेके लिए धीनिय करो, परमाथ दखो, उसमें रचि जायगी। जैन कोई काम करता है हलुवा बनाना सीख रहा है ता उसमें उसकी रचि होती है, उत्साह होता है। इसी तरह शुद्ध ही रहो, आनंद हो रहा हो, दर्शन हो रहे हो, उस अपनेके निकट पहुँच रहा हो तो उसमें

उसकी रूचि बढ़ेगी, उसका उत्साह बढ़ेगा।

कोई घटना ऐसी आ जाय कि जिसमें हजार पाचसी मिलत हो, मगर उसमें भूठ या अन्याय करनेकी नीबत हो। उस समय सच्चा निराय करनेके लिए दिल बना रह। भूठ न बोले, सच्चाईमें उसका दिल बना रहे और यह देखो कि हजार पाच मी जाने है तो जाने दो। उन हजार पांच सी जानेसे भी बड़ा आनन्द मानो। और यह बात मानो कि मुझे बड़ी प्रसन्नता है। उसने अपनेसे अशुद्धिको मिटाया और जो शुद्ध है उससे ही प्रसन्न हुआ। तो भैया, सतोप की बात तो यही है। इसी प्रकारसे अशुद्धियाँ बाहर करते करते वह मजिल निकट आ जायगी और ज्यो ज्यो अपनी मजिल निकट आती जायगी त्यो त्यो सतोप बढ़ता जायगा तथा आनन्द का अनुभव होगा।

एक मुसाफिर था। वह पैदल यात्रा करते हुए जगलमें रास्ता भूल गया। शामका समय था, दो तीन मील जाकर भूल गया था और पगडडियोसे चल रहा था? एक घंटा हो जानेके बाद वह सोचता है कि यदि मैं और आगे बढ़ता ही चला जाऊंगा तो पता नहीं कितना भूल जाऊँ, और फिर मुझे भूल निकालनेका मौका भी नहीं आय—एसा सोचकर वह रुक गया और वही रात व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। पर चिंता लगी हुई है कि मैं कितना भूल गया? अब मुझे कहासे जाना है, कहाँ रास्ता मिलेगा? इसी भूलमें पड़ा पड़ा वह देखता है कि एक क्षणिक बिजली चमकी। उसने देखा लिया कि सामने सड़क है जिससे मुझे जाना होगा। अब वह निश्चय हो गया। एसा निश्चय होकर वह सोचना है कि मैं रास्ता भूल तो गया हूँ पर इतनी ही भूलम पड़ा हूँ। यह भूल या ही मिट जाया करती है तो मिट जायगी। सबेरा हुआ तो सामने देखा कि पाडी दूरपर सड़क है सड़क पर लोग चल रहे हैं। वह भटक गया था, पर सतोप किए हुए था। इसी प्रकार यदि जानी विषयोंमें भटककर अपने ज्ञानको भूल गया है तो कुछ भी विवेक हो तो वह इस भूलको न बढ़ायगा, रुक जायगा। कभी उसका ज्ञान सच्चाई को लेकर आता है तो वह समझ जाता है कि यह आत्मदर्शनका माग है जिसपर हमें चलना है। देखो भूतका मिटना व ज्ञानका होना दोनों एक माय होते हैं। इसमें ज्ञानका ता उत्पाद है और अज्ञानका व्यय है। यह सब धमपालन एक इस आत्मापर ही निर्भर है। क्या आनन्द भी आयगा? हाँ आनन्द भी इस आत्मामें आयगा। आनन्द तो आत्मका स्वभाव ही है। जब भूले हुए पथिकको ज्ञान होता है तभी यह उत्साह बढ़ता है कि अब मैं अपनी भूलमें उद्धार हो रहा हूँ, मैं अपने सही मागम जा रहा हूँ। अब वह ऐसे उत्साहसे चलता है कि जो पगडडियाँ गडकसे मिला देंगी उही पगडडियोसे समझकर चलता है। अब सड़कपर वह मुसाफिर पहुँच जाता है तो उसे बड़ा सतोप होता है। अब तो करने योग्य जो काम था कर लिया, अब आनन्दमें वहलता चला जा

रहा था। जहाँ जागा था उस स्थान पहुँच जाता है। पहुँचकर वह विश्राम करता है। अब बिल्कुल निश्चित हो गया। इसी तरह जगत्वा प्राणी अज्ञानके अधेरम विषयकपायोकी गनियोग भटक गया, वह अपने को भूल गया है। इस भूलमे बढनेम बढकर भूल हो जाती है तो वह मोचता है कि इस भूलमे बढे मत, नहीं तो जितनी भूल बढ जायगी उमना ही वापिस होगेम कठिनाई पड़ेगी। विषयकपायोमे मत फसो। तुम निराय कर शातिका माग दूदो। बम इमीमे प्रेम करना भक्ति होना है। यदि तून विषयकपायोसे अपने को दूर रखवा और शातिके मागका पता लगाया तो तुम्हे सतोप आयेगा, भक्ति आयेगी। तो इन माधनोके बीच रहने हुए कभी अतरमे बिजली चमकती है तो निमत अबस्थाका अबलोवन होता है और केवल ज्ञानमात्र स्वरूपना निराय करता है। शातिका माग यही है। इसी तरहके मागसे जो आप चलना चाह तो मोह और विषयाम जो लग रह हो उमको भूलकर सही मागका पता लगाओ। जब उम सही मागका पता लगा लाग तब तुम्हें शाति प्राप्त हांगी सतोप प्राप्त होगा। जब तू अपनी भूलोमे पड जाता है, विषयामे पड जाता है तो सतोप नहीं प्राप्त होता है। यदि अपनेको भुनावेमे डाल लिया तो शातिका असर उसक दिनम नहीं होगा। यदि वह ज्ञानमे अच्छे मागम आ जाता है तो वह सतोप प्राप्त करता है, क्योंकि उसे भूलका पता लग गया।

यह स्वभावमात्र वस्तु है, अन्य पदार्थ अपने अपने सत्तामात्र है। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह कल्पना बना लेनेसे वि यह परपदार्थ मेर है उसकी शाति खतम हा जाती है, मोक्षमागसे हटता रहता है और मसारके जम मरणके चक्रमे फसा रहना है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मरे नहा है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उस सतोप प्राप्त होना है और उसे जममरणके चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीम कमलना पत्ता पडा हुआ है, पानीसे बह पत्ता त्रिकुल भिन्न है, पानीका पत्ते पर कुछ अमर नहीं, पत्ता गला है या मटा। उसम तो पानी घुमता ही नहीं है। पत्ता तो सूखा ही सूखा होता है। निवानकर दम्ब लो पत्ता सूखा ही निक्लेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमे रहत हुए भी सुखी रहता है। रोई उमका पता लगान वाला नहीं है। घरम रहत हुए भी घर वालाका उसपर असर नहीं है। वह सदा सुखी रहता है। जो ब्राह्म पदार्थोस सतोप प्राप्त करता है वह इम भूले जगतमे हट जाव और अपने निज स्वरूपसे ही सतोप प्राप्त करे। जो प्राणी दस जगतके मोहमे नडकर भून गए है वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर सताप प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जायें। जिस प्राणीको आरत सतोप प्राप्त करना है, आनन्द मग्न हो जाना है उसे सारे आरत परिग्रह दश न हागा। और उमे कुछ काम करना नहा है। यदि यह महान पुण्यार्थ किया, म यास किया और अपने आपसे प्रेम किया तो

जगतमें ध्यान-दमन हो जाता है। अशुद्धि को दूर किया और शुद्ध को प्रकट किया तो यदि इन मागसे चलनेपर तो निर्विकार मागमें पहुँच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धिमें रक्खा तो विकारयुक्त होकर उमें अमनोप हो जाता है।

हे प्रभु, तुम कोई बड़ी गजबकी वस्तु नहीं हो। जानता हूँ कि तुम अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मागमें अपनेको ले गए हो। हैरानी की बात कुछ नहीं है गजब कुछ नहीं है, किंतु इसका स्वरूप बहुत महान है। कमी अद्भुत शक्ति का विकास है? इस अपने आपको देखनेमें भक्ति है और बातोंमें भक्ति नहीं है। यह भगवान है, बड़ा है बनशाली है दयादि बातोंमें भक्ति नहीं है। मुझे तो कुछ गजब ही नहीं दीख रहा है कि भगवान कोई गजबकी चीज है। जैसे विरादरीमें कोई धनी है। कमा भी हो, विरादरीका ही तो है। उसे कोई धनी नहीं दोखता। यहाँ हम बैठे हैं वहाँ वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनोंमें कोई गतर नहीं दीखता है। तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च प्रफमर, जो तुम्हारे बगलमें बैठे हैं वे तुम्हें गजबका काम करते हुए नहीं दोखते हैं। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी विरादरीका है। जमी वस्तु वह है तैसी ही मैं हूँ। उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गई, विकार मिट गया, ज्ञानकी ओर दृष्टि हुई, ज्ञानमात्र हो गए, पर प्रभुमें गजब कोई नहीं दीखता है। अपनेसे अपरिचिनको जरूर गजब दीखता है। क्या है, कसे हो गया? बड़े गजबकी बात है, बड़ा अजब बात है। भगवान कोई और ही चीज हुआ करती होगी, एमें देखो लगते हैं, अरे हैरानीकी चीज नहीं। भगवानकी अशुद्धि मिट गई, विकार मिट गए। वह तो वहीके वही है। पर हे जातके प्राणी! महत्ता तो तुम्हारी है। तुम्हारा बलशाली ज्ञान भरा हुआ है। उम अपने ज्ञानको बाहरी पदार्थोंमें लगा रह हो और अपने परिणामोंमें अनतरूपोंमें बना रह हो। हे प्राणी, अपने ही परिणामोंमें अपनेको अनन्त योगियोंमें डाल रह हो। वही कीड़े मकोड़े बन गए, वही पेड़ बन गए, वही कुछ बन गए, वही कुछ। इस प्रकारसे जन्म मरणके चक्रमें डाल लिया। इसलिए हे प्राणी गजब तो तूने किया है।

यदि तू अपनेको अनन्तरूपोंमें न माने तो समझो कि ज्ञान आ गया। यदि केवल एक ही ज्ञान का प्रतीक तुम्हें पड़ा हुआ है तो सारा बलश दूर हो जावेगा। हे प्रभो, आपके ज्ञानमें इतनी शक्ति है कि तीन लोकके समस्त पदार्थ आपके ज्ञानके एक बोगमें पड़े रहते हैं। यदि प्रभुके ऐसे विशाल ज्ञानका आदर है तो मेरे मनमें उनकी महानताका आदर है। मैं भगवानमें गजब कुछ नहीं देखता हूँ। विकार हट गए, पवित्रता आ गई—ऐसी दृष्टिसे वह ज्ञानी पुरुष हो गए। जिनकी दृष्टि प्रभुताके निवट विराजमान हो गई—उनके ज्ञानमें अनन्त बल है। जो बल उम भगवानमें है वह अत्यंत प्राणियोंमें भी हो सकता है। अरे यदि मेरेमें ज्ञानबल नहीं है, पवित्रता नहीं आ गई है, विकाररहित नहीं हो गया हूँ तो इससे मेरी पराजय है। यदि

मुझे अपना भान हो गया है तो जब चाहूँ भगवत्से मिल सकता हूँ। उम जानी पुण्यका यह भगवान् अन्यतः निकट है। अन्तरदृष्टिमें देखो तो वह विराजमान है। शुद्ध प्रभु जैसी स्थिति मेरेमें भी हो सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है। अत्मा तो दशन, चान, मुख, शक्तिवा पिंड है। इम चानमें कोई सीमा नहीं है। हमने अपनी अज्ञानतासे ही उसमें सीमा डाल दिया है। वह अज्ञानकी मेड बोधमें पड़ जाती है। इससे हमें बलेश होते रहते हैं। मैं अज्ञानकी मेड की तोड़ डालूँ। बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि लगानेकी मेड तोड़ दी जाय तो सारा हो जायगा चान, एक अमीम हो जायगा, इमकी सीमा खत्म हो जायगी। शरीर अपने आपके शुद्ध अशुद्ध स्वरूप को और वीतराग बुद्धिके विकासको तो त्वा। मैं वह हूँ जो है भगवान्। जो मैं हूँ वह हैं भगवान्। जलका स्वभाव और निम्न जनम कोई अन्तर है क्या? निम्न जन पहिचाननमें भट आ गया और जलके स्वभावमें दिमाग लगानेका काम है। जैसा निम्न जल मुझे मालूम पड़ रहा है वसा ही जलका स्वभाव भी पड़ा हुआ है। उम कीचड़ वाले जलमें जल भी निम्न है, कीचड़ मिला हुआ है, पर वह जल स्वच्छ है, निम्न है। इसी प्रकार ममाररी नाना म्पिनियोंमें पड़े हुए इम मलीन आत्मामें भी स्वभाव वही है, वसा ही स्वच्छ है। जैसा कि भगवान् शुद्ध है वसे ही यह आत्मा शुद्ध है। बुद्धिके विकासमें कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार प्रभु अन्त चान दशन और अन्त शक्तियोगा पिंड है। इस ज्ञानके विकासके लिए सामर्थ्य तथा अन्तरदृष्टि इत्यादिकी आवश्यकता है। अपने को अपने सही रूपमें निरखकर स्वयं ही अपनेमें शांतिका माग प्राप्त करें।

स्वरूप न भ्रमना और विषयव्यायाम ही उपयोगको बनाए रहना यह बड़ा अधकार है। यह अधकार अज्ञानसे पैदा होता है। अज्ञान क्या वस्तु है? पदार्थोंका जसा स्वरूप है वसा न मानना अज्ञान है। प्रत्यक्ष पदार्थ स्वतंत्र है, अपनी अपनी सत्ताको लिए हुए हैं, अपने ही मन्में परिणामते हैं, किसीका किसीमें प्रवेश नहीं है। उनके खिलाफ ऐसा समझना कि मैं अमुक वस्तुको कुछ करूँगा या अमुक मेर लिए कुछ कर दूँगे। इस प्रकार स्वतंत्रता के खिलाफ विकल्प करना यह अज्ञान है। पदार्थ अपनेमें ही उत्पाद करते हैं अपनेमें ही अपनी अवस्थानों विलीन करते हैं। और खुद व खुद सदा बने रहते हैं। जैसे एक अगुली है अभी सीधी है। इसको टेढ़ी कर दिया तो टेढ़ी बन गयी। वह अगुली उस टेढ़ी अवस्थामें उत्पाद वाली हुई और सीधी अवस्थामें उसका व्यय हुआ यानी गीधी अवस्था विलीन हो गई। और अगुनी वहीकी गीधी बनी हुई है। इसी प्रकार परपदार्थ अपने ही स्वरूपमें अपनी अवस्थाका उत्पाद करते हैं, अपने ही स्वरूपमें अपनी ही अवस्थाका व्यय करते हैं और अपने ही स्वरूपको बनाए रहते हैं। इमें कहते हैं त्रिगुणात्मक पदार्थ। पदार्थोंमें यह तीन गुण भरे हुए हैं। प्रथम अवस्थाका उत्पाद, द्वितीय पूर्व अवस्थाको विलीन करना, तृतीय वह



ब खुद बनी रहे—ये तीन बातें पदाथमे सदा चलती है। प्रत्येक पदाथ प्रत्येकसे भ्रमल है। जो खोटा रूप भी परिणामना है वह भी खुद ही परिणामता है। दूसरा उमने साथ मिलकर खोटा रूप नहीं परिणामता है। पर दूसरे पदाथ, जिसका निमित्त पाकर खोट भाव होना है उनके सम्बन्धमे ऐसा मानना कि वे ही करते हैं इसके भागे अज्ञान है। जो पदाथ जिस रूप मे है उनको वैसा न समझना अज्ञान है और जो जैसा है तैसा मानना ही ज्ञान है। इस ज्ञानके कारण विषयोका अधेरा समझमे आ जाता है। वस्तुकी स्वतन्त्रताका उपयोग नरके जो वास्तविक ज्ञान द गता है तो उसमे श्राकुनता नहीं रहती है, उममे परिणामन नहीं रहता है और अज्ञान रहता है, एका दूसरके साथ सम्बन्ध माननेकी बात रहती है। तो ऐसी स्थितिमे विषयोको लगाए रहना प्राकृतिक बात है, बाह्य पदार्थोमे खपना प्राकृतिक बात है। यह बड़ा अधेरा है। विषयोस प्रीति होना यह बड़ा अधकार है।

विषय ६ प्रकारके होते हैं—स्पर्श, रस, गंध, वण शब्द व मकल्पविवल्प। इन ६ प्रकारके विषयोमे रति होना यह अधकार है। अपने आपको टटोलना चाहिए कि हम अधकारमे है या उजेलेमे है। स्पर्श विषयमे मुख्य तो वेद सम्बन्धी विषय है, फिर स्निग्ध रूक्ष ठंडा गम आदि जो ८ प्रकारके स्पर्श हैं वे हैं। स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, शीत, बडा नम, हल्का भारी गे ८ प्रकारके स्पर्श स्पशंन इन्द्रियके विषय हैं। सो देखो निरन्तर ये प्राणी इनमे बहते ही रहते हैं। गर्मी लगती है तो ठंडी चीज चाहिए, ठंडा नहीं बना रहता है तो हवाती जरूरत है, ठंडी लगती है तो गम चीज चाहिए इत्यादि। यह सब स्पर्श इन्द्रियके विषय हैं। नकमे रहने वाले अन्य पशु पक्षियोमे हो तो क्या यह सहज न कर लिया जायगा? हम ही गरीब हो तो क्या इतनी ठंडी गम न सह लेते? रमना इन्द्रियका विषयमे मीठा होना, खट्टा होना, स्वादिष्ट होना ये रसनाइन्द्रियके विषय हैं। ससारके प्राणी कैसे इन रसोमे रत होते है? कितनी तरहके व्यंजन बने, कितनी प्रकारके खानेकी चीजोका आविष्कार हुआ जिनका नाम लिया जाय तो ३०० ४०० नाम हो जावें। खानकी चीजोके नाम हम कहते है और वस्तुओके नाम हम नहीं कहते हैं, फनोकी बात नहीं कहते है। भोजन बनाये जाते है तो कितनी तरहके बनते हैं, मिठाइयां बनती, चाय बनती, नमकीन बनती इत्यादि अनेक वस्तुवें बनती है। यह सब क्या है? रसनाइन्द्रियके ही विषय हैं। सामने मिठाइयां, सेव रखे हैं, दाल रोटी रखी है। दाल-रोटी रखी है तो कोई दाल-रोटीमे ही सगोप कर ले तो समझो विजय है। वस्तुओका देख लिया तो चख लिया, स्वाद लिया, यह सब क्या है? यह सब रसनाइन्द्रियके विषय है। रमनाइन्द्रियका जो विषय है वह भी अधकार है।

एक अगुल दो अगुलकी इस नाकको खुश करनेके लिए कितने प्रकारके सुगंधित तेल है, कितने प्रकारके पुष्प हैं? इन सुगंधित पुष्पो तथा तेलोसे इस नाकको खुश करते हैं। नहीं

फूल या द्रवका फोका नाकमें घुसा है, वही कानमें घुसा है, वही इन लगा दिया, वही अथ कोई मुगधित तेल लगा दिया। यदि कोई तेल लगा दिया तो वह खुशबूदार होना चाहिए। य सब रसनाई द्रवके विषय है। विषय सेवते सेवते भी सतोप तो नहीं आता। जो है वह ठीक है। यह हुआ तो क्या हुआ, इन है तो उसको क्या हुआ ? यह सब अघकार है। विषयोका रस सुहाया, यह अघकार है और इस अघकारमे ही चुलबुल करता हुआ यह अगतका प्राणी द्विभ्रमिन्न बरबाद होता रहना है।

चक्षुर्द्रव्यका विषय देखो। नेत्रोने एक एक अगुलमे गए नए खेस देखा तो मन बढ गया। जो कुछ देखा वह वहीका वही है और खुद वहीका वही है, पर जो कुछ दखा जमसे मोह कर लिया। इस मोहके कारण वह दुखी रहता है। सिनेमा देखा, नाटक देखा, इनमे कुछ है क्या ? किसीका रूप देखा ता है क्या यह अपने शरीरमे दख लो ना, शना हो तो अपने शरीरको तोड फोडकर देख लो। बरमातके दिन हैं तो शरीर अपनेको नहीं सुहाता। गर्मीके दिन हुए तो शरीर ब कपडे नहीं सुहाते। कपडोके साथ ही साथ शरीर भी नहीं सुहाता है। और भी जीव पदार्थोको सुंदर-सुंदर रूप, ड्रेसज, आकार तथा अय नई नई यमीजें वगैरा बनाना, नई-नई डिजाइनोका बनाना, वही कुछ बनाना, वही कुछ बनाना। यह सब क्या है ? यह सब चक्षुर्द्रव्यके विषय है। नेत्रद्रव्यके विषयमे यह रत होता रहा है, पर यह यही तो बनेगा। गुरजी सुनाते थे कि सागरमे एक कासट्रेबिल था। वह वेश्यामे आसक्त था। जो कुछ धन-दौलत उसके पास थी, सब वेश्याके पाम पट्टच गयी। वह अब बडो अदवस्थाका हो गया था। अब धन तो वेश्याके पास आ गया। अब उसे क्या परवाह है ? वह अपने घर न आने दवे उस सिपाहाको। कान्पट्रेबिल उसके घरके सामने ही रात दिन पडा रहा। किसीने पूछा—भाई माहब, तुम यहा क्यों पडे रहत हो ? कहा—पडा रहता हू इमलिये कि रात दिनमे कभी तो घरसे बाहर निकलेगी ही, देख लूंगा। हाय, हाय, क्या मिल गया ? रात दिन पडे रहे। वह पदाथ अपनी जगहपर है, आत्मां आत्मा है, शरीरमे शरीर है। जो जहाँ है तहाँ ही रह जाता है, हाथमे कुछ आता नहीं है। यह क्या ? यह नेत्र विषयके रूपोका अघकार है।

कणका विषय देखो—कितनी तरहके राग हैं, अभी कोई शब्द सुंदर गायन हा तो यह सगोन सुनने चला कि कुछ सुन लें। देहातोमे रही अलाप हाते है उनको सुननेकी भी इच्छा होती है। सपेरा बीन बजाता है वह भी सुहाती है। हर तरहके जो सुहाके शब्द सुनाई पडते हैं वह भी सुहाने है। यह क्या है ? यह कणके विषयकी रति है। यह विनयोया अघकार है। मनको देखा जमका विषय सबसे बडा है। मन चाहता है कि पता बन रह इतना वैभव रहे, हिसोसे पीछे न रहू, आगे बढू। यह सब मन सोचना रहता है

y

m

v

यह आत्मा ऐसी है कि धनके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है, यह तो हुआ उमका घमड। गरीबसे धनी हो रहे हैं, धनको और जोड़ना चाहते हैं। एक आत्मी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्मका काम करके अपनी धमात्मा जताता है। यह अधिक घमड हुआ। धर्मके काममें छल कपट करना तीव्र माया है। धर्मके काममें लोभ करना तीव्र लोभ है। कोई पुत्र आदि बचपने बीमार हो जाय। पाच मी १० मासिक उमम निकल गए। ६ मास पड़े ही रहे। यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है। अपने बच्चेके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे। उसमें भी मोह है। किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अग्र दूरी जगहमें। लोभ परिवारमें ही जाता है। जितना भी करते हैं वह सब अपने परिवारके लिए करत है। वह अपने परिवारके लोगोंकी ही सर्वस्व समझते हैं तो य धम नहीं हुआ। इसमें लोभ है।

हे आत्मन् ! तारा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। अपने ज्ञानानन्दस्वभावको देखो। एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है पर पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता है, पिताके भीतर होने वाले इच्छामोका आदर नहीं करता है। और एक पुरुष वह है जो अपने पिताका गुणानुवाद नहीं करता और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए वह तैयार है। तो बताओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है ? पुरुष वही अच्छा है जो पिताको गुणानुवाद तो नहीं गाता है, परन्तु आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानकी १० बार पूजा करता है, भगवानको हेरान कर डालता है और एक ऐसा है जो केवल भगवानका स्मरण मात्र कर लेता है। शुद्धस्वभावका ध्यान करना है और भगवानका हुक्म मानता है। तो बताओ कौन अच्छा है ? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म माने। भगवानकी हुनम यह है कि अपने आपका जानमात्र, सबसे निराला समझे। अब सोचो मैं इस अज्ञानमें उत्पन्न होने वाले अंधकारको नष्ट कर जानमात्र आनन्द मय अपने आपका देख करके ध्यानका अग्निके द्वारा इन कार्योंको जलाऊ और निष्कलक होकर अपने आपमें अपने आप सुखी होऊँ।

यह रागादि भाव अज्ञानको बड़ी पीडा दिया करते हैं। ये पीडा त है तो दें, कब तक दें ? यह तब तक ही पीडा दें जब तक कि मैं ज्ञानमागरमें डूब न जाऊ। यह कम तब तक जीवोको मनाने है जब तक कि वे ज्ञानमागरमें नहीं डूब जाते। जैसे धूपसे पीडित मनुष्यको गर्मी तब तक सताती है जब तक ज्ञानस गरम वह डूबता नहीं। जब तक जानमें ज्ञान नहीं प्रवेश करे तब तक सतौष कसे उत्पन्न हो सकता है ? जब तक न ज्ञानमागरमें डूबे रह तब तक रागादिमें सताप नहीं हो सके। ज्ञान दो विस्मयके है—एक आत्माका ध्यान, दूसरा परवस्तुको ध्यान। परवस्तुको बलपनाशमें दुख होना है और अपने स्वरूपका ध्यान करने



यह आत्मा ऐसी है कि धनके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है, यह तो हुआ उसका घमट । गरीबमे धनी हो रहे है, धनको और जोडना चाहने हैं । एक आत्मी ऐसा है जो पूजा उपवाम आदि धर्मका काम करके अपनेको धर्मात्मा जताता है । यह अधिक घमड हुआ । धमके काममे छल कपट करता तीव्र माया है । धमके कामम लोभ करना तीव्र लोभ है । कोई पुत्र आदि बीचमे बीमार हो जाय । पाच सौ २० मासिक उममे निकल गण । ६ मास पडे ही रहे । यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है । अपने बच्चेके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे । उसमे भी मोह है । किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अन्य दूसरी जगहमे । लोभ परिवारमे हो जाता है । जितना भी करते हैं वह सब अपने परिवारके लिए करत हैं । वह अपने परिवारके लोगोको ही सर्वस्व समझते हैं तो य धम नही हुआ । इसमे लोभ है ।

हे आत्मन् ! तेरा स्वरूप गुद्ध नायकस्वरूप है । अपने ज्ञानानन्दस्वभावको देखो । एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है पर पिताकी आज्ञाका पालन नही करता है, पिताके भीतर होने वाले इच्छाओका आदर नही करता है । और एक पुरुष वह है जो अपने पिताका गुणानुवाद नही करता और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए वह तैयार है । तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है ? पुरुष वही अच्छा है जो पिताको गुणानुवाद तो नही गाता है, परन्तु आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है ।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानकी १० बार पूजा करता है, भगवानको हैरान कर डानता है और एक ऐसा है जो केव न भगवानका स्मरण मात्र कर लेता है । शुद्धस्वभावका ध्यान करना है और भगवानका हुक्म मानता है । तो बतलाओ कौन अच्छा है ? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म माने । भगवानको हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो । अब सोचो मैं इस अज्ञानमे उत्पन्न होने वाले अंधकारका नष्ट कर ज्ञानमात्र आनन्द मय अपने प्राप्ता देख करके ध्यानका अग्निके द्वारा इन कार्योंका जलाऊ और निष्कलक होकर अपने आपमे अपने आप मुक्तो होऊँ !

यह रागादि भाव अज्ञानीको वन्धी पीडा दिया करते है । ये पीडा त है तो दें, कब तब दें ? यह तब तक ही पीडा देंगे जब तक कि मैं ज्ञानमागरमे डूब न जाऊ । यह कर्म तब तक जीवोको मताने है जब तक कि वे ज्ञानमागरमे नही डूब जाने । जैसे धूपसे पीडित मनुष्यको गर्मी तब तक सतानी है जब तब ज्ञानस गरम वह डूबता नही । जब तक ज्ञानमे ज्ञान नही प्रवेश कर तब तक सतीप कसे उत्पन्न हो सकता है ? जब तब ज्ञानमागरमे डूबे रह तब तब रागादिमे सनाप नही हो सकते । ज्ञान दो विरमके है—एक आदमीका ध्यान, दूसरा परवस्तुवाका ध्यान । परवस्तुको कल्पनाओमे दुख होना है और अपने स्वरूपका ध्यान करी

में दृग् दूर हो जाना है। लेता देता पुच्छ नहीं है, केवल परिणामोन्नी वात है। मुख होना, आना द होना केवल भागों परिरणामकी वात है। देखो इतनी बड़ी समस्या, इतनी बड़ी प्रोब्लम केवल एक विचार परिवर्तनमें ही हो जाती है तथा हल भी हो जाती। कम धन होनेसे दुःख होता है, गोजिगाय करते हैं यह करते है वह करते हैं कितने ही यत्न करते हैं पर उममें यह समस्या हल न होगी। घर आदिकी समस्या बाह्य मध्यसे हल न होगी। लक्ष्मीकी मगमें रचना, युद्धम्बकी बांधकर रचना, परिवारमें रहना, इन सबसे घरकी समस्या हल नहीं होगी। विमोग भी अच्छा वनों, घुसा वनों, कुछ भी कर लें, पर यह समस्या हल नहीं हो सकती है। इस समस्याका हल विचारकी तिरस्कारम तथा स्वभावे दशामे होगा। स्वभावदशन क्या है? जन गुणा स्वरूप है तैसा ही उपयोग बन गया यही स्वभावदशन है, दशामे सब समस्याएं हल होंगी।

कैसा है यह अपना स्वरूप? पहले तो रात्रमें निराता, किसीमें मिला जुला नहीं, अपनी स्वतंत्र सत्ता रखन वाला, अपने अपने स्वभावको अपने अपने अपने अस्तित्वमें लिए हुए है। वह भाव माग है। उममें कुछ खटपट नहीं, उममें कोई कष्ट नहीं। इस मुक्त लेनेके देनके दूरे नहीं मित्रों। मैं केवल भावमात्र हूँ, जानभावमात्र आनन्दमात्र हूँ मगमें निराता हूँ, जान और आनन्दमात्र हूँ। रत भी दूगरे पदार्थोंमें साथ सम्बन्ध नहीं है। मगर जहाँ मोह उठता है तो वह सागरका मारा कैसा मालूम पटना है? यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, ऐसा उल्लस उल्लसकर रहना है। विपदाप्राप्त कारण यह मोह ही है, नहीं तो मैं आनन्दानुभव वाता तथा जो सबसे गिराता हूँ आत्मा स्वयं ज्ञानघन है, आनन्दमय है पर मोह ऐसा गदा विष है कि आहोनीनी दानी बना देता चाहता है। मोह ही तेरे दुःखका कारण है। दूसरा तेरा दुःखका कारण क्या है यह बनना? अर दुःखका कारण दूसरा नहीं। यह मोह ही दुःखका कारण है। यह मेरा है यह उमगा है। यह क्या है? यह मोह ही तो है। घर यदि यह मोह हट जाये तो दुःख भी हट जावेंगे। म सब यहीच यही रह जावेंगे, जिनका नू मोह पर रहा है व भी नहीं रहेंगे नू भी नहीं रहेंगे। रहेंगे तो केवल हमारा स्वरूप ही हमारे साथ रहेंगे। यदि नू असल इस गूढ स्वरूपका उपयोग बना ले तो तर साथ यह स्वरूप मन्वार रहेंगे। रागादि भाव पीडा दन है ता दे। अर यह पीडा ही क्यों देंगे? यह तरकी तभी पीडा न बनने है जब कि नू पातमागरमें द्वयकर प्रवेश न कर जाण। नू किसकी जान रहा है उममें ही तुममें दुःख होते हैं। अरे नू दाकी न जानकर अपनेको जान। परिवारके रोम्बेना क्या दुःख? अगर परिवार ज्ञान सीता हा गया तो क्या दुःख होंगे और अज्ञान मेरा ज्ञान याने नू ज्ञानमागरमें द्वय गया तो पुगी रहेंगे। दुःख तो तुम तक होंगे जब तेरा ज्ञान, तेरा मोह सभे होगा। उस महावाम बहन है कि तुम्हें आग मानेमें काम कि

पेड गिननेमें । तुम्हें आनन्दसे काम है या लड़को बच्चासे काम है । तुम्हें यदि लड़को बच्चासे आनन्द मिलता है तो उनसे ले लो या अपने आपसे मिलता है तो अपने आपसे ले लो । आनन्द तो इस आत्मामें है । यदि आत्मामें ही दृष्टि रह, आत्मामें ही भ्रुत्वाव रट तो सुखी रहगा । और दुःख तो तब है जब तेरा भ्रुत्वाव परमे होगा, मोहमें होगा, बुटुम्ब परिवारमें होगा । यदि तू अपने क्वालको अपने बुटुम्ब, परिवारसे छाड दे तो दुःख कसे होगा ? यदि अपना लगाव बुटुम्ब, परिवार, घन-वैभव आदिमें होगा तो तुम्हें दुःख हगें । दखो भया ! बाहरी वाताम क्या रखा है ? यदि तू धनी है तो ज्यादामें ज्यादा यह होगा कि दो चार माही पुरुष यह कह देंगे कि यह बहुत धनी है । करोडोका घन जोड लिया और उसका फल क्या मिला कि केवल दो-चार मोही यही कहेंगे कि यह बड़ा धनी है । अरे तुम्हें तो पेट भरना है और दो कपडा पहिनना है । इतना ही तो यहाँका काम है, इसमें ज्यादा और कौन काम है ? तूने इतना श्रम करके, मिथ्या बन करके करोडोका घन एकत्रित कर लिया है और उसका परिणाम केवल इतना है कि दो चार मोही यह कह देंगे कि यह धनी पुरुष है । इतना फल है, कितनी मेहनत की, रात दिन चिंताएं रही, विपदाएं रही । यह चिंताएं और विपदाएं केवल इस प्रयोजनपर रही कि ये मोही पुरुष दो शब्द बोल दें । वह मोही ऐसे हैं जिन्हें अपनेका क्वाल नहीं है, जो गद है, मोही हैं, ससारमें धूमने वाले हैं, सनारका पता भी नहीं है और ममत्वमें फने हुए हैं । ऐसे दो चार व्यक्तियोंके द्वारा उमें प्रशंसा मिलती है इतना परिश्रम करनेपर ।

हं मसारके प्राणी ! तेरेमें अपनी बेमुधोकी ही भूल भरी रहती है, नहीं ता घमका माग गृहस्थीको बिल्कुल सोधा है । अपनी दिनचर्यामें ६ घटेका काम करने को दिया है या ज्यादा से ज्यादा ८ घट तक काम करो । अपनी दुकानमें इतना ही समय दो और जा कुछ पुण्यके अनुमार मिल जाये उसका ही हिसाब लगाकर 'यय वर सतोप प्राप्त करा । जो कुछ आमदनी हो जाय उसीसे सतोप रखो । चाहे खना नमक खाने भरको ही हिस्सेमें भावें उससे ही सतोप प्राप्त करना चाहिए और उसी स्थितिमें ही अपनी धुनको घममें लगाना चाहिए । इतनी हिम्मत हो कि 'यायसे काम करेगा चाहे कुछ मिल अथवा न मिले । अपने सादे नपडे पहिनकर घमक गुणानुवादमें स्वरूपके ध्यातमें धगर मन लगाता है तो वह सुखी है । उसे चाहे खराब दिन भी भावें ता परवाह नहीं है । यह उस्ताहसे काय करगा व आनन्दमग्न होगा । यदि इन लटोरा घसीटोंमें ही उपयोग बना रहा तो दुःख होगा । यह तो सब लटोरे घसीटे खचाडे हैं । इन सबमें तू अपना उपयोग न बना । नहीं तो तुम्हें दुःख होगा ।

यहाँ जो कुछ आया है वह सब मिट जायगा । यह मालूम होत हुए भी यह मोही प्राणी केवल उन दो चार मोही प्राणियोंके दो शब्दोंको सुनना चाहता है । उन्हींके



वह अनेक विपदाएँ सहन किया करता है, अपनका पीडा दिया करता है। यह धनका राग उसे दुःख देता है, उसमे क्लेश उत्पन्न कर देता है।

जसे कोई बच्चा अपनी माँ के पास बैठा हुआ है। बच्चा अपनी मा से यह कहेगा कि वहाँ चलो, वहाँ बठे, वह चावो, इस तरहसे बच्चा कहता है और यदि माँ नहीं करती है तो बच्चा अपना मुँह धुमा लेगा, रोवगा, जमीनमे लेट जायगा। केवल इतनी बातपर कि मेरी बात नहीं रही कि माँ ने कहना नहीं माना, माँ से वहाँ चलनेके लिये कहा—नहीं गई। केवल इतनी ही बात है। बच्चा न कुछ कल्पनासे कितना उपद्रव करता है? इसी प्रकारसे यह मोही प्राणी मायामे पडकर दूसरोसे दुश्मनी कर डालत है। घर कौनसी बातका असर है जो दुश्मनी कर डाली? निजी चीज जिसे माना वह भी निजी नहीं, यदि पूछा जाय कि दुश्मनी क्यों कर डाली तो यही कहेंगे कि मेरी बात नहीं रही। य रागादि विकार करके दुःखी होते हैं। यह रागादिक विकार कब तक दुःखी करेंगे जब तक कि ज्ञानसागरमे हम डूब जावें।

राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि महान् आत्माओंके जीवन-चरित्रको देखते हैं कि जब तक इन्होंने सत्यास नहीं धारण किया है, त्याग नहीं किया है तब तक य दुःखी रहे है, परन्तु अन्तिम जीवनमे उन्होंने त्याग किया, सत्यास किया तो उनका जीवन सुखी हुआ। आज उही की महिमाका गुण गाया जाता है। जब तक कि इन आत्माओंका जीवन घरमे ही व्यतीत हुआ है तब तक उनकी कोई कीमन नहीं थी। परन्तु अपने अन्तिम एक चौथाई जीवनमे ही सत्यास धारण कर अपने जीवनको सफल बनाया। जब तक य अपने घरसे न निकले थे, पालनेमे भूला भूलते थे तब तक उनके गुणोंका गान न होता था, परन्तु जब अपने घरसे निकलकर सत्यास किया तो उनके गुणोंका गान हुआ और वह मोक्ष गए। इस कारण पुराना जो घरलू जीवन था उसके चरित्रके भी गुण गाये जाते है। इसी तरह तीर्थंकर भी जब तक अपने घरमे रहते थे तब तक उनके गुणोंका वरण भगवानके रूपमे नहीं होता था। परन्तु बादमे चरित्र निमल हुआ, अपने आपमे रमें, अपने घर द्वार स्त्री आदिसे विमुक्त हुए और अपने जीवन को सफल बना सके, निर्वाण पधार तब पुराना सारा जीवन प्रभुभक्तिकी पद्धतिमें आ गया। इस जगतके प्राणीका इतना जीवन गुजर गया और इतने जीवनमें बहुत सी बातें रहीं। उन उन बातोंमें क्यों रोते है? अब हम अपने इतने ही जीवनको सभल लें तो कल्याण है।

राजा वक् पहले तो माँसभक्षी थे। अजन चार आदि वेश्यामें आसक्त थे। अत्यन्त दुराचारी थे। बादमें उह गान मिला। उस ज्ञानके कारण ही वह तर गए। अनन लोग उनके गुण गाने लगे और कहने लगे कि देखो यह कितना मासाहारी थे और तर गए। बाद

में उनकी महिमाना गुणानुवाद हुआ। उदयमुंदर अपनी वज्रभानु स्त्रीमें अत्यंत आसक्त था। वह मोहमायामें अत्यंत लीन था। वह रास्तेमें मुनिमात्रमुद्राक पथन करके विरक्त हो गया, तबमें ही उसके गुणोका गान किया जाता है। लोग बादमें वहन लग नि वह कैसे अशुद्ध थे और शुद्ध बन गए। अज्ञान चरित्र बनने पर पहिले चरित्र भी किसी रूपमें गुणानुवादमें आ जाने हैं। हे आत्मन् ! तू अपने रागादिसे उत्पन्न दुःखोंसे क्या रोता है ? तूने ही ता इन दुःखोंको बनाया है। यह तेर रागादि भाव तब तब तुम्हें पीडा देंगे जब तक तेरी आ मांमें पान प्रविष्ट नहीं होगा। तू अपनी आत्मामें पान प्रविष्ट कर अपने आत्मस्वरूपको निरग्न। इसीसे तर समस्त क्लेश समाप्त हो जावेंगे। यदि तुम्हें आत्मस्वरूपमें आनन्द मिलता है तो उसमें भुक्तो और यदि दुनिमाके परपदार्थोंमें आनन्द मिलता है तो परपदार्थोंमें भुक्तो। यदि तू अपने निजस्वरूपमें आनन्द प्राप्त करेगा तो तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा और शांति मिलगी। पर यदि बाह्य पदार्थोंसे आनन्द प्राप्त किया तो उसमें अशांति ही अशांति रहेगी। निम काम में दो चार बप तन टाटा ही टोटा रह उसको वृद्धिमान व्यापारी बदल दता ह। इस बाह्य आनन्दमें ही यदि तू पडा रहा तो शांति नहीं मिलेगी तो तू ऐसे रोजिगारको बदल द। अपने आपके आत्मस्वरूपमें यदि आनन्द प्राप्त किया तो उससे शांति मिलेगी। इसलिए तू ऐसा ही व्यापार कर। यदि तूने एक आत्माकी बात सही जान ली तो वरन योग्य २० बातें गुद ही जान लेगा। १० वानीकी बतानेकी जरूरत नहीं। एक घटना है कि लूदलदण्डम एन राजा रहता था, वह राजा गुजर गया। उसका पुत्र नाबालिग था। अब वह लडका २० २१ बपका हो गया। उसकी मां ने कहा कि मेरे लडकेको राज्य सौंप दिया जाय। उसकी मां ने उसे समझा दिया कि जा बादशाह पूछे उसका या उत्तर दना। यदि यह प्रश्न पूछे ता यह उत्तर देना, यह प्रश्न पूछे ता यह और यह प्रश्न पूछे ता यह उत्तर दना। इस तरहस १० बातें मां ने उसे समझा दी। उस राजकुमारने कहा कि यदि एन १० बातोंमें से एक भी न पूछे तो क्या कहूंगे ? मां बोली कि कुछ अपन आप उत्तर दे सकत हा। राजकुमारन कहा कि क्या भुक्त कल्पना भी अपनाती होगी। मां बोली कि यह तो बडी वृद्धि और प्रतिभाकी बात है। राजकुमार बादशाहके सामने बुलाया गया। बादशाह कुछ नहीं बोला। उस लडकेके दोना हाथ पकड लिया और कहा कि अब तुम परार्थीन हो गए, विवश हो गए, अब तुम भंग क्या कर सकते हा ? राजकुमारने कहा कि अब क्या है, अब तो मैं सब कुछ कर सकता हूँ और अब मैंने मंत्र कुछ कर लिया। जब स्यके साथ शांतिमें हथेलवा होता ह तो एक हाथ पकड लेनेसे स्त्रीकी जिदगीभर रक्षा करनी पडती है। एक हाथके पकडनेसे जिदगीभर रक्षा करनी पडती है तो दोनो हाथोंके पकडनेपर क्या कहना है ? हम तो अब विस्तृत स्वतंत्र हो गए। यह सुनकर बादशाह प्रमत्त हो गया और उस राजकुमारको राजगद्दी दे दी गयी। इस कमडलको

जैसे उठाना है, यम क्या करना है आदि बातोंको क्या सीखना है। यदि इस यथाथ बातको मन्त्र लिया तो टना ही क्या है? बीसो बातें अपने आर समझमे आ जावेंगी। यदि अपने जन्मपदकी प्रतिभा जग जाय तो सारी बातें आ जाए।

यहाँ उपद्रव करने वाले भाव बहुत हैं। मगर ज्ञानस्वभावमे प्रवेश करने पर वे कुछ नहीं। गंगा नदीमे पानीमे एक जानवर था। आराम करनेके लिए मुह उठाकर पानीके बाहर थोड़ा "गी" निवालकर जाना ह। चारो तरफमे सब डो पक्षी उस जानवरपर हमला करनेके लिए आते हैं। पर यदि वह थोड़ासा पानीमे विमन जाता है। तो वे मार पक्षी बेकार बेकार होकर भाग जाते हैं। रागादिक भाव नाना प्रकारके विकल्प, नाना प्रकारके विचार डम ज्ञानमगा जीवनके बाहर मट्टरा रहे है, सब हमार ऊपर हमला कर रहे है। यदि हम जरासा इन रागादिक भावसे विलग हो जावें व ज्ञानमगामे मग्न हो जावें, फिर निरविय तो ये हमारा कुछ नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकारस गंगा नदीमे जीवके दब जानेस सारे पक्षी व्यथ हो जाते है, सारा उन पक्षियोंका परिश्रम बेकार हो जाता है उसी प्रकार इन रागादिक भावोंको जो कि हमें पीडा देते है, हम अपने मोहको जानमे दबा लें तो ये रागादिकभाव हमारा कुछ नहीं कर सकते हैं। जब तक ज्ञानस्वरूपमे चान नहीं है तब तक ये रागादि पीडा देते है। सो अब मैं उन मोहियोंके दो शब्दोंसे हटकर, ज्ञानमे ही डूबकर, मग्न होकर, चानके स्वरूपको ही ज्ञान मे देखकर जहाँ ज्ञान ही जानने वाला है, ज्ञान ही जिसमे जाना जाने वाला है याने ज्ञेय होता रहता है और वह ज्ञान जानकर चागीमात्र ही रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी, ज्ञान और ज्ञेयमे भेद नहीं रहना है। जिसमे भेद नहीं है उसमे ही यह अदभुत परम आत्मानुभवका आनन्द है। जानने वाला तो मैं हू और ज्ञेय बना रहता हू। दुनियाके अनेक पदाथ जहाँ है वहाँ तो आनुरता रहती और जिसका जानने वाला मैं हू वहाँ मैं ही ज्ञेय बना रहता हू। ज्ञेयको ज्ञान में जाँ, यह है सबसे अच्छा रोजिगार। जिसमे तीन लोकका नाथ बना द यह है विलक्षण ध्यापार। किसलिए जान रहे है? जान रह है, इसलिए जान रहे हैं। इस जाननेके आगे और कुछ प्रयोजन नहीं। तो अब ज्ञानमे ही प्रवेश करके मैं अपनेमे अपने आप सुखी होऊ। ये रागादिक उपद्रव तो तब तक होंगे जब तक इस ज्ञानसागर निज आत्मतत्त्वमे अपने आपका प्रवेश न हो जाय। यही ज्ञानयोग ज्ञानियोगका, योगियोंका एक मात्र काय है। इसही से आत्मारो महात्मा होते व महात्मासे परमात्मा हो जाते है। केवल एक ज्ञानानुभव ही है। सो अब ज्ञानमे ज्ञानका अनुभव करने मैं अपनेमे अपने आप आनन्दस्वरूप होऊ। ॐ शान्ति आत्माका स्वभाव सिद्ध बननेका है। सिद्ध रहते है उसे कि जिसने अपने आपके गुणोंकी प्राप्ति कर ली है, अपने आपमे सब कुछ कर लिया, जो अपना गुण है, अपनी शक्ति है उसको देनेका इस आत्मामे स्वभाव है अथवा पूर्ण विकासरूप बन जाने

वा इस आत्मामे स्वभाव है, अनंत मानी अनंत द्रष्टा अनंतमुखी अनंत शक्तिमान हा जाने का स्वभाव है। यह ही इस आत्माका विक्रम है, परिश्रम है चरतूत हं, गुरुवीरता है, पर अन्य इसमें जो पर्याय उत्पन्न होने हैं जने गतिमागणाम नारक, तियञ्च, देव व मनुष्य हो, इन्द्रिय मागणामे एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पचइन्द्रिय बनाया गया है। आय कषाय असयम आदि जो कहा गया है वह किमके विक्रम है? य कम के विक्रम हैं। जैसे निमल शुद्ध काच है वह शुद्ध बना रहे स्वच्छ बना रह तो काचका ही विक्रम हुआ। जम काचको किसीके सामने कर दो या काचके सामने कुछ आ गया, हाथ भा गया, लो छाया आ गयो, उसमें चरतूत किसकी चल गई? हाथ नी। तो वह हाथ निमित्त हुआ। हाथका विक्रम हुआ, हाथरी ही बलाएँ है। यह एक दृष्टि है इसी दृष्टिसे दायना। इसी प्रकार जीवम शूद्रज्ञानरूप बर्ताव वैवज्ज्ञान मात्रमें रहना, जातादृष्टा रहना, यह तो हुआ आत्माका विक्रम और इसमें क्रोध, मान, माह माया, लोभ आदि जा कुछ भी विभाव पर्याय होती हैं वे सब कमके विक्रम है। यहा यह प्रेरणा लनी चाहिए कि जो मरा विक्रम है उस विक्रमको बळ और कमके जो विक्रम हैं उनकी अपेक्षा नरूँ। मरा तो काम है ज्ञाना, दृष्टा रहना। यह चीज कठिन है, ऐसा जानकर इसलिए निरत्साही नहीं होना चाहिए कि बहुत दिनोंसे पडते आए, सुते आए, कुछ लाभ नहीं दिखता अन्तर नहीं आता। भाई बात तो कठिन है। जिस दिन ठीक होना होगा, ठीक हां जायगा। बोधिश करत रहना है, उपयोग बनाए रहना है। जर होना हागा ठीक हा जायगा।

एक बावूने एक बीरोको पायजामा दिया। वह नहीं जानना था कि कैसे पहिना जाता है। तो वह उस पायजामेको कभी कमरम लपेटता, कभी हाथाम डालता तो कभी गले में डालता था। इस तरहसे उसने बहुत बहुत काम किया। एक समयमें उसने पायजामेका एक पर पैरमें डाला और दूसरा पायजामेका पैर भी दूसर पैरमें डाल लिया, अब मट बन गया। उसकी समझमें आ गया कि ऐसे पहिना जाना है। इसी तरह जा पढते हैं, सुनते हैं, बोधिश करते हैं तब भी बात फिट नहीं बैठती है। बात यदि फिट नहीं बैठती है तो नहीं मही, बोधिश करना उद न करो। किसी दिन परद्रव्यकी उपक्षा हट जायगी और अपने आपमें सहज विश्राम पाने लगोगे। अपने आपका सहज अनुभव हो जायगा कि यह बात है, यह प्रभु के स्वभावका मम है। मैं तो अपना विक्रम बळंगा। चीटी चउनी है, चढती ही चली जाती है, कभी उभी गिर जाती है, फिर भी हिम्मत नहीं हारती है, वह ऊपरका चढती ही चली जाती है। बार बार करनेके लिए काम यह है कि परम उज्जा नीर आ म मे दृष्टि हा और कुछ करने लायक काम नहीं है। धन कमाया है बल जायगा या अन्तमें मृतु हो जायगी। एकका भैया मर गया, पडा निपा था। दूसरे जाग प्रार प्यु है, महापुरुनि दिखते है,

मैंने परिणामोंमें तुम्हारा भाई मरा ? लड़का बोलता है कि क्या बनावें—क्या बतायें या र क्या कारोनुमाया कर गए । वी ए किया नौकर हुआ पेन्सन मिनो उर मर गये । भाई नौकरी करता था, बादमें पेंसन मिलती थी और अब मर गया । जगतके सभी जीवोंको ऐसा होता है कि नौकरी किया, घन वैभव जोडा, मर गए और चले गए जीवनको छोडकर । आत्मप्रभुके, आत्मस्वभावके दशन हो तो परिश्रम सफल है । आत्मस्मरणसे जो आत्मसंस्कार बनता है उसका मस्कार तेरा भला करेगा, अय वासनादि भला नहीं करेगी । वितनी दृष्टि फमी हुई है ? घग्के चक्कर, परिवारके चक्कर, यह काम वह काम इत्यादि अनेक प्रकारसे दृष्टि फसी हुई है । ये सब तेर रक्षक नहीं । तेरा तो रक्षक अन्त स्वरूपका दशन है । जैसे रोते हुए बालकको किसी खिलौनेमें रमा दें तो उसका रोना बंद हो जाता है । इसी तरह दुखी होते हुए इन प्राणियोंको जब कभी अपना खिलौना मिल जाय, चैतन्यस्वभावके दशन हो जाए तो यही मोक्षका माग है, शांतिका माग है । यह कोई कठिन बात नहीं है । इस ही स्वरूपमें इस तरहका उत्साह लग जाय, अपने खिलौनेमें लग जाए तो मार क्लेशके रास्ते ही उसके बंद हो जाते हैं । यह अमोघ उपाय है । जैसे रेल, मोटर चलती है तो उनके जो यंत्र बनते हैं, घुमा दें, तेज चला दें, धीरे चला दें । जरासा दबा दें तो तेज चल देते हैं और यदि नि शक होकर और थोडासा दाब दें तो अर्क अधिक तेजीमें चल देती हैं । जो चलाने वाले यंत्र हैं उनको जरासा स्टाट कर दे तो चल देते हैं । उनको चलानेके लिए जो प्रयत्न है वह व्यथ नहीं जाना है । इसी तरह आत्मस्वरूपका दशन भी ऐसा उपाय है कि अगर करें तो व्यथ नहीं जाना है । जानो ऐसा परिणाम तो करता, स्वभावमें दृष्टि तो करता, श्रद्धा तो बनाए है, प्रतीति तो बनाए है । मेरा तो रक्षक मैं ही हूँ, मेरी शरण मैं ही हूँ, दूसरा मेरा कोई रक्षक नहीं है । मैं अपने प्रभुको पहचानू तो मेरा रक्षक मैं ही हूँ, मेरा शरण मैं ही हूँ ।

मैं अपने परिणामोंको पहले देखू । कम जो कुछ निक्रम करते हैं तो करने दो । मैं अपने विक्रम को बहूँ । अपना पुष्पाथ आप करो, कमका विक्रम कममें होने दो । अपना पुष्पाथ यह है कि अपना शुद्ध ज्ञायकस्वरूप देखो । कमका निक्रम कपायादिक है वह चारित्र-मोहमें होने दो । आत्मास्वरूप दृष्टिका काम कर, कम चारित्रमोह करे, जीवके विक्रम और कमके विक्रममें होड लगने दो । हे चारित्रमोह ! तू अपने उपद्रवको समा कर । जब तू अपना उपद्रव समाप्त करेगा तभी तेरा कल्याण होगा । हे प्राणी ! तूने तो कल्पनाए बना ली अपने परिवारकी, अपने बुद्धुम्बको अपने सामने रख लिया और जन्ममरणका चक्कर ले लिया । मुझे तो अपने आपमें यह विक्रम लगाना है कि अपने आपको शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानमान, जाननस्वरूप, जो केवल जानता है, जानन-जानन ही जिसका स्वरूप है, जो परपदार्थोंसे भिन्न

है, किमी अग्रयमे सम्पन्न नहीं है, ऐसे उपयोगम हम लागना है। यह प्रथम बीज है। उसमे ही मेरेमे आनन्द आता है। इसने बिना गुणोभा विकास नहीं। इसी प्रकारका ध्यान बना कर ज्ञानी जीव अपनेको ज्ञाना द्रष्टा बनाय रहोवा अपना विक्रम करने हैं। क्रोधका उदय वहाँ नहीं है, अग्रय प्रकारक विचार भी वहाँ नहीं है। इसमे मोह नहीं है दु खोंसे रहित है। जहाँ पर मोह है, क्रोध, मान, माया, लोभ है वहाँ पर विपत्तियाँ हैं। कम अपना विक्रम कर रहे हैं और यह मैं अपना विक्रम करूँ।

दखो एक जानवर होता है कछुवा। उसे कोई सताये तो वह अपनी चोच भीतर दबा ले तो उसकी चोच भीतर घुस जाती है। केवल ढाँचा पडा रहता है, मुह भीतर पडा रहता है। कछुवेका बाकी शरीर तो बडा रहता है। उसको चाह ठोकर रहो पीटत रहो, परन्तु वह सुरक्षित रहता है। यह तो उदाहरणकी बात है। इसी प्रकार हमारे ऊपर चाहे जितनी आपत्तियाँ आएँ, आने दो। हमारे पास तो ताकत है। अपना विक्रम करें। अपने विक्रमको हम भीतर ले जाएँ और ज्ञानस्वभावमात्र आनन्दभावमात्र अपने स्वरूपको निरखें। यहाँ तो मेरा कुछ नहीं है, मैं ज्ञानमात्र हूँ। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि मेरम नहीं है पर हो जाने हैं। कमना विक्रम है। होने दो। मैं अपना विक्रम करूँ अर्थात् जाता द्रष्टा रहूँ और अपने विक्रम करके अपने आप सुखो होऊँ। दखो भैया। करनेका काम एक ही यह है वह करनेमे आ ही नहीं रहा है। पर करना तो यही पडेगा। क्यों नहीं करोगे आ रहा है? अपनी कमजोरीमे। अपने भावाको ढोला कर दिया, मनका ढोला कर दिया तो हम स्वच्छन्द हो गए। अपने मनको नियमित कर, स्वभावके दशन कर लिए ता उ साह हो गया। क्या करना है, मैं तो वृत्तवृत्त्य हूँ। मरा तो वृत्तवृत्त्यके अतिरिक्त कोई काम ही नहीं पडा है। कौनमा काम पडा है? अमुक अमुक। अर वह तो मेरा काम ही नहीं है। प्रत्येक द्रव्य अपने आपमे परिणमते हैं। उनमे मेरा कुछ नहीं पडा है। मैं वृत्तकृत्य हूँ। मैं जो कुछ करूँगा वह यही कि जानना चाहिए। चेतनाका चमत्कार है यह केवल जानता हूँ प्रतिभास स्वरूप हूँ, मैं इतना मात्र आत्माका मम हूँ। अपनी शूरवीरतासे हटे तो दुनियाके सभी पदार्थोंसे मुझे दुःख है। हम दुःखके कारण बन जाएंगे और यदि हम प्रबल रह तो दुनियाके कोई भी पदार्थ मुझ दुखी नहीं कर सकतें।

कभी दखा होगा जब बच्चे 'अथवा कोई भी कहने है कि पीठपर मुक्के लगाओ, जितने लगा सकने हो लगावा। तो उस बच्चेकी हिम्मत बडी हो जाती है। वह कडी पीठ कर लेता है मास भर लेता है। वह मुक्के लगवा लेता है, सह जाता है उसे बलेश नहीं होना है। उसकी वान क्या कहें कि जो व्यायाम दिखाते बाल होते हैं अपनी छाता परम हाथी का पर रखकर निकलवा तते हैं। वहाँ भीतरम तयारी कर लेता है, उस

दुख नहीं होता है। उनका दिल कड़ा बन जाता है, वे क्लेश महसूस नहीं करते हैं। इसी प्रकार यदि भीतरके मनको कड़ा बना लिया जाय, सयत बर लिया जाय तो यह जानना ही तो है ना। दृढतासे निणय होता कि अरे मैं तो जान गया, सो जानना ही तो मेरा स्वभाव है। मैं तो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको जान गया। ऐसी बड़ी हिम्मत करलो तो जो विपदाएं भी आती हैं वे चली जाती हैं। इन विपदाओंका मुझपर असर नहीं होगा। अपने विक्रममें रहे तो कमके विक्रमका असर न होगा। ढीले ढाले बठे है, भीतरमें कोई तैयारी नहीं है और यदि कोई मुक्का लगा देवे तो अत्यंत दुख होगा। इन्हीं तरह ढीले ढाले शिथिल मन पड़ा हुआ है तो यह सब अमर करता है। यह आत्मा खुद ही बाहरी चीजोंको निमित्त पाकर अपने आपमें अपना असर डाल लिया करता है। जैसे कहते हैं कि खुद तो जगत नहीं, खुद तो स्वाधीन नहीं होते और कहते हैं कि स्टेशन लुटेरा है। अरे खुद जगते रहो कौन लूटेगा ? इसी तरह हम खुद स्वाधीन नहीं होते। नाम लगता है घरका, गृहस्थीका, धनका, वैभवका। इन इन चीजोंमें तो उसे लूट लिया, बर्बाद कर दिया, फाँस लिया। नाम बर्बाद करता है पर पदार्थको यो ही देखनेसे उस अज्ञानी को दुख हो रहे हैं। दुख तो कोई चीज ही नहीं है, दुखोका नाम ही नाम है। ऐसी कल्पना करो कि जहाँ यह जचे कि दुख कोई चीज नहीं है तो सुख होगा।

तीन चोर थे। चोरी करने जा रहे थे। रास्तेमें एक नया आदमी मिला। बोला कहां जा रहे हो ? बोले—चोरी करने जा रह हैं। उसने कहा कि इससे क्या होगा ? बोले—घन लूटेंगे। अगर घन लेना है तो तुम भी चलो। नया व्यक्ति माथमें चल देता है। वह यह नहीं जानता है कि घरमें कैसे घुसा जाता है और कैसे बाहर निकला जाता है ? घरके आदर सब घुस गए। एक बूढ़े आदमी ने खास दिया। वे तीन तो भाग गए। अब वह नया आदमी भागना नहीं जानता था। उसने और कुछ न सोचा, घरमें जो ऊपर बड़ी लगी हुयी थी उस पर जाकर बैठ गया। गाँवके बहुतसे लोग एकत्रित हो गए। हल्ला मच गया। वहाँ दसों आदमी थे, दसों तरह के सवाल होते थे। घरके मालिकने कहा कि हम सब बातोंको क्या जानें, ऊपर वाला जानें। उसके कहनेका तात्पर्य भगवानसे था कि भगवान जाने, पर उस छिपे हुए नए चोर ने यही समझा कि यह मेरे लिए कह रहा है। उसने मोक्षा कि मैं पकड़ा न जाऊ इसलिए बोला कि क्या मैं ही जानू ? वे तीन आदमी क्यों नहीं जानें। अब वह नया चोर पकड़ लिया गया। बाँधा गया, मारा पीटा गया। बद हो गया। यहाँ पर उसने केवल कल्पना ही तो कर लिया था कि यह मेरे लिए कहा जा रहा है इसलिए पकड़ा गया, मारा गया और बद किया गया। अब मुझे अपने आपको उठाना है। कमके विक्रम यदि चलते हैं तो मैं अपने विक्रमको बरूँ, ज्ञाता दृष्टा बनूँ। इसके आगे हमें कुछ नहीं चाहिए, क्योंकि

कुछ मिलेगा नहीं परमे, उनका परिणामन उनमे है, हमारा परिणामन हमारेमे है। जो कुछ मुझे ज्ञान होता है वह मेरेमे मेरेमे होता है, किसी परसे नही होता है। जो मुमको आनन्द प्रकट होता है वह आनन्द मेरेसे मेरम प्रकट होता है। दूसरा नियम नहीं दूसरा "याय नही। फिर किम बातकी परसे आशा करते हो? अपनी अंतरदृष्टि बनाओ कि जमी उसकी प्रतिभा है तसी मेरी प्रतिभा है। सब अपनेमे हैं मैं अपने मे हू। इन प्रकारसे वस्तु के स्वरूपको निरखना यह ही पुरुषार्थ है, यही विक्रम है। एक गृध्र ज्ञानका पुरुषार्थ करके अपनी इन सब वासनाओको दूर करा। जो जो सस्कार भर हुए हैं, जो जो वामनाए जो जो कर्म क्रोध, मान, माया लोभ इत्यादि भर हुए हैं उन सबको अपने पुरुषार्थसे अपने विक्रमसे दूर करो।

एक साप था। उसने यह विचार कर लिया था कि मैं किसीको सताऊंगा नही। वह शात था। मुबह उस घरमे बच्चेको एक बटोरा दूध दिया जाना था। वह बच्चा अपने समने बटोरा रखे हुए दूध पी रहा था। इतनेमे वह साँप आया और उस बटोरसे दूध पी लिया। उस बच्चेमे साँपके कई थप्पड मारा पर साँपने सहन कर लिया। खूब दूध पीकर मस्त हो गया। इसी तरहमे वह नित्य प्रति दूध पीकर मस्त हो रहा था। दूसरे साँपने कहा कि क्या खान हो कि मोटे तगडे हो रहे हो? उसने कहा कि तुम इसकी क्या नहीं जानते हो। मैं नित्य प्रति बच्चेको पिलाया जाने वाला दूध पी लेता हूँ। बच्चा मुझे मारता है और मैं क्षमा करता रहता हूँ और थप्पड सहन करना रहता हूँ, खूब दूध पीता हूँ। बोला कि मैं भी ऐसा ही करूँगा। कहा कैसे करोगे? बोला कि मैं सौ थप्पड तक क्षमा कर दूँगा। गबेरा हुआ बच्चेके लिए दूध आया। दूसरा साँप बच्चेका दूध पीने लगा। बच्चेने एक थप्पड मारा, दो थप्पड मारा, दस थप्पड मारा, बीस थप्पड मारा, पचास थप्पड मारा, ६६ थप्पड मारा और १०० थप्पड मारा। साँप सब सहन करता गया। जब उस बच्चेने एक थप्पड और मारा तो तो भट उस मपने फुंवार मारी। अब उस फुंवारको गुन सब लोग उसके ऊपर टूट पडे और उन्होंने उसे मार डाला तो वह मप मनमे वासना भर हुए था कि मैं १०० थप्पड तक सहन करूँगा, भ्रम नहीं। उस वासनाके ही कारण वह मारा गया।

अंतरमे विषय बताया जो भरे हुए हैं वे सब परेशान करते है। लोग कहते है कि जब त्राप करते हैं तो दसो जगह मन जाना है और अगर अपनी दुकानपर रहते है तो केवल एक ही जगहपर मन रहता है। इसलिए जापस अच्छी तो मेरी दुकान है। घरे दोनो एक ही जगह हैं। सस्कारसे कमबन्धन करते है। यह न समझे कि दुकानपर बैठनेमे उपयोग दस जगह नहीं जाता सो कमबन्ध नहीं होता। जसी वासना है वसी बन्ध है। बात तो बल्कि यह अच्छी समझनी चाहिये कि जो नाना विषयकथाय भरे हुए है उनको जापका प्रसंग



बतना देता है। अब ज्ञानोपयोग करके उन विषयवपायोको निकाल दो। अब यह करना चाहिए कि अपने ज्ञानस्वभावका, ध्यानका, मननका, चिंतनका, विचार तो करना चाहिए और वासनाओका, कपायोका तिरस्कार करना चाहिए। यही मेरा विक्रम है कि मैं ज्ञानस्वरूप रहूँ और अपना विक्रम मानूँ। यदि मैंने यह विक्रम कर लिया तो मैं अपनेम अपने लिए आनन्द-स्वरूप हो सकता हूँ।

इस लोकमे इस सयोगजय दृष्टिके द्वारा जो-जो कुछ सयोगजय पदार्थ मालूम हो रहे है सो न तो यह सयोगजन्य दृष्टि म हूँ और न सयोगजय पदार्थ मैं हूँ। मैं देख रहा हूँ। किनको देख रहा हूँ? इन सयोगजय पदार्थोंको अर्थात् परमाणुओंके सयोगमे बने हुए इन ढाँचोंको देख रहा हूँ। कमडल है, यह भी सयोगजय पदार्थ है, अपनी स्वतंत्र सत्ता रखने वाला पदार्थ नहीं है, क्योंकि यदि यह अपनी स्वतंत्र सत्ता बाना है तो यह मिट नहीं सकता। जो सत् है वह त्रिकाल है। यह मिटा नहीं करता है। दरी है, चीकी है, शरीर है यह सारे के सारे सयोगजन्य पदार्थ हैं, स्वयं सारभूत नहीं हैं। इसीलिए यह मायारूप हैं, परमार्थ नहीं हैं। जो कुछ भी दीख रहे हैं वे कुछ परमाथ नहीं हैं, वे सब सयोगजय है, मायारूप हैं, मिट जाने वाली चीजें हैं। वास्तविक बात तो कुछ और हो, परंतु रूप कुछ और बन गया हो। यही तो माया है। ये इन्द्रजाल हैं। इन्द्रजाल कहने किमे है? इन्द्रजाल इन्द्र याने जीव उसका जाल सो इन्द्रजाल। यही जीवका जाल है, यही इन्द्रका जाल है यह ईश्वरकी लीला है खाली जीव, खाली ईश्वरसे यह लीला नहीं बनती, यह हम उपाधिमे बनती है, यह प्रकृतिके निमित्तमे बनती है, सो प्रकृतिकी चीज है। किसी भी तरफ देखते जावो यह सब मायामय वस्तु हैं, सयोगजय पदार्थ हैं, परमाणु रूप नहीं हैं। तो मोट्टमे मैं क्या बन रहा हूँ? यही सब मैं हूँ। मैं और कुछ नहीं हूँ और ये असाग्भूत मायामय पदार्थ मायाकी वस्तुयें है, प्राकृतिक हैं याने प्रकृतिविकार हैं। ईश्वरकी लीला किन्ही भी शब्दोमे कह—जो कुछ माया दीख रही है इसके देखने वाला कौन है? किमके द्वारा हम देख रह है? इस एक्के द्वारा नहीं। दृष्टि नेत्रके द्वारा देखते है, यह दृष्टि ही सयोगजय होती है। जिसकी आर देख रहे हैं वह भी माया मय वस्तु है। केवलके द्वार दीखते नहीं है यह दृष्टि केवल पुद्गल ही है, केवल जीव भी नहीं है ऐसा देखनेका काम करते है। दिखने वाले तो वे पुद्गल है वे सब कुछ नहीं देखते है। पुद्गल देखे तो मुर्दा शरीर भी देखे, जीव देखे तो ऐसी गदी दृष्टि मिद्धकी भी हो जाय, ऐसा देखना न केवल आत्माका काम है, न केवल पुद्गलोका काम है और दोनोंका मिल करके भी काम नहीं है और काम होता रहता है। देखो यह दृष्टि भी गजबकी माया है। मायामय चीजें हैं तो मायामय ही दिखाई पडती हैं। सो न मायामय चीजें मेरी हैं और न मायामय दृष्टि मेरी

है और न यह दोनों मैं और न य दोनों मेरे । इग कारण उन दोनोंको समाप्त करके, त्याग करके अपनेमें अपने लिए अपने आप मुक्तो होऊँ ।

त्याग कहने जिसे है ? यथार्थ ज्ञान कर लेना, इसीके मायने त्याग है । जन्म कहते हैं ना कि तुम्हारी इसीसे दोस्ती है और दोस्तीका त्याग कैसे होगा ? जब ग्रहितपनेकी कल्पनाएँ बना लेंगे तो दोस्तीसे त्याग हो जायगा और यदि हितपनेकी कल्पनासे, उसीको ढँगसे जान लिया तो इसीके मायने दोस्ती है । इसको मेरसे अदर विरोध है इसी जाननेके मायने त्याग है । मित्रता करता तो ग्रहण कुछ करता नहीं, परन्तु कल्पनाया द्वारा मित्र बना लिया । तो जसी ही कल्पना होगी वसी ही मित्रता होगी और वंसा ही त्याग होगा । इसी तरह यह धन-वैभव बना हुआ है तो यह कुछ मायने नहीं रखता । वे भी मित्र पदाथ है । उनका लेना-देना आमामे नहीं है । बस मान लिया कि मेरे पास धन है । यदि यह कल्पना बनी कि मेरे पास धन है तो यह धनो बन गया और यदि यह मान लिया कि मेरे पास धन नहीं है तो गरीब बन गया । इम जीवमे पूरा मामर्थ्य है । यह जैसा अपनेको माने तैसा हो जायगा । जो जो कुछ दिखते हैं वे सब मयोजन्य पदाथ हैं । खास, यथाथ परमाथमे कुछ भी तत्त्व नहीं दिखता । जिस जीवसे प्रीति हाती है, मोह होता है वह पदाथ अत्यन्त मित्र है । उसकी प्रीति करके उन पदाथोंमे कुछ अमर बदल नहीं जाता, कुछ अपने हो नहीं जाते । जस देखा होगा कि और बहुतसे मनुष्य हैं जिनसे बोलनेमे भी प्रसंग नहीं होता और आपका मोह और प्रीति उत्पन्न हो जाती है तो मोह और प्रीतिका कारण तो तुम्ही हो । केवल अपने अन्दर कल्पनाएँ माह और प्रीतिकी गर ली हैं । अब तुम्ही इसी रहो वह तो जो है सो है । जैसे किमीको पुरा लग जाय तो कहते हैं कि तुम्हारे पटमे उर्दा चुरने लगा । जो घुर सवरप कर, घुर विचार कर तो वह अपने अन्दर घुल जाता है, मिट जाता है, बरबात हो जाता है । जो सोट भाव बरगा वह स्वयं मिट जायगा । नश्वर मायामय वस्तुवोना सग्रह करनेके उद्देश्यन अपने आपकी रचि छाडकर भूठ घोवा आदि करे तो यह अपने आपपर बहुत बडा अयाचार है । और यदि अपने ईमान और सच्चाईपर टड होकर और फिर अपने बलमे धमस स्थलित न हानर दखो तां तत्काल एक क्षमत्कारता बैठा हुआ आनन्द उत्पन्न होता है । ये कुछ नहीं । इन मायामय चीजोका मायामय दृष्टिसे निरखकर मायामय प्रयोगके द्वारा इनकी कल्पना बना लें तो उन्धान नही होगा ।

मदिरम भगवानकी मूर्तिके सामने ध्यान करते हैं तो किस बातना करते हैं ? उस प्रभुकी मूर्तिकी मुद्रा ऐसी है कि मानो वह नह रही है कि हे आत्मन् ! तू समस्त जजाल छोडकर कुटुम्ब परिवार इत्यादिना तू त्याग कर, मुझ जैसा विश्वास पा, तेरा किसीसे प्रयो जन नहीं है । तू अपने प्रयोजन किमीसे न रख । तू अपने आपमें ध्यान करके शान्त होगा

श्रीर अपने आपके स्वरूपमें भग्न होगा। केवल तू शूद्र अपने आप रहगा श्रीर आनन्दमग्न हो जायगा। हे भगवन्! आप तो शूद्र रह, अपने आपमें आनन्दमग्न हो गए। धर्म्य है तुम्हें भगवन्! यही आपकी महत्ता है। हे आत्मन्! ऐसी महत्ताका तू विचार कर, ऐसा ही अपने आपको निरखकर आनन्दमग्न हो जा। किसीसे तेरा प्रयोजन न रह श्रीर स्वयंमें विचार करके आनन्दमग्न हो जा तो तारी स्थिति उस भगवानमरीची हो सकती है।

तू मंदिरमें मूर्तिको देखकर इस प्रकारमें ध्यान कर कि उस मूर्तिको देखनेमें तुम्हें शांति की शिक्षा मिले, त्यागकी शिक्षा मिले। यही वास्तविक मूर्तिकी पूजा है। श्रीर यदि मूर्तिको खूब सजाए, उच्चा ग्रामन बनाए, सिंहासन बनाए श्रीर उस मूर्तिको बंटाए श्रीर यदि उस मूर्तिसे शिक्षा न ले सके तो वास्तविक पूजा नहीं कही जायगी। उस मूर्तिसे तुम्हें त्यागकी शिक्षा प्राप्त होगी, शांति एवं धैर्यकी शिक्षा प्राप्त होगी।

हे आत्मन्! त्याग ही सार है। तू त्यागको ही अपना। यदि तू त्यागको अपनाता है तो आत्माको लेश नहीं है और यदि त्यागसे विमुख होकर इस प्रकारके दूषित वातावरण में पड़े तो आजीवन क्लेश रहेंगे। मूर्ति जो कि मन्दिरके अंदर होती है उसकी मुद्रा त्यागमय है। हे जगतके प्राणी! यदि परिग्रहका त्याग नहीं, स्त्री पुत्रोंसे वैराग्य नहीं और ऋत पटाग बठनेका ही काम रहा तो आजीवन क्लेश होंगे। अरे अपनम निराजमान माम्नात् परमात्म-तत्त्वको देखो श्रीर अपने समस्त मायामोहोंमें त्याग। यदि यह भाव उत्पन्न होता है तो तुम्हें मुख है। तेर सुखी बननेका अच्छा उपाय है कि जैसी शांत मूर्ति है वसा शांत बननेकी कोशिश करो। उस मूर्तिके दर्शनसे जो शिक्षा मिलेगी वह तेर लिए वन्याणकारी है। देखो जिनमें फलें हुए हो वे सब मायामय पदार्थ हैं। तू उन समस्त मायामयी पदार्थोंसे प्रीति मत कर। सावधान! तू जर है। यह सब तू जर है। तू परमें प्रीति मत कर। यदि परकी प्रीतिमें फल गया तो तुम्हें क्लेश हैं। प्रीति करते समय तो वह सब अच्छा लगता है। स्त्री बड़ी उत्तम है, बड़ी गुणवान है, बड़ी रूपवान है, पुत्र बड़े अच्छे हैं, मित्र बड़े अच्छे हैं। अरे ये तर नहीं हो सकते हैं। ये सब तेर लिए जज्ञान हैं। इनसे तरा हित कुछ नहीं, अहित ही रहगा। यह गृहस्थी बनाई गई है, गृहस्थधर्म बताया गया है, पर स्त्री पुत्रोंसे आनन्द प्राप्त करो ही को नहीं बताया गया है। इसलिये यह गृहस्थ धर्म है कि ह भाई! तेरा काम तो यह है कि अपने सारे आरम्भ परिग्रहका त्याग करके अपने अहिंसा मत्त अचोय ब्रह्मचर्य व आकिञ्चयमें आकरके आत्मयोगी बनकर मोक्षमें पधारो, किंतु जो कोई कायर है, कमजोर है, कुछ कर नहीं सकता है तो उसे बताया है कि इस प्रकारकी गृहस्थचर्या धारण करके सुख धर्मके कार्योंमें लगे। यदि धर्मके कार्योंमें लगेगे तो तुम्हारा कृत्याण निश्चित है। यह गृहस्थी इसलिये बसाई है कि तुमसे महाव्रत नहीं पल सकता तो एक स्त्री व छोटी गृहस्थीमें

मतोप करके बाकी सब पापामे दूर रहो ।

हं आत्मन् ! शत्रुता बनाए रहना और ऋभटोमे पडा रहना यह गृहस्थीका धर्म नहीं है । इसलिए तू इन समस्त ऋभटो एव शत्रुताघोसे विलग होकर अपने आपमे रमो । जब अपने आपमे रमोगे तभी गुजारा होगा अथवा नहीं । जो बच्चा अच्छी तरहसे नहीं चल सकता है उसके लिए माता अगुलीका महारा देती है । इसी प्रकारम जो सयोगदृष्टिसे दखते है यह मैं नहीं हूँ, वह मेरा नहीं है, इसलिए मैं इन सबको त्याग देता हूँ, त्यागना क्या है—यह मान लो कि यह भिन्न है, भाव सत् है । मेरा धनस कुछ सम्बन्ध नहीं है । मैं तो एक ज्ञानान् भावात्मक वस्तु हूँ, स्वयं आनन्दस्वरूप हूँ, परिपूर्ण हूँ, अधूरा नहीं हूँ । कभी नहीं है । हमे बनना नहीं है हम बने बनाए हैं । मेरेमे सब बभ्रव भरा है सब तैयार है । केवल ऊपरकी ढकी हुई अज्ञानकी चट्टको उठानेकी जरूरत है । जम भोजन भीतर सब तैयार है । तित्तु उम घाली पर छद्मा ढका है तो सिद्ध है कि छ ना उठने की जरूरत है । आत्मानाम पान आनन्द सुख इत्यादि समस्त तैयार भर पडे हुए हैं । केवल जानने भरकी जरूरत है । अज्ञान का छन्ना पडा हुआ है उसे हटा लो पूरी सावधानी करके अपने जोहरको देखो और उसका आनन्द लूटो । इन त्यागो जाने योग्य पदार्थोमे पडनेसे कभी कुछ पूरा नहीं पडेगा । अत मैं इन मयोगजय पदार्थोका त्याग करूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ।

यह मैं आत्मा इत्य किसी जगह नहीं हूँ । मैं मुक्त हो हूँ । यह मैं आत्मा किसी अथका नहीं हूँ । मैं मेरा ही हूँ । यह मैं आत्मा कभी नष्ट नहीं हुआ और न नष्ट हुआ । मैं ध्रुव हूँ । यह मैं आत्मा अपनेमे बहर कभी नहीं गया जो मुक्तको अपनेका टूटनेकी हेरानी करनी पडे क्योंकि यह पानस्वरूप आत्मा यहीका यही विराजमान है । तीन लोकके अधिपति बननेका उपाय अकिञ्चनस्वरूप आत्माका दर्शन है । एक जगह गुरुभद्र स्वामी ने कहा कि—

अकिञ्चनोहमित्याम्य शैलोक्त्याधिपतिभवे ।

योगिगम्य तत्र प्रोक्त रहस्य परमात्मन ॥

गुरु जी अपने शिष्योमे करन हैं कि आजमे तुम्ह परमात्मा बनने का रहस्य बतलाऊँ तो शिष्योमे कहा कि हाँ हाँ गुरु जी बतलाओ । गुरुजी ने कहा दखो मैं अकिञ्चन हूँ मेरा कहीं कुछ नहीं है, मेरा मैं ही हूँ । मेरेमे बाहर मरु न तो गुण हूँ, न पर्याय है, न अस्तर है, न लगाव है और कुछ भी नहीं है, ऐसा मानकर ट नाकर बैठ जावो, ऐसा अपने मनमे जिद्द बना कर ठहर जावो तो तुम तीन लोकके अधिपति हो जावोगे । देखो यह परमश्रीपति पदार्थ है । देखा सब बनेश मिटनेकी सबसे परमश्रीपति है अकिञ्चन की भावना । जैसे कोई रोग हो जाय तो वही उस डाक्टरसे इलाज करवाया, वही उस डाक्टरसे इलाज करवाया । सबसे इलाज करवाया परन्तु किसीम भी आराम नहीं हुआ तो जिसको वह ज्यादा +

समझता है उसके लिए आखिरीमे इलाज करवानेके लिए कृपा है और उसीमे इलाज करवा-  
 एगा। अरे अब आखिरी एत इलाज तो करवा लो। इसी तरह ससारे दुख दूर करने हैं,  
 इलाज कई तरहका बहुत कराया। घन, वैभव हो जाय, गुटुम्ब गणिवार हो जाय, लडके बच्चे  
 हो जाएँ बहुत यत्न किये इलाज किये किंतु लडके बच्चे हो जाएँ। बहुत यत्न किये, इलाज  
 किये, किंतु इनमे नहीं दूर हुए। कितने भी उपाय कर डालो पर दुख दूर नहीं होंगे इनसे।  
 दुख दूर करनेका इलाज तो यह है कि अपनेका अक्विचन मानो। वस ससारकी सारी चिंताएँ,  
 सारे प्रेश समाप्त हो जावेंगे। अपनेको मानो कि मैं अक्विचन हूँ, मेरा तो मैं ही हूँ, अब  
 कोई नहीं है। यही सबसे अच्छा इलाज है। सो भैया। अपने को अक्विचन मानकर अपने  
 आपमे विश्राम तो कर लो। यदि अपनेको अक्विचन मान लिया और अपने आपमे ही विश्राम  
 पाया तो त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। मैं यहाँ अपने आपमे हूँ, अपने ही स्वरूपको लिए  
 हूँ, मेरेमे अनंत आनन्द भरा हुआ है, मैं कैसा विलक्षण, सबसे निराला ज्ञानानन्दमय, परम-  
 पवित्र पदार्थ हूँ? वही बाहर नहीं हूँ, अयत्न नहीं गया हुआ हूँ पर अपने आपको न निरखकर  
 यह जीव शून्य बन जाता है, अपना पता ही नहीं रखता है और बाह्ये दृष्टि रखता है अपने  
 को मक्विचन भावके लगता। इसीमे उसे बलेश हुआ करते है। हम अपने आपको समझें  
 कि मैं अक्विचन हूँ। मेरेसे बाहर मेरा कुछ नहीं है और जो कुछ मुझमे है वह वही बाहरसे  
 नहीं आता है। मेरेमे तो मेरा स्वरूप अतुष्टय विद्यमान है, यह मैं ज्योतिमय पदार्थ हूँ। देखो  
 लोक्यवहारमे भी उम मनुष्यकी इज्जत बढ़ती है। जो मनुष्य यह कहता है कि मैं कुछ  
 नहीं हूँ, जीवनभर बड़ दानके भी काम कर लिए देश और समाजकी सेवाओका भी काम  
 कर लिया तो उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ गई उनकी शोभा बढ़ गई, उनका सम्मान भी होता  
 है। पर यह तब तक है जब तक वह आपको ना कुछ कहना है। उसने परमायसे भी दख  
 लिया कि मैं औरोके लिए कोई चीज नहीं हूँ, मेरा जगतमे कुछ नहीं है, मैं केवल अपना  
 स्वरूपमात्र हूँ—यदि मैं अपनेको इस तरहसे समझूँ तो अंतरमे पारमायिक इज्जत हो जायगी।  
 आनंद चाहत हो तो आनंदका उपाय इसी अमृततत्त्वका ही लेना है—मैं अक्विचन हूँ मेरा  
 कुछ नहीं है।

एक साधु था। उसकी लगोटीको चूह काट जाया करते थे। अब साधुको यह बहुत  
 बड़ी हैरानी हुई। साधुने चूहोसे रक्षाके लिए बिल्ली पाली। बिल्ली दूध पीती थी। अब उस  
 बिल्लीको दूध पिलानेके लिए एक गाय पाली। उस गायको चराने वाला कोई नौकर या  
 नौकरानी होना चाहिए। गायको चरानेके लिए एक नौकरानी रख लिया। कुछ समयके बाद  
 उस दासीके कुर्सीनी होनेसे लडका पदा हुआ। उस साधुने देखा कि पहले बिल्ली थी, फिर  
 गाय हुई, गायका बच्चा हुआ, फिर नौकरानी हुई, फिर लडका हुआ। इस तरहसे मेरा अब

तो भर गया। अब उह किसी गाँव जाकी जरूरत पडी, क्योंकि घर तो भर गया था उसकी गुजर करनी थी। रास्तेमे एक नदी पडी। उस नदीस सब निकलने लगे ता अचानक ही एक छोटीसी बाँध आयी जिससे सबके पर उखड गए सब बहने लग। दासीने भट साधुकी लगोटी को पकडा, क्योंकि रक्षा करने वाले तो वही थे। इस तरहमे सब उस साधुकी शरणमे गए। बिल्ली भी गयी, गाय, गायका बच्चा तथा लडका इत्यादि भी सब उस साधुकी शरणमे गए। अब तो साधु भी डूबने लगा। अब वह साधु साचता है कि अर यह सारी बला तो केवल लगोटके कारण आई है। लगोटके ही कारण गाय, गायका बच्चा, बिल्ली, दासी दासीका लडका इत्यादिसे विडम्बना हो गई है। अब साधुने लगोटको भटकेसे निकालकर फेंक दिया और सत्य विचारन लगा कि य जीव मेरे कुछ नहीं हैं इनसे मरा कोई सम्बध नहीं है। उसे ज्ञान हो गया। देखो भैया! उस साधुने परसे सम्बध स्थापित कर लिया था तो उसे क्या क्या मुसीबतें उठानी पडी? जो अपनेको परसे मिला हुआ समझता है वह डूब जायगा। और जो अपनेका कुछ नहीं समझता है वह तिर जायगा।

किसी घरमे होता है कि बाप बडो उमरका हो जाता है। पाच सात बच्चे भी हो जाने हैं। बच्चोका रोजिगार भी अच्छा चलता है। बाप उन बच्चोके काममे दखल देता है। दखल देनेसे नुकसान हो रहा है। कही ४-६ महीनेका वह बूढा बाप न रहे, किसी जगह चला जाय तो बच्चे मुख शानिम काम करते हैं। बाप तो यह समझता है कि हम काम कर रहे हैं पर बच्चे मुसीबत उठात व नुकसान भी यदि बाप बच्चामे काम न पूछ तो बाप पुश है और बच्चे भी पुश हैं। देखो ना इस जीवन भी इन शरीरवगणाभ्रम दखल दिया तो शरीर भी खराब हो गया व आत्मा भी खराब होगा। हम तो आत्मा हैं, वह तो चडा मला है, इस आत्माका जाननेका ही काम है। मेरमे कोई भी विपदाएँ हा, कोई भी बाहरी विवाद हो दु सही पहूचात है। किसी भी प्रकार की विपदाएँ इस आत्मामे नहीं आती ह। इन आहारवगणाभ्रमे जब रूह दखल देता है तो यह भी बुरा होता है व शरीरवगणा भी बुरी होनी है। यह जीव अकेला रहकर बडे आराममे बना रहता है। य पुद्गल भी भासादि रहित पवित्र बने रहते ह।

इभीमे पुद्गलकी यह दशा हो गई। इसीसे जीवकी यह दशा हा गई। अच्छी भुवती वा बडिया लडकू है बडिया बना है, खूब मजेदार है, तबियत भी ठीक है, स्वास्थ्य भी अच्छा है यह आदमी भी अच्छा है। बस अब लडकू पाए। लडकू खानस लडूकी क्या हालत हुई सो मुँह बाकर एनाम टख लो, चिपर चिपर हा रहा, यहाँ खानमे आसक्त हुए पुष्पकी दशा देख लो, बीमारीने आक्रमण कर दिया। यह हुई खाने वालेकी दशा। खाने वाले की तो तबियत खराब ही जाती है और लडकू बेकार हा जाता है। यह हुई लडकू महाराजकी दशा। लडकू

अपनी जगह पर अच्छा था, आदमी अपनी जगहपर अच्छा था। अपनी जगह पर रहते तो दोनो मजेमे थे। य दुनियाके सार वैभव मित्रजन, कुटुम्ब, परिवार इत्यादि भी हो तो उनसे पूरा नहीं पडेगा। इन किन्हीसे भी हमारा पूरा न पडेगा खराबी ही रहेगी। जो पदाथ जहाँ जिसमे, जिस स्वरूपमे है बना रहने दे उांमे पडे तो यह भी खराबी है। यह अक्विचन भाव अमृत है। कितने ही कष्ट ही जरा अपनेको चानमे अक्विचन बना लो सब मिट जायेंग।

अरे भाई अपने को मन्त्रसे निराला समझो। यह समझो कि मैं अक्विचन हू, मेरा वही धुल्ल नहीं है। मैं अक्विचन हू तो आनन्दमग्न हू। यह अक्विचन भाव अच्छा है। यदि अक्विचन भाव अपनेमे न आया तो बड़ी बड़ी क्लमटें पड जावेंगी। जैसे कि लौकिक क्लमटें बहुत पड गई हो बड़ी चिंतायें हो गई हो, इसमे २० हजार रगे इसमे ५० हजार लगे, इसमे ५ हजार लेना। टोटल किया तो ७५ हजारका नुबसान आया। अरे यह नुबसान मेरा कुछ नहीं है। हो जाने दो, इससे मुझे कुछ नुबसान नहीं पहुच सकता है—इस प्रकार या यदि विचार बन जावे तो लो दुख मिट गया और यदि इसके विपरीत विचार बने तो क्लेश बढ़ते ही क्लेश जावेंगे। जैसे सट्टा खेलते हैं। मिलता जुलता उसमे कुछ नहीं। केवल कहते हैं कि इतने पैसे लगे हैं। यह खरीदा वह खरीदा। खरीदना कुछ नहीं पडा, पैस कुछ नहीं लगाने पडे सट्टा खेलने हैं। इसका फल केवल यह हुआ कि पूरे रात दिन जगे। इसी तरह इन पदार्थोंमे हमें लेना देना कुछ नहीं। इनसे अपना सम्बन्ध कर लेने न नुबसान ही है। जैसे सट्टा खेलनेका फल केवल पूरी रातका जागरण है इसी प्रकारसे परपदार्थोंसे सम्बन्ध स्थापित करना उनको अपना इष्ट, अनिष्ट मानना यह भव धोखा है, इसका फल क्लेश है, परन्तु यदि अपनेको अक्विचन मान लें तो तीन तोंके अविपति हो जावें। अरे घरमे बच्चो मे कोई चीजका भगडा हो जाय। किसी चीजके वितरणमे कोई बच्चा यह कहे कि हम यह चीज नहीं लेंगे, और हमें कुछ नहीं चाहिए। माँ बाप कहते जाते हैं कि नहीं बेटा और ले लो। बेटा नहीं कर नेता है। अब उस नहीं कर देनेके बदलेमे और और मिलता है जो शांत है, जिसने नहीं, नहीं कहा। सीधे सीधे शांतिरूपसे तो उसे और और मिलता है, अगर वह कह देता है कि हमें और चाहिए तो उसके लिए मा बाप कह देंग कि अब नहीं मिलेगा। इसी प्रकार हे आत्मन् ज्यो ज्यो परपदार्थोंसे बाहर होते जाओगे, उनके लिए यह नहोगे कि मुझे कुछ नहीं चाहिए तो पुण्य हाता जायगा और प्रितोवके अविपति हो जाओगे। ज्यो ज्यो बाह्यमे हटोगे त्यो त्यो त्रै। ह जगतके प्राणी। परपदार्थोंमे न पडो ये सब गोरखधधे हैं। अरे तुम कहाँ अपना विश्वास कर रहे हो? अरे ये सब परपदाथ तुम्हारे लिए हितकर नहीं है। कौनसी ऐसी चीज है जिसमे पूरा पड, जायगा? अरे पूरा पडने वाली कोई भी चीज नहीं है। यदि तू उनमे पडा तो तेरी दशा खराब हो जायगी। तू अपने को अक्विचन मान। ऐसा

अपने आपमें विध्वंस कर कि मैं अपने आपमें हूँ, अन्यथा नहीं हूँ, परिपूर्ण हूँ नष्ट नहीं हूँ। मैं बाहर नहीं गया हूँ—इस तरह सबकी ओर उपमा भर रहे और जिसके केवल पर्यायबुद्धि व कारण भीतरमें लगाव होता है कि मैं यह इमान हूँ, मैं अमृत हूँ, मैं अमृत चंद्र हूँ इत्यादि पर्याय बुद्धिके हाँ जानेसे मेरे ऊपर खोटे अभिप्राय बढ़ जाते हैं।

भैया ! देखो—एक अपने आपसे परिचित न होकर जिन्दगी बेकार चली जा रही है। चाहे अक्चन भावना हो, चाहे ज्ञानमात्र भावना हो प्रयोजन दोनोंका एक है। मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ, जानन एक विलक्षण भाव है जिम्का उपाय दुनियामें कहीं नहीं मिलता है किसीको स्पष्ट नहीं दीखता है, उस जाननके पट नहीं है पर नहीं है, शकल नहीं है रूप रस, गंध इत्यादि उस जाननमें नहीं हैं, ऐसा ही मैं जाननमात्र हूँ ज्ञायकमात्र हूँ, इसके प्रागे मरा लगाव नहीं है। यदि हम ऐसा अपनेको मानते हैं तो मीज है और यदि इसके विपरीत हम अपने को समझते हैं, तो हमें केश है। हम अब तो अपने घरमें रहते ही नहीं, नितने बंध की बात है ? अरे बाहर भी रहते हो तो घरमें दो चार घंटको तो घुसा ही करते हैं। अनन्तकाल व्यतीत हो गए, जाहर बाहर ही दृष्टि रही और विपदाओंके साधनोंकी ओर ही दृष्टि रही। अरे ज्ञानघन आत्माको देखो, सोने चाँदीके ढेराम क्या रखा है ? दौलतसे, धन वैभवसे तुम्हारा क्या विकास क्या उत्थान हो जायगा ? हे जगत्के प्राणी ! तू अपनेमें ही सकल्प विकल्प करके दुखी होना है। तेरी आत्मामें तो दुःखरूप है ही नहीं। वह तो आनन्द घन है, फिर तू क्यों दुखी हो रहा है ? अरे इन सकल्पविकल्पोको टाल दो ता आनन्द उत्पन्न हो जायगा।

मेरा सुधार करने वाला, मेरा बिगाड़ करने वाला मैं ही हूँ। मुझे अपनेका ज्ञान स्वरूप, जानन दमात्र निरखकर आनन्दमग्न होना चाहिए। यह प्रभु तो लो यहाँ विराजमान है, अतिनिकट क्या, यहाँ मैं हूँ। परमात्मतत्त्व कुछ अन्य वस्तु नहीं है। चेतनतत्त्व ही परमात्मा होता है। केवल यथाथ समझ लने व न समझवानेका ही सारा अंतर हो जाता है। जिन्होंने अपना यथाथस्वरूप समझा और इमो कारण द्रव्यन्द्रिय व विषयभूत वस्तुमें अपना प्रयोजन न, समझा सो तीनोंसे उपेक्षा की ओर उपेक्षा करके अपने जानस्वरूपमें रत हुए तो परमात्मतत्त्व प्रकट हो जाता है—। ऐसा ही स्वरूप मरा है। उसका ध्यान कर सबकलामें मुक्त हो जानेका उपाय कर लेना ही परमविवेक है।

दुखी भाई—ये विषय है जिनमें ससारी प्राणी अंधा हो जाता है, विषय भी अंधकर है। विषय तो एक ही भवमें प्राणका हरण करता है परन्तु विषयोकी आसक्ति भव भवन मूल प्राण चतन्य प्राणका हरण करता है अर्थात् ज्ञानदर्शनका विकास नहीं होने देता। ससारीके विभिन्न तियञ्चोको ता देखो, ये तो दखनमें आ ही रहे हैं—हाथी हथिनाने *हथिनाने* जगलमें बनावटा हथिनोके समीप *दौडकर जाता है और उस स्थलपर*



जाना है दुखी होता है और पराधीन हो जाता है। मछलियोंको तो देखो जरासे मांसखण्डके खानके लोलुपी होकर धीमरके जानमे फन जाती है। धीमर लोग फिर उनको पकड़कर अलग रख देते हैं वे मर जाती हैं या कहीं कहीं तो वे धीमर मछलियोंको जिन्दा ही आगमे भून डालते हैं। अमर गधके वशीभूत होकर पुष्पके भीतर ही निश्चाम हो जाते हैं। पतंगे तो रोगनीमे ज्वालापर पडकर मर जाया करते हैं, यह तो प्राय देखते ही रहते होंगे। साँप हिरण्य आदि शब्दके विषयमे मस्त होकर पकड़ लिये जाने है सपेर व शिकारिया द्वारा। जब इन जीवोंकी एक एक इन्द्रियके विषयके वशम हो ऐसी दुःखति हो जाती है तो हाय यह मनुष्य कीट जो पाँच इन्द्रियोंके विषयोंका दास है, इसका क्या हाल होगा ?

अतर्भया ! पुण्यके उदयसे पाया तो सब कुञ्ज समागम है, परन्तु उसके भोगनेसे पहिले कुछ विवेकका भी आदर कर लो अथवा पछतावा करना ही हाथ रहेगा। विषयोंको विषयकी तरह अहितकारी समझकर और विषयोंके साधनभूत शरीरको आत्मासे पृथक् मानकर उन सबमे उपेक्षा करना—यह भाव ही धममाग है। ये विषयभोग ससारमे परिभ्रमण कराते हैं, जन्म परम्परा बढ़ाते हैं। तब कतव्य क्या है कि इन विषयोंको छोड़कर और उन विषयोंके साधनभूत शरीर है सो इन शरीरको भी आत्मासे पृथक् देखकर सबसे उपेक्षा कर दो। मैं अपने आपमे उपयोगी होऊँ।

इन्द्रिय विषयोंको जीतनेके लिए मुख्य उपाय ज्ञान ही है। घर छोड़ दें अथवा घमके नामपर किसीकी उपासना कर लें, बड़े बड़े काय कर लें, य सब ठीक है, परन्तु निर्विषय आत्मतत्त्वका दशन जब तक नहीं तब तब इन्द्रियों। विजय नहीं। इन्द्रियविजय बिना मोक्षमाग नहीं। इन्द्रिय विषयोंको जीतनेके लिए हमें क्या उपयोग बनाना है ? इस सम्बन्धमे समयसार मे श्रीप्रभुतचदजी सूरि जो कहते हैं कि विषय भोगका सम्बन्ध तीनों बातोंमे हुआ करता है—  
१—द्रव्यइन्द्रिय, २—भावइन्द्रिय और ३—विषयभूत पदार्थ। विषयभोगका सम्बन्ध इनका रहा करता है। द्रव्यइन्द्रियके निमित्तसे उनके विषयभूत इन्द्रियोंमे ज्ञान करके उनमे ही रम गया। इस तरहसे भोग भोगनेके लिए तीनसे वास्ता पडता है—द्रव्यइन्द्रिय, इन्द्रिय और विषयभूत पदार्थ। द्रव्यइन्द्रिय तो शरीरमे दिखने वाले ये हैं। द्रव्यइन्द्रियके निमित्तसे ज्ञान द्वारा जानकारी होती है, वह जानकारी भावेन्द्रिय है और विषयभूत पदार्थ, ये जगतके सत्र पुद्गल पदार्थ हैं, जो विषय पाँच प्रकारके होते हैं। स्पश तो स्पशानका विषय है, रस रसनाका विषय है, गन्ध घ्राण का विषय है, रूप चक्षुःशरीर और शब्द श्रोत्रका विषय है। चक्षुइन्द्रिय और रसनाइन्द्रिय तो दुनियामे कमाल कर रहे हैं, हम इन इन्द्रियोंके प्रति कसा ज्ञान बनावें कि विषयोंसे हटकर अपने स्वभावमे लग जावें। कहते हैं कि इन्द्रिय क्या है ? पुद्गल हैं, जानने वाली नहीं हैं, क्योंकि यह मैं आत्मा आत्मा हूँ, चतस्यस्वरूप हूँ। जो जानता हूँ, ज्ञानमय तत्त्व हूँ। मैं सबस

निराला हूँ। मुझमें और इन पौद्गलिक इंद्रियोंमें कितना अंतर है? यह इंद्रियाँ तो मैं हूँ ही नहीं, य तो मेरसे भिन्न हैं। मिथ्या ज्ञान करके ही हम इन इंद्रियोंके वशीभूत हो जाते हैं और इन इंद्रियोंके वशीभूत होकर दुःख उठाते हैं।

इस द्रव्य इंद्रियोंके द्वारा भोगमायन विषय हो जाते हैं, क्लेश हो जाते हैं। ता हमें इनका विजय करनेके लिये इनकी उपशान्त करनी चाहिए। योग कहते हैं कि भली मार कर तारकी दिलसे दिया उतार। अरे इन इंद्रियोंके जिनना हमें क्या दिया है, अ यने नहीं दिया है। जैसे किन्हीं परिवारमें प्रधान पुरुष तथा स्त्री पुरुष कुछ अनवन हो जाय। प्रधान पुरुष उन अवीनस्वयंसे उपशान्त कर जाये, अलग रहें, उनसे बोलना ही छोड़ दे, स्त्रीको दुःख होगा और बहेगी कि बड़ी मार करतारकी दिलसे दिया उतार। वह सोचती है अर पतिदेव हमसे बिनाग क्यों हो गए हैं? इसमें अच्छा तो यह भी था दो चार दिन खाना न दत्त, मार दते, परंतु हम दिलसे क्यों उत्तर दिया है? हममें वह स्नेह क्या नहीं करते हैं, हमसे बोलते नहीं। हैं, और हमारी ओर निगाह भी नहीं डालते हैं। अर ऐसा ही इन इंद्रियोंको दंड दंड इंद्रियोंको विजय करनेके लिये क्या जीभ काट डालो, नाक काट डालो, आँखें फोड़ दो। नहीं, इंद्रियविजयका उपाय है उपेक्षा। किसी दूसरकी ओर मुड़कर भी न देखो। अरे यह तो जग है, इसमें तू बिनाग है, तू तो एक चैतन्य पदार्थ है। तू इंद्रियोंमें क्यों फसा हुआ है? और इन इंद्रियोंके वशीभूत कर तरा पान दब रहा है। इन इंद्रियोंके कारण ही तो स्पष्ट बात भी समझमें नहीं आती है। अर तू तो अपने आपको सोच कि मैं इंद्रियोंमें अपना सम्बन्ध नहीं रखता। मेरी तो इंद्रियोंकी ओर ज्ञानदृष्टि भी नहीं जाती। तू अपनेको जान कि मैं आत्मा स्वतंत्र हूँ। यदि तू अपने को इस प्रकारका बना ल तो यही हुआ इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करना। इन इंद्रियोंके द्वारा ही नाना कषाय बढ़ते हैं। इंद्रियोंके निमित्तमें जो पान होता है उसे कहते हैं भावइंद्रिय। इंद्रियोंके प्रति हमारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान है परावीन ज्ञान है कि तू मैं आत्मा तो अपूर्ण नहीं हूँ यह आत्मा तो पूर्ण ज्ञान मय है। इंद्रियोंके द्वारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान होता है। अर परस्पर इन दोनों ज्ञानोंमें अंतर है। मैं अपूर्ण ज्ञान नहीं हूँ। मैं तो अपनेका इंद्रियज्ञानसे भिन्न महज पानमय रखता हूँ क्योंकि वह तो अपूर्ण ज्ञान है। मुझे तो चाहिए कि इन इंद्रियोंके खण्ड खण्ड ज्ञान में मैं पृथक् अखण्डज्ञानमय आपको अनुभूत, इंद्रियज्ञानसे बिलग हूँ।

रसनाइंद्रियोंको तो देखो इसका विषय भावइंद्रिय ज्ञानके द्वारा ही ज्ञान पाया है। कौड़ अघेरमें बड़ा हुआ आम चूम रहा है। उसको पता नहीं कि आम कलमी है कि दशहरी है कि देशी है, केवल उस आमके रसको जब जिह्वामें रखता है तब उसे आमका पता चलता है कि आम है। फिर भी उसे आमके रूपका पता नहीं चलता है। उसे यह पता नहीं कि आम

किस रगका है, किम रूपका है ? देखो यह अपूर्ण ज्ञान हुआ था । आत्मके विषयमें पूर्ण ज्ञान-वागी नहीं हो पाई । यह ही देखो इन्द्रियज्ञान है ।

भाई अपनेको इन इंद्रियोंके उपयोगसे हटाओ । ये बाह्यपदार्थ जड है सग हैं परिग्रह है, पर यह मैं आत्मा चैतन्यस्वरूप हूँ, केवल हूँ, असग हूँ, जिन्हीं अन्यपदार्थोंमें मेरा सम्बन्ध नहीं है । व सब स्वरूप अपनी अपनी सत्तामात्रमें है, मैं अपनी सत्तामात्र हूँ—ऐसा भेद करके उन बाह्यपदार्थोंमें अपना सम्बन्ध न स्थापित करो, उनमें दृष्टि न डालो । केवल अपने आपको निरखो । अरे अपनी इन विषयोंको जीतनेका क्या कोई और उपाय है ? इन्हें कुर्वें डाल दो अथवा इन्हें तोड़ फोड़ दो । अरे इन इंद्रियोंको बर्बाद कर दो, बान बतार दो, आँखें फोड़ दो । विषयोंमें विजय प्राप्त करने का क्या यही उपाय है ? अरे इन इंद्रियोंका बहिष्कार कर दो, दिलमें उतार दो । इसी प्रकारसे विषयोंको तिनमें उतार दो, मोहको भुला दो । अरे ये सब भिन्न भिन्न रूपोंमें जन्ममरणके चक्रमें डालने वाले हैं, इन विषयवपायोंको त्याग दो । इन विषयोंके सारभूत शरीरोंको अपने स्वरूपसे पृथक् देखो और अपने को ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो और अपनेमें अपने लिए अपने आप मुखी होवो । इस जगत्में जितने भी तौग पराधीन बने रहते हैं वे विषयोंके कारण ही पराधीन बन रहते हैं । अरे अपने विषयों को दूर करो । जो पराधीनता है, वह विषयोंमें ही है । इसलिये विषयोंसे छुटकारा प्राप्त करो । कोई किमीमें बधा है क्या ? अरे कोट किमीमें पैदा हुआ नहीं है । केवल खुद ही में कल्पाएँ करके विकल्प बना लिया है । विकल्प बन जानेमें मोह हो गया है और मोहमें आरंभ ही वह परसे बंध गया है ।

मुकुंशल राजकुमार अपनी कुमार अवस्थामें विरक्त हो गया । वह घर छोड़कर चल दिया । देखो राजकुमारकी अवस्था छोटी थी । अपनी माँ व माँआज्य सुखसे विलग हो गए थे । देखो मन्त्रीजनोंने उन्हें बहुत समझाया, अथ लोगोंने भी बहुत समझाया, पर वह न माने । उन्हें ज्ञान हो गया था, वे अपनी आत्मामें ही लीन होना चाहत थे । तब फिर उनका रोझने वाला कौन था ? उनमें यथाथज्ञान हो गया था तब फिर दूसराका असर उनके ऊपर किम प्रकारसे हो सकता था ? मन्त्रियोंने राजकुमारको बहुत समझाया कि आपकी स्त्रीके गभ है, बच्चा तो हो जाने दो, फिर बादमें चाह चले जाना । बेटा उस बच्चेको राजतिलक दिए जावो । दुनियाको यह बतता जावो कि मैं अपने बच्चेको राजतिलक दे रहा हूँ । इसलिए ठ महाराज ! अभी इतना जल्दी न जावो । दो तीन माह बाद चाहें चले जाना । राजकुमार मुकुंशल कहते हैं कि अच्छा गभमें जो सतान है उसे मैं तिलक किण देता हूँ । जो गभमें सतान है उसे मैं राजा बनाए देता हूँ । ऐसा कहकर कौशल राजकुमार विरक्त हो गए । ज्ञान ही सुख, आनंद व शांति देता है और यदि ज्ञान नहीं है तो आजीवन वलेश है । अत

मैं अपनी विषय वपायाको त्यागकर अपनेमें ज्ञान उत्पन्न करूँ और अपने प्रायक ज्ञानस आनन्द तू और मारे सकल्पोमें मुक्त होऊँ। शान्तिके मागमें बढतके निय सबसे पहिला कदम ह इन्द्रियविजय अर्थात् इन्द्रियोके विषयोपर विजय प्राप्त करना। यह इस उपायमें मभय है। इन विषयोसे पृथक्, विषयोके ग्रहणके माधनभूत द्रव्येन्द्रियमें पृथक् और विषयग्रहण विवल्परूप भायेन्द्रियमें पृथक् जानमात्र अपने आत्मतत्त्वका मनेनन करूँ। हमके लिय हम सीधा इतना ही करें कि विषयके निमित्तको दूर करें और विषयके कारणभूत इस शरीरको आत्मासे अलग समझें। फिर इन विवल्पोके दूर होनेपर आत्माम परमविश्राम होगा, जिससे शान्तिके स्वरूप और शान्तिके मागका साक्षात्कार होगा। सुख इस ही स्वरूपमें है। अथर्व विषयोमें सुख योजना महामूर्द्धता है।

जो आत्मा हो उसको तो ही करना और जा आत्मामे नहीं है उसे ना करना। आत्मामे जान है सो ज्ञानकी ही करना और आत्मामे बण नहा, दश गही, जानि नहीं शरीर गही कम नहीं तो उसको ना करना। ना को हा कर द गौर हा को ना करद उसीका नाम मिथ्यात्व है। आत्मामे ज्ञान है, पर उसे ना कहने वाले बहुत हैं। कुछ दार्शनिक भी ऐसे हैं जो आत्माका स्वरूप जान नहीं माने। बहुत बहुत वाले हैं। यहा तीन मनेना जान स्वरूप मानना है ? अरे विगुड व्यवस्था नहीं है ता मैं हू क्या ? जमा ही जिसने वह दिया क्या ही माया गया और बहकाए यह तो हाल है सस्कार परिणामोमें जसा जिसने सभसा दिया, जैसा जिनका जैसा मग मिल गया तैसा ही असर बना लिया। ऐसाकी सख्या ज्यादा है जिनको हा का पना नहीं है और जिनको ना ना ही का भूत लगा है। उनको तो चचा ही नहीं है यहाँ। और भीतर दशन शास्त्रमें चल तो जानना निषेध करने वाले बहुत हैं। कोई दार्शनिक ज्ञानको आत्माका स्वरूप नहीं मानत, क्याकि जानका स्वभाव आत्मासे नहीं मानत। ज्ञानके सम्बन्धसे आत्मा जानी है, आत्माका स्वरूप ज्ञान नहीं है एसा मानत हैं। और इगा तरह और और भी ह। आत्मामे रूप है क्या कि आत्मा हरो है कि काली है कि सफेद है, कुछ भी नहा, किन्तु माही मानता है कि यह गोरा है, यह काला है, यह नफे है। मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ, मैं गहूँ रगका हूँ। अर यह आत्मा मनेर रूप नहीं है। आत्माम बण है क्या, जातिया है क्या ? अरे आत्माम जातिया नहीं। आत्माम बण नहीं, वह तो चत यस्वरूप, चतनात्मा प्रभु मरीखी एक वस्तु है। वह आत्मा है, मरो जाति नही। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य, शूद्र, इत्यादि कोई जाति आत्मामे नहीं है। विकार और अविकार नावाकी ता जान ठीक है कि मरी इस आत्माम तो विकार है या अधिन विकार नहीं है। वह तो निविकार है, निविकल्प है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानधन स्वरूप है। विकाराका हाना आत्मामे काम नहीं है। वह तो चतयपदाथ है। यद्यपि कगीब करीब परिणामाके अनुकूल ना जातिया में विभाग है अर्थात् जितने प्रकारके परिणाम हा। उननी ही जातिया होगी। परन्तु

जैसा मैं हूँ वैसे ही हूँ । मेरे अस्तित्वमें कोई जाति नहीं । जैसे आज मैं हिन्दुस्तानमें हूँ और हिन्दुस्तानी कूलाता हूँ और अगर मरकर और इगनण्डमें जाकर किसी अन्य योनिमें जन्म लेऊँ तो अगरेज बन जाऊँ और कहूँ कि मेरा दश इगनण्ड है । इस तरहसे मेरे स्वरूपमें कोई जातिया नहीं । जब तक जिंदा हूँ तब तक तो हिन्दुस्तानी हूँ, अगरेज हूँ, फला हूँ इत्यादि विकल्पोंकी बातें रहती हैं, पर ज्यों ही मृत्यु हो जाती है उसका विकल्प कहा जाता है ? देश का बान देखो, देशके परमाणुकी जात देशमें है, मेरा देश नहीं, मेरे विग्रह नहीं । मुख दुखवा अनुभव तो चैतन्य प्रदेशमें होना है शरीरमें मुख दुखवा अनुभव नहीं होना है । ज्ञान, शिक्षा की बात चैतन्य प्रदेशमें होनी है शरीरादिमें नहीं होती । मेरे विग्रह नहीं, शरीर भी नहीं । मैं इनका नहीं और ये मेरे नहीं । मैं तो केवल एक जानमात्र हूँ—ऐसी भावना पानी जीबके होती है ।

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्न सकरेपी च सकर ।

तत्त्वतः सवतः प्रत्यक् स्यात्स्वप्नं स्वमुखी स्वयम् ॥

हे आत्मन् ! तूमें जगतमें न्यारा बनना है या जगतसे भिन्ना (मिला) हुआ रहना है—पहले इसका निणय कर । जगतमें न्यारा रहनेकी स्थिति कमी होगी तो देखो बड़ा न कुटुम्ब है, न समागम है, न शरीर है, न कम है न क्रोध है, न मान है, न माया है, न मोह है, न कपाय है, न इच्छा है, न न्याकुलता है, न आकुलता है, केवल जाननमात्र निराकुल, शांत मामान्य स्वरूप तेरी स्थिति होगी । यदि जगतसे मिला हुआ रहना है तो उसमें स्थिति कैसे होगी ? कुटुम्ब परिवार, मित्रजन, समागम, प्रशमा, निन्दा, कभी बड़ा बन जाय, कभी छोटा बन जाय और फिर मरकर मनुष्य हो जाता है और यदि मनुष्य न हो पाया तो कहीं नारकी हो जाय, कहीं तियच हो जाय, कहीं कुछ हो जाय, कहीं निगोद हो जाय, कौड़ा-मकौड़ा बन जाय, उसका कोई भरोसा नहीं कि वह क्या न बन जाये ? निम्न शरीर मिला तो कुछ सोचने ममझनेकी शक्ति भी नहीं मिलती है । जगतमें मिला हुआ रहने पर देखो भाई ऐसा हो जाता है । अब तो निणय कर लो कि इस समारसे न्यारा रहना है या समारसे मिलकर रहना है ? यदि तूमें जगतमें भिन्न रहना है तो अपनेको जगतसे भिन्न देख और यदि जगतसे अपनेको मिला हुआ रहना है तो अपनेको जगतसे मिला हुआ देख । यदि जगतमें मिला हुआ रहना है तो उस मकर कहने हैं । तो तू अपनेको जगतसे भिन्न रहनेका प्रयत्न कर और जगतमें भिन्न रहनेका एक सरल उपाय यही है कि तू अपनेको जगतसे भिन्न देख । जो अपनेको जगतमें भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है और जो अपनेको सकर याने जगतमें मिला हुआ मानता है वह सब अर्थात् जगतसे मिला हुआ रहता है ।

भाई कल्याणका बड़ा सरल उपाय है । केवल अंतरमें अपने आपको मानना है कि

मैं ज्ञानमात्र हूँ, निमल हूँ, जगतमें सबसे निराला हूँ। भाई अपने आपमें ऐसी दृष्टि बनाता कुछ कठिन है क्या ? अरु यह तो अत्यन्त सरल है, मगर अंतरंग मयम चाहिए। अपनी अंतर आत्माओं मयत कर सको, ऐसा ज्ञान चाहिए। देखो तू कमाने वाला है क्या ? हज़ारों रुपया का मुनाफा मिलता है तो वह तेरी करतूत है क्या ? कभी कभी बड़े बड़े मठ लागाना देखा होगा कि उनके पास लाखों रुपयोकी संपत्ति होती है, वे दूसरोको क्षमा कर रत हैं। बतलावो कि उनके पास संपत्ति कैसे आ जाती है ? अरे वे पहिले वे शुद्ध मागके प्रेमी थे व अब धमका काय करत है, दान करत हैं तो उनके पाम करोडोका धन आ जाता है, उह परिश्रम नही करना पडता है। और दूसर वे लोग जो दूसरोको गाली दत है अघमका काय करतें हैं वे लोग बडा परिश्रम करतें है, फिर भी सम्पत्ति हाथमें नही आती है। धनका आना पुण्योदय पर निर्भर है। उन द्यवितयोको देखा होगा कि वे अचानक ही अपने धार्मिक सत्सगके पास चले जाते हैं, अपने घर द्वार की झिंक्र नही करतें हैं, फिर भी उनको करोडो रुपयाकी आय हो जाती है। अरु अगरे हम दुकानपर बैठे ही रहे तो क्या इतनेसे कमाई हो जायगी, नही होगी। कमाई तो पुण्यमें होती है। अपना कर्तव्य समझकर अथ पुरुषार्थका उचित समय पर काय करें और पुण्यका काय करें, धमका काय कर तो कमाधी हाती है। और बतमानम नी पुण्यधममें चलते है तो लम्बे समय तक सात्ति साथ रहती है। लक्ष्मीके चि तनमें अपने को अधिक् फसानेकी आवश्यकता नही है। गृहस्थको तो यह दखनकी आवश्यकता है कि मेरे भाग्यसे जितना आता है उसके भीतर ही हम अपना गुजारा बनाए। जैसा गुजारा बन सके वसा बनावें। लोग इज्जत करतें है तो इज्जत कर के लिए उनके पास पाजीशन चाहिए। और यदि पोजीशन नही मिलती है तो बान नही बनती है। लोग दूसराकी इज्जत रखनेके लिए, दखनेके लिए, समझानेके लिए प्रयत्न करतें है परंतु उनकी इज्जत नही रहगी इत्यादि प्रयोजन रखना अविद्वक है। जिस विसी प्रकारमें यदि धन वभव आता है उसपर यह विश्वास करना चाहिए कि भाग्यसे ही प्राप्त होता है। अरु जो कुछ भाग्यवशा प्राप्त हो जाव उम पर ही गुजारा करना चाहिए। बस इस तरहसे जो रहें और अपने आत्मकृत्य ए की अरु ध्यान रखे तो ब२ मजेमें रहेगा। हम कुछ दिनके लिए यहाँ हैं, सदा नही रहेगे। अचानक ही विसी दिन यहाँसे चले जाएगे।

यहाँके लोगोको क्या अपना मानें। अपना पूरा कैसे पडे तथा आनंद कम अपनेम भर ? इसकी किंन्तु तू करे तो तरा भला होगा। यदि तू अपनेको जगसे दारा रखे, शरीर से कपायोमें दारा रखे और वैवलज्ञान और आनंदको ही तू प्राप्त करनेकी दृष्टि रखे तो तरा भला होगा। अरु दूसरोसे मुहब्बत जोड जोडकर तू बच तक गुजारा करेगा ? यदि तूने इस प्रकारसे अपना गुजारा भी किया तो यह मोह है। किन्तु लुटोरा सचाडो को तू अपना

माग रहा है ? वे अपने नहीं है । अरे दखो मोहवा माहात्म्य कि जिनसे मोह होता है वे निवृष्ट भी है तो भी अच्छे लगते है, उनमें कुछ ज्ञान नहीं है उनमें दुगुण है, वे सब स्वार्थी है, खुदगर्जी है, उनमें अपना कल्याण नहीं है, फिर भी उतने मोह है, आकुलताए है । उनको आकुलित होना निश्चित है जिनकी दृष्टि परमे ही होती है । उनमें तेरा क्या पूरा पडेगा ? अरे उन लतोडो खचोडोमें अपना सम्बन्ध न स्थापित करो । उनसे तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा । तुम्हें ससारी ही रहना है तो तू ससारी ही अपनेको देव । यदि तू सकारको चाहता है तो बाह्य पदार्थोंमें ही तू अपनी रचि बना । तू अपनेको बाह्य पदार्थोंमें मिला-जुलाकर रख । यही तेरा ससारी बननका मुख्य है । और भाई अगर अपनेका जगतसे न्यारा रखना है तो तू अपनेको जगतसे न्याग निरख । आनन्द तो तेरेमें ही है । तुम्हें आनन्द कही बाहरसे नहीं लाना है । तू अपनेका यह समझ कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, इसके आगे मैं कुछ नहीं हूँ । इस ज्ञानमें ही सब कुछ आ गया । तू जगतके अर्थ प्राणियोंसे भिन्न हो जायगा । मैं कोई ऐसी चीज मृट्टीमें ले लूँ और मृट्टी बंद करके कहूँ कि इसमें क्या है ? इस बातको मैं फिर बताऊँगा कि इसमें क्या है ? मैं पूछूँ कि मेरी मृट्टीमें क्या है ? मैं ही उत्तर देता हूँ कि मेरी मृट्टीमें सब कुछ है । चौकी है, ताला है, चाभी है, बाट्टी है इत्यादि । लोग यदि कहें कि दिखलाओ तो मैं दिखलाऊँगा । हाथमें बौनसी चीज निकली ? स्याहीकी टिकिया । अरे उस स्याहीकी टिकिया में ही सब कुछ है । क्या है ? अरे बिल्डिंग है, बान्टी है, समुद्र है चौकी है, सब कुछ है । उस स्याहीकी टिकियाको पानीमें घोल लिया, फिर उस स्याहीमें बिल्डिंग बना लिया, बाट्टी बना लिया, समुद्र बना लिया इत्यादि । यह देखो एक स्याहीकी टिकियामें ही तीन लोककी रचना कर दी । बताओ ये सब कहाँसे आए ? अरे ये सब हाथमें ही आए । अतः मेरे हाथमें वह चीज है कि इसमें सब कुछ है । यह एक विनादकी बात है । मेरे हाथमें सब कुछ है । यहाँ प्रकृत बातपर आइये । मेरेमें क्या है ? मेरेमें सब कुछ है । मेरेमें ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है । ज्ञानका कलामें ही तो देखो यहाँ राग है, मोह है, शोक है, ज्ञानका अघेरा है, ज्ञानका उजेला है । ये सब ज्ञानके ऊपर ही निभर है । ज्ञानमें ही विपदा है, ज्ञानसे ही सपदा है, सब कुछ ज्ञानपर निभर है । बड़ी बड़ी विपदाओंके सामने यदि ज्ञानसे काम लें तो विपदाएँ दूर हो सकती हैं । ज्ञानके बिना आगुनताएँ, व्याकुलताएँ दूर नहीं होती हैं ।

भैया ! कल्पनाएँ करके ही विपदा बना ली जाती है । दखो एक नौजवान लडका है ।

कोई अभो-अभो चार छे बप शादीके हुए हैं । दोनोंमें परस्पर प्रीति है । एक दूसरेका जीवन आनन्दसे व्यतीत हो रहा है यानी दोनों ही एक दूसरेके इष्ट बन रहे हैं । और स्त्री यदि किसी कारणसे गुजर जाता है तो स्त्रीके पीछे उस पुरुषको कितना क्लेश होगा ? वह पुरुष यह समझ लेगा कि हाय मेरे लिए सब कोई गर गये । इस प्रकारसे वह व्यक्ति २४ घंटे दुःखी

हाता रहता है। और यदि वह व्यक्ति अपना ज्ञान बनाये कि अथवा उस व्यक्ति का ज्ञान जग जाय कि अरु यह मेरे स्त्री, पुत्र वर्ग मेरे वही कुछ नहीं है, यह सब माया है, य सत्र अलग अलग अपना अस्तित्व लिए हुए है, उनमे मेरा परमाणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं है— ऐसा यदि यथाथ ज्ञान जग जाय तो उसकी विपदाएँ समाप्त हो जावें। बाकी अथ उपायोने विपदाएँ स्वतन्त्र नहीं हो सकनी हैं। चाह इसकी शादीरी बात चलने लगे, धन-दौलत मिल जाय, जेवर गहना मिल जाय, मागी चीजें मिल जायें, मगर जो इष्ट उसके दिलमे बस गया है उसकी कल्पना उसे दुःख दती रहती है। उसका केवल ज्ञान जग जाय तो य सारी विपदाएँ समाप्त हो जावेंगी। रोगमारमे भी ऐसा ही होना है। कोई समय ऐसा आवे कि चारो तरफ से नुकसान हो जावे। चारो तरफसे नुकसान होनेपर उस व्यापारीको दुःख हो जाता है। हाय मैंने किानी कमाई की? सत्र खना गया, नुस्सा हा गया। अरु व्याकुल हो जानेसे क्या धन वापस लोट आता है? क्या उस नुकसान हा जाने वाले धनको कोई वापस कर जायगा? अरु कोई धन वापस नहीं द जायगा। उल्ट जोग तो उसे खूटनी और सोचेंगे। दुःख दूर होनेका उपाय तो यज्ञ भी ज्ञान है। ज्ञानमे जब जाता कि वह सब तो भिन्न चीज है, तू उस धनकी चिन्ता न कर। अरु तुम्हें कोई शरण नहीं मिलेगी। तू परपदाधमे शोक मत कर, व्यथमे मत घबडा। तेरे शोक करनेमे तुम्हें लाभ नहीं मिलगा। अरे तुम्हें केवल तेरे ज्ञानसे लाभ मिल सकता है। ज्ञानको छोड़कर अथ किमीसे कुछ लाभ नहीं प्राप्त हा सकता है। अरु मुझे पार कौन कर देगा? जिस भगवानकी हम उपासना करते हैं। क्या वह हमे पार कर देगा? भगवानकी उपासना करके अपने स्वरूपको पहिचाने अपने आपके स्वरूपको निमल बनावें तो यह भगवान हमे पार कर देगा और हम पार हो जावेंगे। मुझे पार करने वाला कोई नहीं है। कोई मुझे मुझी कर देगा। अरु मुझे सुखी कर दन वाला कोई नहीं है। जसे मा-वाप बेटको सतोष देते है कि बेटा तू तो राजा है। राजा वही पाप करता है। देखो यहाँ यथाथ बात है। हमारे आचार्योंने हम जोगको करणा करके एसा समझाया है कि तू तो पवित्र ज्ञानमात्र है तेरेमे तो कोई क्लेश हैं ही नहीं, तू तो सर्वोत्कृष्ट है। अरे तू दुःखी क्यों हो रहा है? अरे इन बाहरी पदार्थोंमे जिनमे तू दृष्टि डालता है वे सब असार हैं अहित करने वाले भिन्न हैं। इसलिए जब कभी भी परमे दृष्टि होगी तब क्लेश हागे। वे परपदाध तेरे लिए शानिके कारण नहीं हागे। अरे तू उावे लिए क्यों मरता है? क्यों अपनेका दर बाद करता है? अरु अा स्वरूपको तो देखो। तू तो परमाधस्वरूप है। तू अपने आपको देख तो तू प्रभु हो जायगा।

भया! बनलाओ कि अपने आपको जगतमे सब पदार्थोंसे निराला मान लेाये क्या चिगाइ हो जायगा? हे जगतके प्राणी! तू अपनेको मत्रसे निराला मान ले तो तेरे समस्त दुःख



समाप्त हो जावेंगे। और तू ठीक ठीक ज्ञान कर ले तो मारे दुःख दूर हो जावेंगे और यदि इसके विपरीत तूने अपनेमे गान न किया, भीतरमे ज्ञानका अंधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश रहग और तू जगजालमे फँसा रहगा। तू अपनेको निमग्न देव, अपनेमे ज्ञान उत्पन्न करे तो तुझे जीवनभर मुख प्राप्त होगा। यदि तू अपने ज्ञानस्वरूपको न सभाल सका, अपने आपको निमग्न न समझ सका तो आजीवन जगजालमे फसे रहगा। भगवानकी वाणी एक, श्राव घट पढ़ लिया, मुत्र लिया और बाकी समय मोहियावे सगमे रहते है तो फिर वही सोचें अपनेको कैसे सभाला जाय ? और उनको तो वह मोही प्राणी ही रहते है उनके लिए वही सब कुछ हैं। भयानक विपत्तिया जिनमे सामने है उनको ही वे मोही प्राणी दौडन हैं और जिनमे कुछ हित होगा, जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नहीं है। जो अपनेको शुद्ध, आत्मतत्त्व रूप दखेगा वह शुद्ध बन जायगा और जो अपनेको अशुद्ध देखेगा वह अशुद्ध बन जायगा। मैं मनुष्य हूँ, मैं अमुक चंद हूँ, मैं फल हूँ—ऐसी दृष्टि अगर बन गई तो क्रोध, मान, माया इत्यादि बढ ही जावेंगे और अहंकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकार से मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। और यदि अपनेमे ऐसी भावना बन जाय कि मैं ज्ञानमात्र, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप वस्तु हूँ तो मैं शुद्ध बन जाऊँगा। हे आत्मन् ! तेरे ऊपर कूडा लदा है। तू इस कूडेकी फिर मत कर। तू अपनेमे विद्यमान ज्ञानके उजैलेको सभाल, बस यही एक फिक्र कर। तू अपनेको देय कि मैं सबसे निराना, ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानमय हूँ। तू अपनेको यदि ज्ञानमय देखे तो तेरे मारे बनेश, सारी विपदाएँ, मारा कूडा खत्म हो जायगा। तू अर्थकी चिंता न कर। तू तो केवल अपने भीतरको शुद्ध दयनेकी फिक्र कर। जो अपनेको शुद्ध दयता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपनेको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है।

भया, वृहत्तमी चीजें मिल जाएँ, फिर भी किसी जीवमे किसी दूसरी चीजका प्रवेश नहीं। एक बोरेमे गेहूँ, चना, मटर इत्यादि मिल गए हैं, फिर भी सब न्यारेके न्यारे है। समुदायको देखकर कहते हैं कि मिल गए है, परके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे ही हैं। और भी चीजें देखें जमे कि दूध और पानी मिल गया तो समुदायमे कहत हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। अब भी दूधमे पानी नहीं मित्रा और न दूधमे पानी मिलेगा। सब न्यारा न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरमे न्यारा नहीं रखा है, क्योंकि यदि हम चाह कि शरीर तो यही रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुच जाय तो आत्मा नहीं पहुच सकता। तो भी शरीरमे शरीर है और आत्मामे आत्मा है। केवल बिबेक यत्र चाहिए। पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानी को अलग अलग करनेका यत्र होता है। यत्रके द्वारा ही दूध और पानीको समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुए शरीर और आत्माको समझना यत्र चाहिए। वह यत्र है—प्रज्ञा

स्वल्पकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि । इन्द्रिय सयम कर लो । इहीसे तो बरबादी होती है, इसको तू सयत कर । और अपनी आत्मामे चला जा, तू अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कर कि इस शरीरका ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोका ध्यान न रह ता अनुपम सुख प्राप्त होगा । तू इन्द्रियोको नि सवोच उपयोगसे त्याग द । किसी भी इन्द्रियका रच भी क्याल न रहे । तो तुझे स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा कि जो केवलज्ञानका बतन है । अरे वही तो तेरा स्वरूप है । तू अपने स्वरूपको पहिचान ले ता तू प्रभु हो मवता है, तू जगतसे भिन हो सकता है । जिहोने जगतसे भिन अपनेको देखा है वह जगतमे भिन होकर भिन ही चलता रहेगा । और जो अपनेको मिला हुआ देखता है, मैं अमुक हू, म साधु हू मैं ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घरमे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगतसे मिला हुआ हो चलता रहेगा और आजीवन उसको बलेश ही रहेगे । जो व्यक्ति अपनेको सबसे मिला हुआ समझता है वह सबसे बोलता चालता है, देखता है, सुनता है, सबसे मिचता है, सबसे सावधानीसे मिलता है, पर आत्मकल्याणकी फिक्र उसकी नहीं रहती है । इसी कारण वे जीवनभर दुखी रहते हैं । अगर भीतरके सत्मे स्वय निरखें कि मैं तो सबसे निराला, केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हू । तो हमारे यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपदाओंके कर्मोंके पहाडोंके पहाडोंको जला सकती है । है एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि मारे पहाडोंको भस्म कर सकती है । यदि इतनी अपनी बातको छोडकर चलाग तो जगतमे रुलना पडेगा । और यदि इतनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतमे सबसे निगला, ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्तिको लिए हुए हू तो हे प्रियतम ! तू प्रभु बन जायगा ।

देखो एक शब्दकी बात—पतिके वितने नाम हैं, प्रीतम बोलते हैं, खमम बोलते है, बालम बोलते हैं, संया बोलते हैं पिया भी बोलत है, मगर ये सब क्या है ? ये सब आत्माके नाम हैं । जो पतिके नाम रख दिये हैं वे सब आत्माके नाम है । पिया वह कहलाता है जो प्रिय है । मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है ? अरे तुम्हारा प्रिय तुम्ही हो । अगर कोई जानपर आप्त भा जाय तो यदि हाथमे लडका हो तो अपनी जान बचानेके लिए लडका भा फेंक दिया जावेगा । लडकेकी फिक्र नहीं रहेगी । लडकेका पता नहीं क्या होगा, परन्तु उसको भी फेंक दोगे । इसलिए तेरा पिया दूसरा नहीं है, तेरी अपनी आत्मा ही अपना पिया है, दूसरा नहीं है । प्रीतम शब्द बना है प्रियतमसे । जो ज्यादा प्रिय है । जैसे गुड, बटर, वन्ट रूप बनते हैं तारतम्यमे वैसे ही प्रीतम, प्रिय, प्रियतर, प्रियतममे है । प्रियतम शब्द के माने हैं जो श्रेयस्व प्रिय हो । तेरा प्रीतम कौन है ? तेरा प्रीतम तेरी आत्मा है । आत्मा तो छोडकर अन्य कोई तेरा अधिक प्रिय नहीं है । वितने धमके खातिर सब कुछ छोड

समाप्त हो जावेंगे। अरे तू ठोक ठोक ज्ञान कर ले तो सारे दुख दूर हो जावेंगे और यदि इसके विपरीत तूने अपनेमें ज्ञान न किया, भीतरमें ज्ञानवा अंधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश रहेंगे और तू जगजालमें फँसा रहेगा। तू अपनेको निमल देख, अपनेमें ज्ञान उत्पन्न करे तो तुझे जीवनभर मुख प्राप्त होगा। यदि तू अपने ज्ञानस्वरूपको न सभाल सवा, अपने आपको निमल न समझ सका तो आजीवन जगजालमें फसे रहेगा। भगवानकी वाणी एक आध घट पढ लिया, मुन तिया और बाकी समय मोहियोकें सगमें रहत है तो फिर वे ही सोचें अपनेको कसे सभाला जाय ? अरे उनको तो वह मोहो प्राणी ही रुचते है उनके लिए वही सब कुछ है। भयानक विपत्तियाँ जिनमें सामन है उनको ही न मोहो प्राणी दौड़ते हैं और जिनमें कुछ हित होगा, जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नहीं है। जो अपनेको शुद्ध, आन्मत्तत्त्व रूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा और जो अपनेको अशुद्ध देखेगा वह अशुद्ध बन जायगा। मैं मनुष्य हूँ, मैं अमुक चद हूँ, मैं फल हूँ—ऐसी दृष्टि अगर बन गई तो क्रोध, मान, माया इत्यादि बढ ही जावेंगे और अहंकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकार से मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। और यदि अपनेमें ऐसी भावना बन जाय कि मैं ज्ञानमात्र, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप वस्तु हूँ तो मैं शुद्ध बन जाऊँगा। हे आत्मन् ! तेरे ऊपर कूडा लदा है। तू इस झूठेकी फिर मत कर। तू अपनेमें विद्यमान ज्ञानके उजलेको सम्हाल, वस यही एक फिक्र कर। तू अपनेको देख कि मैं सबसे निराशा, ज्ञानमात्र हूँ ज्ञानमय हूँ। तू अपाको यदि ज्ञानमय देखे तो तेरे सारे क्लेश, सारी विपदाएँ, मारा कूडा खत्म हो जायगा। तू अपाको चिंता न कर। तू तो केवल अपने भीतरको शुद्ध देखनेकी फिक्र कर। जो अपाको शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपाको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है।

भया, बहुतसी चीजें मिल जाएँ, फिर भी किसी जीवमें किसी दूसरी चीजका प्रवेश नहीं। एक बोरमें गेहूँ, चना, मटर इत्यादि मिल गए हैं फिर भी सब न्यारेके न्यारे हैं। समुदायको देखकर कहत है कि मिल गए हूँ, परके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे ही हैं। और भी चीजें देखें जमें कि दूध और पानी मिल गया तो ममुदायमें कहत हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। अब भी दूधमें पानी नहीं मिला और न दूधमें पानी मिलेगा। सब न्यारा न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरमें न्यारा नहीं रखा है, क्योंकि यदि हम चाह कि शरीर तो यही रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुँच जाय तो आत्मा नहीं पहुँच सकता। तो भी शरीरमें शरीर है और आत्मामें आत्मा है। केवल बिबक यत्र चाहिए। पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानी को अलग-अलग करनेका यत्र होता है। यत्राके द्वारा ही दूध और पानीको समझ लिया जाता है। इसी तरह मिते हुए शरीर और आत्माको समझनेका यत्र चाहिए। वह यत्र है—प्रज्ञा-

स्वरूपकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि । इन्द्रिय समय कर लो । इहीसे तो वरबादो होती है, इसको तू समय कर । और अपनी आत्माके चला जा, तू अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कर कि इस शरीरका ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोका ध्यान न रहे ता अनुपम सुख प्राप्त होगा । तू इन्द्रियोको निमकोच उपयोगसे त्याग दे । किमी भी इन्द्रियोका रच भी ब्याप्त न रहे । तो तुझे स्वलक्षण साक्षात् प्राप्त हो जायगा कि जो केवलज्ञानका वतन है । अरे यही तो तेरा स्वरूप है । तू अपने स्वरूपको पहिचान ने तो तू प्रभु हो सकता है, तू जगतमें भिन्न ही स्वता है । जिहोंने जगतमें भिन्न अपनेको दया है वह जगतमें भिन्न होकर भिन्न ही चलता रहेगा । और जो अपनेको मिला हुआ देखता है, मैं प्रभु हूँ, मैं माधु हूँ मैं ऐसा बलिष्ठ हूँ, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, धर्म रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगतसे मिला हुआ ही चलता रहेगा और आजीवन उसकी क्लेश ही रह्ये । जो व्यक्ति अपनेकी सबसे मिला हुआ समझता है वह सद्मे बोलता चालता है, देखता है, सुनता है, सबसे मित्रता है, सबसे मावधानीमें मिलता है, पर आत्मकरमाणाकी फिर उसको नहीं रहती है । इसी कारण वे जीवनभर दुःखी रहते हैं । अगर भीतरके सत्मे स्वयं निरखें कि मैं तो सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र गुण हूँ । तो हमारे यह दृष्टि वह चिन्तारो है जो कि विषयमात्रे कर्मोंके पहाडोंके पहाडोंको जला सकता है । है एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि, मगर वह इतनी घमत्वारिणी है कि मारे पहाडोंको भस्म कर सकती है । यदि इतनी अपनी बातको छोडकर चलाने तो जगतमें रुचना पड़ेगा । और यदि स्तनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतमें सबसे निराला, ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र प्रकालिक शक्तिको लिए हुए हूँ तो हे प्रियतम ! तू प्रभु बन जायगा ।

देखो एक शब्दकी बात—पतिके कितने नाम हैं, प्रीतम बोलते हैं, खमम बोलते हैं, बालम बोलते हैं, सया बोलते हैं पिया भी बोलते हैं, मगर ये सब क्या हैं ? ये सब आत्माने नाम हैं । जो पतिके नाम रख दिये हैं वे सब आत्माके नाम हैं । पिया वह कहलाता है जो प्रिय है । मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है ? अरे तुम्हारा प्रिय तुम्ही हो । अगर कोई जानपर आपत आ जाय तो यदि हाथमें लडका हो तो अपनी जान बचानेके लिए लडका भा फेंक दिया जायेगा । लडकेकी फिर नहीं रहेगी । लडकेका पता नहीं क्या होगा, परन्तु उसको भी फेंक दोगे । इसलिए तेरा पिया दूसरा नहीं है, तेरी अपनी आत्मा ही अपना पिया है, दूसरा नहीं है । प्रीतम शब्द बना है प्रियतमसे । जो ज्यादा प्रिय है । जैसे गुड, बटर, बंस्ट रूप बनते हैं तारतम्यमें जैसे ही प्रीतम, प्रिय, प्रियतर, प्रियतममें है । प्रियतम शब्द के मान हैं जो अधिक प्रिय हो । तेरा प्रीतम कौन है ? तेरा प्रीतम तेरी आत्मा है । आत्मा को छोडकर अन्य कोई तेरा अधिक प्रिय नहीं है । कितने ही तो घमके खातिर सब कुछ छोड

दते है। सीता जी अग्निपरीश्रामे उतीर्ण हो गयी। अग्निमें जब कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जायें तो फिर धर्म प्राण-दसे जायें। उनके तो धर्ममें प्रीति थी, सब कुछ छोड़कर एक आत्मधर्ममें रचि थी। हमारा घर छूटा जा रहा है—इस विकल्पको तो सभावना भी नहीं, ऐसा सीता जी ने अपने धर्मको बचानके कारण नहीं कहा। उनके लिए धर्म ही प्रिय था। वह सोचती थी कि यदि बच जाऊंगी तो धर्ममें ही रहूंगी। धर्मके माने हैं स्वभाव-रमण और दूसरी चीज नहीं है। सही स्वरूपको जानने व उममें रमने का नाम ही धर्म है। प्रीतिम तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतिम है। चातकको बल्लभ चोलते हैं। बल्लभका अर्थ प्रिय है। संया बना है स्वामीमें। अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन ? अरे तेरा स्वामी तू ही है। तेरा मालिक तू ही है। तेरा सइया तू ही है।

देखो भगवानकी भक्तिमें भगवानको सब विरोधण लगते हैं। हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइया। साइया तो भजनमें भी गाया करते हैं। भगवान और आत्मामें भेद क्या है ? कुछ नहीं। तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा संया है, तुम्हारा प्रिय है, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा मवस्व है। और हे आत्मन् ! इस दुनियामें तेरा कुछ नहीं है। सबसे निराला अपने आपको देखो। यदि सबसे निराला इस जगतमें तू अपने आत्मी नहीं देखता है तो तू इस समारमें खलेगा। अब देखो जिमकी कल्याणमें नगन लगी है उसको दूसरी चीज मुहात्ती नहीं है। हे आत्मन् ! तुम्हें तो कल्याण चाहिए। तेरा वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए। ज्ञानकी बातको पानी ही समझ सकता है, अज्ञानी नहीं समझ सकता है। ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको परम सबना है, पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति ज्ञानी को नहीं परख सकते हैं। देखो ये दो भया भिण्डसे आये हैं जँमें कोई तो पर्वको घसे निकलता फिर पत्रके बाद घर पहुच जाता है। किन्तु दनको तो सभी दिन पवका दिन है। अरे परवाह न करो। घरका काम तो चल ही जायगा। उसनी चिंता न करो। अगर तुम चिंता करोगे तो क्या तुम्हारे घरका काम नहीं चलेगा ? अरे चिंता न करो, घरका काम तो चलेगा ही। चिंताएँ नहीं करना चाहिए। चिंताएँ करनेमें सुबसान है। भीतरसे जब आत्मकल्याणकी भावना रहे तो शांति प्राप्त हो सकती है।

सुकुमार स्वामी मकानसे चले। जिमका शरीर तो सुकुमार था। कमलकी वासम पहुचने वाले आवल ही जिसके गलेमें निगले जा सकते थे, जिसको रोगनी देखते ही आँसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जब विरक्त हुए, घरसे चले, नगे पैर चने जा रहे हैं, खून बह रहा है। अब उनके लिए वैभव बभव नहीं रहा। वे साधु हो गये, ध्यानमें बैठ गये। अब उनके शरीरमें केवल ढाँचा ही रह गया था। ऐसी सुकुमार अवस्था थी, जब कि इन्होंने

अपने शरीरका तपस्यामे ही गला डाला था और देखो अन्तम उनको एक स्यारलीने खाया था। क्या उन् कष्ट था ? अरु भाई यह समझो कि कोई कष्ट नहीं है। यदि कष्ट मानन हा तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो नहीं है। अरे देखो रात दिन कितने कष्ट है ? गृहस्थीय कष्ट नहीं मालूम होते हैं, पर धमके वामोम कष्ट मालूम होते हैं। जहा मन नहीं लगता वहा कष्टोम नाम लगता है। धमका काम नहीपर हो रहा हो वहाँ बैठनेमे ही ह आत्मन्। तू पर-शान हो जाता है। जहा थोडामा भी समय हो गया कहते हैं कि अरु एक घटा हो गया, दा घटा हो गया, पौन घ टमे हो जाना चाहिए था। स्वाध्याय जल्दी खतम हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके कायम व आरामसे घुटने टेके बैठे रह कोई परेशानी नहीं है। कितनी ही अडचनें हो, फिर भी उनको परेशानी नहीं होती ह। ह आत्मन ! अज्ञान कर लो कि जिसका जिमने ऊपर मन रमा है वहाँ चाह जितन कष्ट हो कष्ट नहीं हैं और जिसका मन विसीक ऊपर नहीं है वहाँ यदि कष्ट भी नहीं ह तो कष्ट कल्पनासे आ पडने हैं। कल्याणका उपाय मरन है। जरा अपनेको गानमान्न, सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपकी और देखो तो आत्मा भिन्न हो जायगी, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हू इसलिए अय अपनेको सहज सत्यस्वरूपमे देखकर अपनेमे अपने आप विश्राम पाऊँ।

॥ इति आत्मपरिचयन ॥



दते हैं। सीता जी अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हो गयी। अग्निमें जब कूद रही थी तब तया ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जाय तो फिर घरमें आन दसे जावें। उनके तो धममें प्रीति थी, सब कुछ छोड़कर एक आत्मधममें रुचि थी। हमारा घर छूटा जा रहा है—इस विकल्पकी तो सभावना भी नहीं, एमा सीता जी ने अपने धर्मको बचानेके कारण नहीं कहा। उनके लिए धम ही प्रिय था। वह सोचती थी कि यदि बच जाऊंगी तो धममें ही रहूंगी। धमके माने हैं स्वभावरमण और दूसरी चीज नहीं है। मही स्वल्पको जानने व उसमें रमने का नाम ही धम है। प्रीतम तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है। बालमको बलभ बोलते हैं। बलभका अर्थ प्रिय है। सया बना है स्वामीमें। अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन ? अरे तेरा स्वामी तू ही है। तेरा मालिक तू ही है। तेरा सइया तू ही है।

देखो भगवानकी भक्तिमें भगवानको सब विरोधण लगते हैं। हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइया। साइया तो भजनमें भी गाया करते हैं। भगवान और आत्मामें भेद क्या है ? कुछ नहीं। तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सया है, तुम्हारा प्रिय है, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है। और हे आत्मन् ! इस दुनियामें तेरा कुछ नहीं है। सबसे निराला अपने आपको देखो। यदि सबसे निराला इस जगतमें तू अपने आाको नहीं देखता है तो तू इस ससारमें रुनेगा। अब देखो जिमकी कत्याणमें नगन नगी है उसको दूसरी चीज मुझाती नहीं है। हे आत्मन् ! तुम्हें तो क्याण चाहिए। तेरा वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए। ज्ञानकी बातको जानी ही समझ मरता है, अज्ञानी नहीं समझ सकता है। ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको परख सकता है, पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति ज्ञानी को नहीं परख सकते हैं। दखो ये दो भैया भिण्डसे आये हैं जंमें कोई तो पक्को घरसे निकलता फिर पक्के बाद घर पहुंच जाता है। किन्तु इनको तो सभी दिन पक्का दिन है। अरे परवाह न करो। घरका काम तो चल ही जायगा। उसकी चिंता न करो। अगर तुम चिंता करोगे तो क्या तुम्हारे घरका काम नहीं चलेगा ? अरे चिंता न करो, घरका काम तो चलेगा ही। चिंताएँ नहीं करना चाहिएँ। चिंताएँ करनेमें नुवमान है। भीतरसे जब आत्मकल्याणकी भावना रहे तो शांति प्राप्त हो सकती है।

मुकुमार स्वामी मवानसे चले। जिमका शरीर तो मुकुमार था। कमलकी वासमें पहुंचने वाले चावल ही जिसके गलेमें निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखने ही भासू आ जाते थे, ऐसे मुकुमार जब विरक्त हुए, घरसे चले, नंगे पैर चले जा रहे हैं, खून बह रहा है। अब उनके लिए वैभव वभव नहीं रहा। वे साधु हो गये, ध्यानमें बैठ गये। अब उनके शरीरमें केवल ढाँचा ही रह गया था। ऐसी मुकुमार अवस्था थी, जब कि इन्होंने

अपने शरीरको तपस्यामें ही गला डाला था और देखो अंतमें उनको एक स्यारनीने खाया था। क्या डट्ट कष्ट था ? अरु भाई यह समझो कि कोई कष्ट नहीं है। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो नहीं है। अरे देखो रात दिन कितने कष्ट है ? गृहस्थीमें कष्ट नहीं मालूम होते हैं, पर धमके कामोंमें कष्ट मालूम होते हैं। जहां मन नहीं लगता वहां कष्टका नाम लगता है। धमका काम जहाँपर हो रहा हो वहां बैठनेमें ही हे आत्मन् ! तू परेशान हो जाता है। जहां थोड़ासा भी समय हो गया कहते हैं कि अरु एक घंटा हो गया, दो घंटा हो गया, तीन घंटेमें हो जाना चाहिए था। स्वाध्याय जल्दी खतम हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके वायमें वे आरामसे घुटने टेके बैठे रह, कोई परशानी नहीं है। कितनी ही अहचर्चें हा, फिर भी उनको परेशानी नहीं होती है। हे आत्मन् ! अदाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है वहाँ चाह जितने कष्ट हो कष्ट नहीं हैं और जिसका मन किसीके ऊपर नहीं है वहाँ यदि कष्ट भी नहीं है तो कष्ट कल्पनासे आ पड़ते हैं। कल्याणका उपाय सरल है। जरा अपनेको नानमात्र, सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपकी ओर देखो तो आत्मा भिन्न हो जायगी, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हू इसलिए अब अपनेको सहज सत्यस्वरूपमें देखकर अपनेमें अपने आप विश्राम पाऊँ।

॥ इति आत्मपरिचयन ॥





## ब्रह्मचर्य-विगतिः

- ब्रह्मचर्यं परं दानम्, ब्रह्मचर्यं परं तप ।  
 ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानम्, ब्रह्मचर्यं परं मह ॥१॥
- ब्रह्मचर्यं परं यानम्, ब्रह्मचर्यं परं हितम् ।  
 ब्रह्मचर्यं परं ध्यानम्, ब्रह्मचर्यं परं सुखम् ॥२॥
- ब्रह्मचर्यं परं तेजः, ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।  
 ब्रह्मचर्यं परं श्रेयः, ब्रह्मचर्यं परं फलम् ॥३॥
- ब्रह्मचर्यं परं सत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो यमः ।  
 ब्रह्मचर्यं परं तत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परो वृष ॥४॥
- ब्रह्मचर्यं परा क्रान्तिः, ब्रह्मचर्यं परं व्रतम् ।  
 ब्रह्मचर्यं परा वीतिः, ब्रह्मचर्यं परं ऋतम् ॥५॥
- ब्रह्मचर्यं परा भक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुरुः ।  
 ब्रह्मचर्यं परा शक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुणः ॥६॥
- ब्रह्मचर्यं परं ज्योतिः, ब्रह्मचर्यं परा छविः ।  
 ब्रह्मचर्यं परं वृत्तम्, ब्रह्मचर्यं परं हविः ॥७॥
- ब्रह्मचर्यं परं ब्रह्म, ब्रह्मचर्यं परं श्रुतम् ।  
 ब्रह्मचर्यं परं धाम, ब्रह्मचर्यं परं श्रितम् ॥८॥
- ब्रह्मचर्यं परं रत्नम्, ब्रह्मचर्यं परा लयः ।  
 ब्रह्मचर्यं परं भद्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ॥९॥
- ब्रह्मचर्यं परा शान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा निधिः ।  
 ब्रह्मचर्यं परा क्षान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा विधिः ॥१०॥
- ब्रह्मचर्यं परं मन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ।  
 ब्रह्मचर्यं परं तन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परं वपुः ॥११॥

ब्रह्मचर्यं परा सिद्धि, ब्रह्मचर्यं परा गति ।  
 ब्रह्मचय परा ऋद्धि, ब्रह्मचर्यं परा नति ॥१२॥  
 ब्रह्मचर्यं परो योग, ब्रह्मचर्यं परो दम ।  
 ब्रह्मचर्यं परो भोग, ब्रह्मचर्यं पर शम ॥१३॥  
 ब्रह्मचर्यं पर शीलम्, ब्रह्मचर्यं पर क्रतु ।  
 ब्रह्मचर्यं पर सत्वम्, ब्रह्मचय पर सुहृन् ॥१४॥  
 ब्रह्मचर्यं पर स्वास्थ्यम्, ब्रह्मचर्यं पर पदम् ।  
 ब्रह्मचर्यं पर क्षेमम्, ब्रह्मचर्यं पर वरम् ॥१५॥  
 ब्रह्मचर्यं पर यज्ञम्, ब्रह्मचर्यं पर शिवम् ।  
 ब्रह्मचर्यं पर दुग्म, ब्रह्मचर्यं पर घनम् ॥१६॥  
 ब्रह्मचर्यं पर सारम्, ब्रह्मचय परा शुचि ।  
 ब्रह्मचर्यं पर साम्यम्, ब्रह्मचय परा खि ॥१७॥  
 ब्रह्मचर्यं परं कृत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो रस ।  
 ब्रह्मचर्यं पर माध्यम्, ब्रह्मचर्यं पर वच ॥१८॥  
 ब्रह्मचर्यं पर स्थानम्, ब्रह्मचर्यं परा धृति ।  
 ब्रह्मचर्यं पर मानम्, ब्रह्मचर्यं परा रति ॥१९॥  
 ब्रह्मचर्यं पर वीर्यम्, ब्रह्मचर्यं पर रह ।  
 ब्रह्मचर्यं पर वित्तम्, ब्रह्मचर्यं पर यश ॥२०॥

### आर्या

आचरन्ति ब्रह्मचय मनसा कथेन यो नर मनतम् ।  
 भजत युग्म स्वास्थ्य सहजान्दात्मक पद नियमात् ॥२१॥

॥ इति श्री ब्रह्मचयविशतिका ॥

## ब्रह्मचर्य-विणक्तिका

ब्रह्मचर्यं पर दानम्, ब्रह्मचर्यं पर तप ।  
ब्रह्मचर्यं पर ज्ञानम्, ब्रह्मचर्यं पर मह ॥१॥

ब्रह्मचर्यं पर यानम्, ब्रह्मचर्यं पर हितम् ।  
ब्रह्मचर्यं पर ध्यानम्, ब्रह्मचर्यं पर सुखम् ॥२॥

ब्रह्मचर्यं पर तेज, ब्रह्मचर्यं पर बलम् ।  
ब्रह्मचर्यं पर श्रेय, ब्रह्मचर्यं पर फलम् ॥३॥

ब्रह्मचर्यं पर सत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो यम ।  
ब्रह्मचर्यं पर तत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परो वृष ॥४॥

ब्रह्मचर्यं परा क्रान्ति, ब्रह्मचर्यं पर व्रतम् ।  
ब्रह्मचर्यं परा कीर्ति, ब्रह्मचर्यं पर ऋतम् ॥५॥

ब्रह्मचर्यं परा भक्ति, ब्रह्मचर्यं परो गुरु ।  
ब्रह्मचर्यं परा शक्ति, ब्रह्मचर्यं परो गुण ॥६॥

ब्रह्मचर्यं पर ज्योति, ब्रह्मचर्यं परा छवि ।  
ब्रह्मचर्यं पर वृत्तम्, ब्रह्मचर्यं पर हवि ॥७॥

ब्रह्मचर्यं पर ब्रह्म, ब्रह्मचर्यं पर श्रुतम् ।  
ब्रह्मचर्यं पर धाम, ब्रह्मचर्यं पर श्रितम् ॥८॥

ब्रह्मचर्यं पर रत्नम्, ब्रह्मचर्यं परा लय ।  
ब्रह्मचर्यं पर भद्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जय ॥९॥

ब्रह्मचर्यं परा शान्ति, ब्रह्मचर्यं परा निधि ।  
ब्रह्मचर्यं परा क्षान्ति, ब्रह्मचर्यं परा विधि ॥१०॥

ब्रह्मचर्यं पर मात्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जय ।  
ब्रह्मचर्यं पर तत्रम्, ब्रह्मचर्यं पर वपु ॥११॥

ब्रह्मचर्यं परा सिद्धिः, ब्रह्मचर्यं परा गतिः ।  
 ब्रह्मचर्यं परा श्रद्धिः, ब्रह्मचर्यं परा नतिः ॥१२॥  
 ब्रह्मचर्यं परो योगः, ब्रह्मचर्यं परो दमः ।  
 ब्रह्मचर्यं परो भोगः, ब्रह्मचर्यं पर शमः ॥१३॥  
 ब्रह्मचर्यं पर शीतम्, ब्रह्मचर्यं पर शत्रुः ।  
 ब्रह्मचर्यं पर सत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं पर मुहुत् ॥१४॥  
 ब्रह्मचर्यं पर स्वाम्यम्, ब्रह्मचर्यं पर पदम् ।  
 ब्रह्मचर्यं पर क्षेमम्, ब्रह्मचर्यं पर वरम् ॥१५॥  
 ब्रह्मचर्यं पर यत्नम्, ब्रह्मचर्यं पर शिवम् ।  
 ब्रह्मचर्यं पर दुःखम्, ब्रह्मचर्यं पर धनम् ॥१६॥  
 ब्रह्मचर्यं पर सारम्, ब्रह्मचर्यं परा गुचिः ।  
 ब्रह्मचर्यं पर साम्यम्, ब्रह्मचर्यं परा रविः ॥१७॥  
 ब्रह्मचर्यं परं घृश्यम्, ब्रह्मचर्यं परो रसः ।  
 ब्रह्मचर्यं पर साध्यम्, ब्रह्मचर्यं पर वचः ॥१८॥  
 ब्रह्मचर्यं पर स्वानम्, ब्रह्मचर्यं परा धृतिः ।  
 ब्रह्मचर्यं पर मानम्, ब्रह्मचर्यं परा रतिः ॥१९॥  
 ब्रह्मचर्यं पर धीर्यम्, ब्रह्मचर्यं पर रहः ।  
 ब्रह्मचर्यं पर वित्तम्, ब्रह्मचर्यं पर यशः ॥२०॥

### आर्या

आचरन्ति ब्रह्मचर्यं मानसा वायेन यो नरः सततम् ।  
 भजते युष्मत्स्वाम्यं महज्ज्ञानदात्मनः पदं विममात् ॥२१॥

॥ इति श्री ब्रह्मचर्यविशतिषा ॥

अध्यात्मयोगी न्यायतीथ पूज्य श्री १०५ कुल्लक मनोहर जी वर्णौ  
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

### सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावा, प्रापुलभत अचल सहज सुशम ।  
एकस्वरूपममल परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्ध चिदस्मि जपतो निजमूलमत्र, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित म्पृशत स्वतथम् ।  
यत्र प्रयान्ति विलय विपदो विवरपा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्न समस्तपरत परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।  
निक्षेपमाननयसवविकल्पदूर, शुद्ध चिदस्मि परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योति पर स्वरमकर्तुं न भोक्तु गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमवल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।  
चिमात्रधाम नियत सततप्रकाश, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मममयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।  
यद्दृष्टिसश्रयणजामलमृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश, भूताद्यबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।  
आनदशक्तिदृष्टिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुखिलासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तामीरम् ।  
निष्पीतविश्वनिजपययशक्ति तेज, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगमुशला निगदति यद्वि, यद्धानुमुत्तमतया गदित समाधि ।  
यद्दशनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमाग, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मि ननुभवति निर्विकल्प य ।

सहजानन्दमुबन्ध स्वभवावमनुपयय याति ॥९॥

